अंक ३७-४८]   [१९६६-१९६७

ऋग्वेद संहिता

(वैदिकजीवन व्याख्या युता)

प्रथम मण्डल सू० ६३-८७ प्रथम अष्टक

अ०५ वर्ग ४-अ०६ वर्ग १३

पदपाठ, शब्दार्थ, संस्कृत और भाषा अनुवाद टिप्पणी और मन्त्रों के आशय पर व्याख्यान से युक्त

जिसको मुलतान निवासी पं० शङ्करदत्त शास्त्री की सहायता से शिवनाथ आहिताग्नि ने सम्पादन किया।

लाहौर

पञ्जाब एकानोमीकल यन्त्रालय में प्रिन्टर लाला बालमल के अधिकार से छपा।

अक ३७ ३८]　　[आश्विन-कार्त्तिक १९६६

ऋग्वेद संहिता

(वैदिकजीवनभाष्ययुता)

पदपाठ, शब्दार्थ, संस्कृत और भाषा अनुवाद
टिप्पणी और मन्त्रों के आशय पर
व्याख्यान से युक्त

जिसको मुलतान निवासी प० शङ्करदत्तशास्त्री
की सहायता से शिवनाथ आहिताग्नि ने
सम्पादन किया।

लाहौर
पञ्जाब एकानोमीकल यन्त्रालय में प्रिण्टर लाला
सालमन के अधिकार से छपा।

१२ अंकों का अग्रिम मूल्य २)
पहले २४ अंकों का मूल्य ५॥)

पृ०	पंक्ति	अशुद्धम्	शुद्धम्
१५२०	१०	प्रयोन-	प्रयोन-
१५२२	८	धन्मका	धन्नको
१५२५	२	हृध-	हृध-
१५२७	५	सहूलिऽभिः	सुहूलिऽभिः
१५३०	११	स्तुतिनां	स्तुतीनां
१५३८	१३	रथ्	रथम्
१५३०	६	चोलकांस्तचं	चालकांस्तोच
१५३१	१३	येनतम्	येन तत्
१५३७	१०	(ग्रेलोपः)	(अल्लोपः)
१५४२	११	चोरणाय	चेरणाय
१५५२	१६	वधरूप	वधरूप
१५५३	१	सू० ५१	सू० ६१
१५५५	१५	ळ्ळा	व्ळ्हा
१५५५	१६	येन-	वेन-
१५५६	५	भियां	भिया
१५५६	६	गिरयः	गिरयः
१५५६	८	दृद्ळाः	दृळ्हा
१५५७	१५	लडय	लड्य
१५५८	१६	त्रिष्टुप	त्रिष्टुप्
१५६०	५	पुस्य	पस्पृ
१५६२	७	स्ततोः	स्तुतो
१५६५	२०	म-ङ्गुषं	माङ्गू
१५६६	२	ऽर्वा	ऽर्वा
१५६६	८	ऽऽवरते	ऽऽचर
१५६६	१२	आघङ्गम्	आङ्गूषम्
१५६६	१४	गीभिः	गीर्भिः
१५६७	२	स्तवते	स्तवते
१५७४	१७	सस्तुभास	सस्तुभा
१५७८	४	गृणानः	गृणानः
१५८१	१५	वालिय	वालियौ
१५८३	१८	तुति	स्तुति
१५८७	२०	ले	काले
१५८७	२०	मकाले	वाले
१५८८	८	लिट)	लिट्)
१५९२	४	धतस्ताः	धस्तताः
१५९४	११	स्तचैः	स्तोचैः
१५९४	१५	घह्नत	घह्नुत
१५९५	१८	धम	धर्म
१५९५	१९	मे धा	मेधा
१५९९	२	विनश्यति	विनश्यन्ति



विषय सूची।

ऋग्वेद संहिता अङ्क २५ से २६ तक


BHARATIYA VIDYA BHAVAN
S N? 1067
LIBRARY.

ऋ० मं० १ सू० ६३।

नोधा ऋषिः।

विनियोग—यह सूक्त समूळ दशरात्र यज्ञ के द्वितीय छन्दोम संबंधी मरुत्वतीय शास्त्र में पढा जाता है (आ०श्रौ०स०उ०२।७।२३।

इस सूक्त में भी इन्द्र की स्तुति है। इन्द्र महान हैं जिन के जन्मते ही द्यौ और पृथिवी आदि सब भयभीत हुए और दृढ पर्वत भी किरणों की न्याई कांपने लगे। जब इन्द्र अपने घोड़ों को स्तोता की ओर लाते हैं तो वह उनके हाथ में स्तुति से उत्पन्न हुए २ बल रूपी वज्र को रखता है,जिस से इन्द्र उस के शत्रुओं के गढतोड़ते हैं। इन्द्र सत्यरूप, आर्य्यशत्रुओं को दबाने वाले, भक्तों के हितकारी और जयशाली हैं, इन्द्र ने तेजस्वी कुत्स के लिये देव और मनुष्यों के शत्रु शुष्ण को मारा जब इन्द्र ने वृत्र को मारा और दस्युओं को उन की जन्म भूमिमें जाकर नाश किया,तब अपने आर्य्य भक्तों के साथ मित्र भाव को निभाया। इन्द्र बलवानसे बलवान मनुष्य के अप्रसन्न होने पर भी हिंसित नहीं होते वह हमारे घोड़े के लिये वे रुकावट दिशाओंको करें और हमारे शत्रुओं को ऐसे मारें कि मानो कठिन सोटे से कोई मारता हो,इन्द्र को वर्षा और ज्योति की प्राप्ति के लिये और युद्ध में सहायता के लिये मनुष्य बुलाते हैं, और उन की रक्षा को प्राप्त करने के योग्य पाते रहे हैं, इन्द्र हमें नाना प्रकार का पुष्कल अन्न प्रदान करें जिस से हमारा बल और जीवन इतना बढे कि दूसरों को भी उपयोगी हो, इस प्रकार गोतम वंशी इन्द्र की स्तुति करते थे और साथ ही उन के घोड़ों के लिये नमस्कार युक्त वचन कहते थे, ऐसे इन्द्र हमें सुन्दर रूप वाले धन को देवें और सदा हमारे पास प्रातः काल में आवें॥

इन्द्रोदेवता निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः।१०।११।११।११।

त्वंमहाँइन्द्रयोहशुष्मैर्द्यावाज-
ज्ञानःपृथिवीअमेधाः । यद्धतेवि-
श्वागिरयश्चिदभ्वा भियादृळ्हासः-
किरणानैजन्।१।

त्वम्	त्वम्	तू
महान्	महान्	बड़ा
इन्द्र	हे इन्द्र !-	हे इन्द्र,
यः	यः	जो
ह	एव	ही
शुष्मैः	बलैः	बलों से,
द्यावा	द्यावा+	–

जज्ञानः	प्रादुर्भवन्	प्रकट होता हुआ
पृथिवी०	द्यावा+पृथिवी द्यावा पृथिव्यौ	द्यौ(और)पृथिवी को
१ अमे	भये	भय में
१ धाः	अधारयः	धारण किया
यत्	यदा	जब
ह	खलु	सचमुच
ते	तव	तेरे
विश्वा	सर्वाणि (शेर्लोपः)	सब
गिरयः	पर्वतः	पर्वत
चित्	अपि	भी
अभ्वा	महान्तः (नि०३।३।विभक्तेरात्वम्)	बड़े
भिया	भयेन	भय से

दृ॒ळ्हास॑:	दृढाः	दृढ़
कि॒रणा॑:	किरणाः	किरणें
न	इव	जैसे
ऐज॑न्	कम्पितवन्तः (एजृकम्पने)	कांपने लगे

संस्कृतार्थः

हे इन्द्र ! त्वं महान् (असि) (यस्त्वम्) प्रादुर्भवन्नेव (निज-) बलैर्द्यावापृथिव्योभयेऽधारयः, यदाखलु तव भयेन सर्वाणि (भूतानि) महान्तो दृढाः (च) पर्वता अपि किरणा इव कम्पितवन्तः ॥१॥

भाषार्थः।

हे इन्द्र ! आप महान (हैं) जिस आपने प्रकट होते ही (अपने) बलों से द्यौ (और) पृथिवी को भय में धारण किया, जब सचमुच आप के भय से सम्पूर्ण (जीव) (और) बड़े २ दृढ़ पर्वत भी किरणों की न्याईं कांपने लगे ॥ १ ॥

(१) भय में धारण किया अर्थात भयभीत किया।

इन्द्रोदेवता त्रिष्टुप्छन्दः ।११।११।११।११।

आयद्धरीइन्द्रविव्रताबे रातेवज्रं-
जरिताबाह्वोर्धात् । येनाविहर्य्यं-
तक्रतोअमित्रान् पुरइष्णासिपुरु-
हूतपूर्वीः ॥ २ ॥

आ	आ+	–
यत्	यदा	जब
हरी०	अश्वौ	दोनों घोड़ों क
इन्द्र	हे इन्द्र !	हे इन्द्र
विऽव्रता	विविधं व्रतम् (गमन रूपम्)कर्म्म ययोस्तौ (विभक्तेरात्वम्)	अनेक रस्ते चलने वालों के

वे:	आ+वेः, आगमयसि (वीगतौ,अन्तर्भावित ण्यर्थोलडर्थेलङ्)	तू लाता है
आ	आ+	–
ते	तव	तेरे
वज्रम्	वज्रम्	वज्र को
जरिता	स्तोता	स्तोता
बाह्वोः	हस्तयोः	दोनों हाथों में
धात्	आ+धात् धारयति (अन्तर्भावितण्यर्थो लडर्थे लुङ्)	रखता है
येन	येन	जिससे
अविह्वर्य तक्रतो०	हेऽप्रेप्सित कर्मन् (ह्वर्यतिःप्रेप्साकर्मा निरु० ।०। १०)	हे निष्काम कर्म करने वाले
अमित्रान्	शत्रून्	शत्रुओं को

पुरः	पुराणि	गढ़ों को
दूष्णासि	प्रहरसि (आ०को०)	प्रहार करते हो
पुरुऽहूत	हेबहुभिराहूत !	हे बहुतों से बुलाये गए
पूर्वीः	प्रभतानि (पूर्वसवर्णदीर्घः)	बहुत

संस्कृतार्थः।

हेऽप्रेप्सितकर्म्मन्! बहुभिराहूतेन्द्र! यदा (त्वम्) विविध गमन युक्तावश्वौ (स्तोतारं प्रति) आगमयसि (तदा) स्तोता तव हस्तयोर्वज्रं धारयति येन (त्वम्) शत्रून् (तेषाम्)प्रभूतानि पुराणि (च) प्रहरसि ॥ २॥

भावार्थः।

हे निष्काम कर्म्म करने वाले बहुतों से बुलाए गए इन्द्र! जब आप अनेक रस्ते चलने वाले दोनों घोड़ों को (स्तोता की ओर) लाते हैं (तब) स्तोता आपके दोनों हाथों में बज्र को रखता है जिस से आप शत्रुओं(और उनके) बहुत गढों पर प्रहार करते हैं॥२॥

इन्द्रोदेवता निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः।११।१०।११।११।

त्वंसत्यइन्द्रधृष्णुरेतान् त्व-

मृभुक्षानर्यस्त्वंषाट् । त्वंशुष्णं
वृजनेपृक्षआणौ यूनेकुत्सायद्युमते
सचाहन् ।३।

त्वम्	त्वम्	तू
सत्यः	सत्यस्वरूपः	सत्यरूप
इन्द्र	हे इन्द्र !	हे इन्द्र
धृष्णुः	धर्षयिता	दबाने वाला
एतान्	एतान्	इन को
त्वम्	त्वम्	तू
ऋभुक्षाः	महान् (निघं० ३।३)	महान
नर्यः	नृभ्योहितः	मनुष्यों के लिये हितकारी
त्वम्	त्वम्	तू

षाट्	अभिभविता	जयशाली
त्वम्	त्वम्	तूने
१ शुष्णम्	शुष्णम्	शुष्ण को
वृजने	वर्जनं हिंसनं तेन युक्ते	हिंसायुक्त में
पृक्षे	सम्पृक्त वीरवति	जुटे हुए वीरों वाले में
आणौ	संग्रामे (निघ०२।१०)	युद्ध में
यूने	यूने	युवा के लिये
१ कुत्साय	कुत्साय	कुत्स के लिये
द्युऽमते	दीप्तिमते	दीप्तमान के लिये
सचा	सहायः (भूत्वा)	सहायक (होकर)
अहन्	हतवान्	नाश किया

संस्कृतार्थः।

हे इन्द्र! सत्यस्वरूपस्त्वमेतान् (शत्रून्प्रति) धर्षयिता (असि) त्वं महान् (असि) त्वं नृभ्योहितकारी त्वमभिभविता (चाऽसि) त्वं हिंसायुक्ते सम्पृक्तवी-

स्वति संग्रामे दीप्तिमते यूने कुत्साय सहायः (भूत्वा) शुष्णं हतवान् ॥ ३ ॥

भापार्थः ।

हे इन्द्र ! सत्य रूप आप इन (शत्रुओं) को दवाने वाले (हैं) आप महान (हैं)आप मनुष्यों के लिये हित-कारी (और)जय शाली (हैं) हिंसा युक्त जुटे हुए वीरों वाले युद्ध में दीप्ति वाले युवा कुत्स के लिये सहायक (हो कर) आपने शुष्ण को मारा ॥ ३ ॥

(१) शुष्ण और कुत्स के लिये देखो पृ० १२६५ ॥

इन्द्रो देवता त्रिष्टुप्छन्दः ११।११।११।११।

त्वं ह॒ त्यदि॑न्द्र चो॒दीः सखा॑ वृ॒त्रं यद्व॑ज्रिन्वृषकर्मन्नु॒भ्नाः । यद्ध॑ शूर वृषमणः परा॒चैर्वि दस्यूँ॒र्योना॒वकृ॑तो वृथा॒षाट् । ४ ।

त्वम्	त्वम्	तूने

ह	खलु	सचमुच
त्यत्	तत् (सखित्वम्)	उस (मित्रता) को
इन्द्र	हे इन्द्र!	हे इन्द्र
चोदीः	प्रवर्तितवान् (आ०को०) (अडभावः)	निभाया
सखा	सखा	मित्र
वृत्रम्	वृत्रम्	वृत्र को
यत्	यदा	जब
वज्रिन्	हे वज्रिन्!	हे वज्रधारी
वृषऽकर्मन्	हे विक्रान्त कर्मन्	हे वीरकर्मों वा
उभ्नाः	अतुभ्नाः,अहिंसीः (तुभ्‌र्हिंसायाम्, लङ्लो-पश्छान्दसोऽडभा-वश्च)	तूने मारा
यत्	यदा	जब
ह	खलु	सचमुच

शूर	हे शूर !	हे शूरवीर
वृषऽमनः	(कामानाम्)अभिवर्षकं मनोयस्य-तत्सम्बुद्धौ	हे (कामनाओं के) बर्साने वाले मन से युक्त
पराचैः	दूरे (निघं०३।२९)	दूर
वि	वि +	–
दस्यून्	दस्यून्	दस्युओं को
योनौ	गृहे निघं०३।४)	घरमें
अकृतः	वि+अकृतः विच्छेदितवान् (कृतीछेदने)	छिन्न भिन्नकिया
वृथाषाट्	अनायासेनाऽभिभविता	सहज से जीतने वाला

संस्कृतार्थः ।

हे विक्रान्तकर्म्मन् ! वज्रिन्निन्द्र ! त्वं खलु-सखा (भूत्वा) तत् (सखित्वम्) प्रवर्तितवान् यदा वृत्र

महिंसीः, यदा (च) खलु हे शूर ! हे वृषमणः ! अनायासेनाऽभिभविता (त्वम्) दूरे (गत्वा)दस्यून् (तेषाम्) गृहे विच्छेदितवान्।। ४॥

भापार्थः।

हे वीर कर्मों वाले ! हे वज्रधारी इन्द्र ! आपने मित्र (हो कर) उस (मित्रता) को निभाया, जब वृत्र को मारा (और) जब हे शूरबीर! हे (कामनाओं के) बरसाने वाले मन से युक्त ! सहज से जीतने वाले आप ने सचमुच दूर (जाकर) दस्युओं को (उन के) घर में छिन्न भिन्न किया ॥ ४ ॥

(१) दस्यु, आर्य्यों के अनार्य्य शत्रु और उन का घर जहां वे उत्पन्न हुए ॥

इन्द्रोदेवता निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः ११।११।१०।११

त्वं ह॒ त्यदि॑न्द्रारि॑षण्यन् दृ॒-

ळ्हस्य॑चि॒न्मर्त्ता॑नाम॒जुष्टौ॑ । व्य१॒-

स्मदाकाष्ठा॒अर्व॑ते व घ॒नेव॑वज्रि॒ञ्छ्-

नथिह्य॒मित्रा॑न् ॥ ५ ॥

त्वम्	त्वम्	तू
ह	खलु	सच मुच
त्यत्	सः (सुपां सुलुक्‌ति लुक्)	वह
इन्द्र	हे इन्द्र !	हे इन्द्र
१ अरिषण्यन्	अहिंस्योभवन् (आ०फो०)	पीडित न होता हुआ
१ दृळ्हस्य	दृढस्य	दृढ़ के
चित्	अपि	भी
मर्त्तानाम्	मनुष्याणाम् (मध्ये)	मनुष्यों (के बीच)
अजुष्टौ	अप्रीतौ	अप्रसन्न होने पर
वि	वि +	—
अस्मत्	अस्माकम् (षष्ठ्यालुक्)	हमारी
आ	समन्तात्	चारों ओर से

२ काष्ठाः	दिशः	दिशाओं को
२ अर्वते	अश्वाय	घोडे के लिये
२ वः	वि+वः,विवृताः कुरु,प्रतिरोधरहिता विधेहीत्यर्थः	रुकावट से रहित करो
घनाऽइव	घनेनकठिनेन (लगुडेन) इव (विभक्तेरात्वम्)	जैसे कठिन(सोटे) से
न्	हे वज्रिन् !	हे वज्रधारी
श्नथिहि	जहि (श्नथहिंसायां ह्रस्वमत्व छान्दसम्)	मारो
अमित्रान्	शत्रून्	शत्रुओं को

संस्कृतार्थः।

हे इन्द्र ! स त्वं खलु मनुष्याणाम् (मध्ये)दृढस्याऽप्यप्रीतार्वाहिंस्यो भवन् (वर्तसे) हे वज्रिन् ! अस्माकमश्वाय दिशः प्रतिरोधरहिता विधेहि, (अस्माकम्)

शत्रून् कठिनेन(लगुडेन)यथा (भवतितथा) मारय॥५॥

भावार्थः

हे इन्द्र ! वह आप सचमुच मनुष्यों में दृढ़ के भी अप्रसन्न होने पर पीडित नहीं (होते),हे वज्र धारी! हमारे घोड़े के लिये रुकावट से रहित दिशाओं को करो (और हमारे) शत्रुओं को ऐसे मारो जैसे कठिन (सोटे) से (कोई मारता हो) ॥५॥

(१) मनुष्यों में कैसा भी दृढ अर्थात बलवान मनुष्य हो उस को अप्रसन्नता इन्द्र का कुछ नहीं बिगाड़ सकती ॥

(२) हमारे घोड़े को रोकने वाला किसी दिशा में कोई शत्रु न हो ॥

इन्द्रोदेवता त्रिष्टुप्छन्दः ।११।११।११११

त्वां ह॒ त्यदि॑न्द्रा॒र्ण॑सा॒तौ स्व॑र्मी॒-

ळ्हे॒ नर॑ आ॒जा ह॑वन्ते। तव॑ स्वधाव इ॒-

य॒मा स॑म॒र्य ऊ॒तिर्वाजे॑ष्वत॒साय्या॑-

भूत्॥ ६॥

त्वाम्	त्वाम्	तुझको
ह	खलु	सचमुच
त्यत्	तम् (सुपामितिद्वितीयायाल्लुक्)	उसको
इन्द्र	हे इन्द्र !	हे इन्द्र
अर्णऽसातौ	अर्णसउदकस्य सातिर्लाभोयत्र (सलोपश्छान्दसः)	जलकीप्राप्ति वाले में
स्वः ऽमीळ्हे	ज्योतिषोऽर्थं संग्रामे (मीळ्हइतिसंग्राम नाम निघं० २ । १७)	प्रकाश के लिये युद्ध में
नरः	मनुष्याः	मनुष्य
आजा	संग्रामे (निघं०२।१७) (सप्तम्याडादेशः)	युद्धमें
हवन्ते	आह्वयन्ति	पुकारते हैं
तव	तव	तेरी

स्वधाऽव:	हे स्वेच्छावन् ! (आ०को०	हेस्वतंत्रइच्छावाले
इ॒यम्	इयम्	यह
आ	खलु (आ०को०)	सच मुच
स॒ऽम॒र्ये	संग्रामे (निघ० २।१७)	युद्ध में
ऊ॒ति:	रक्षा	रक्षा
वाजेषु	बलकर्मसु	बलके कामों में
अ॒त॒साय्या	निरन्तरंप्राप्तव्या (अतसातत्यगमने, अस्मादौणादिक आय्यप्रत्ययोऽसुगागमश्च)	निरन्तर प्राप्त होने के योग्य
भू॒त्	अभूत् (अडभावश्छान्दसः)	हुई है

संस्कृतार्थः।

हे इन्द्र ! उदकस्य प्राप्त्यवसरे ज्योतिषोऽर्थम् (कृते) संग्रामे (शत्रुसम्बन्धिनि) संग्रामे (च) मनुष्यास्तं त्वां खल्वाऽह्वयन्ति, हे स्वेच्छावन् ! संग्रामे बल

कर्मसु (च) इयंत्वदीया रक्षा निरन्तरं खलु प्राप्तव्याऽभूत् ॥ ६ ॥

भाषार्थः ।

हे इन्द्र ! जल की प्राप्ति के अवसर पर ज्योति के लिये (किये गए) युद्ध में और (शत्रु के साथ) संग्राम में मनुष्य सचमुच उस आप को बुलाते हैं, हे स्वतंत्र इच्छा वाले ! युद्ध में (और) बल के कर्मों में यह आप की रक्षा सचमुच निरंतर प्राप्त होने के योग्य रही है ॥ ६ ॥

वर्षा की प्राप्ति के लिये प्रकाश की प्राप्ति के लिये और युद्ध में सहायता के लिये मनुष्य इन्द्र को बुलाते हैं, इन्द्र की रक्षा सदा प्राप्त होने के योग्य रही है उस की अप्राप्तिमें यह विजय जो आर्य्य जाति को सदा रही है कदापि नहीं हो सकती थी ॥

इन्द्रोदेवता निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः।१११११०११॥

त्वंह॒त्यदि॑न्द्रस॒प्तयु॒ध्य॒न् पुरो॑-

व॒ज्रि॒न्पुरु॒कु॒त्सा॑यदर्दः। ब॒र्हिर्न॒यत्स-

दा॒स॒ह॒था॒व गं॒होरा॒ज॒न्वरि॑वः पू॒र-

वे॑कः ॥ ७ ॥

त्वम्	त्वम्	तूने
ह	खलु	सच मुच
त्यत्	सः (सुपामितियिमकेर्लुक्)	वह
इन्द्र	हे इन्द्र !	हे इन्द्र
सप्त	सप्त	सातों को
युध्यन्	युद्धं कुर्वन्	युद्ध करता हुआ
पुरः	पुराणि	गढ़ों को
वज्रिन्	हे वज्रिन् !	हे वज्रधारी
१ पुरुऽकुत्साय	पुरुकुत्साय	पुरुकुत्स के लिये
दर्दः	विदारितवान् (दृविदारणे, अस्माद्यङ्लुगन्ताल्लङि सिपिशपोलुक्हलादिलोपाभावोऽभ्यासस्य च)	छिन्न भिन्न किया

बर्हिः	बर्हिः	कुशा
न	इव	की न्याईं
यत्	यः (सुपामितिसोर्लुक्)	जिसने
१ सुऽदासे	सुदासनाम्नेराज्ञे	राजा सुदास के लिये
वृथा	अनायासेन	सहज से
वर्क्	अवृणक्, छेदितवान् (लङि सिपिविकरणस्य लुक्, अडभावश्च)	काटा
२ अंहोः	दारिद्र्यात् (ऋ०२।२६।४)	दरिद्रता से
राजन्	हे राजन्!	हे राजा
२ वरिवः	धनम् (निघं० ।२।१०)	धन को
१ पूरवे	पूरवे	पूरु के लिये
कः०	कृतवान् (डुकृञ्करणे लङि सिपिच्लेर्लुक् अडभावश्च)	किया

संस्कृतार्थः ।

हे वज्रिन्निन्द्र ! स त्वं खलु पुरुकुत्साय युद्धं कुर्वन् सप्त पुराणि विदारितवान् यः (त्वम्) सुदासे बर्हिरिवाऽनायासेन (शत्रून्) छेदितवान् हे राजन् ! (त्वम्) पूरवे दारिद्र्याद् धनं कृतवान् ॥ ७ ॥

भावार्थः ।

हे वज्र धारी इन्द्र ! सच मुच पुरुकुत्स के लिये युद्ध करते हुए उस आपने सात गढों को छिन्नाभिन्न किया और जिस आपने सुदास के लिये कुशा की न्याईं (शत्रुओं को) काट डाला, हे राजा आपने पूरु के लिये दरिद्रता से धन को किया ।७।

(१)पुरुकुत्स, सुदास और पूरु ये प्राचीनआर्य्यराजा हैं जिनके अनार्य शत्रुओं को इन्द्र ने नाश किया था ॥

(२) दरिद्रता से धन को किया, अर्थात दरिद्रता मिटा कर धनी बनाया ॥

इन्द्रोदेवता त्रिष्टुप्छन्दः ।११।११।११।११

त्वंत्यानइन्द्रदेवचित्रा मिषमापो-

नपीपयःपरिज्मन् । यया्शूरप्रत्य

स्मभ्यंयंसि त्मनमूर्जंनविश्वधक्ष-
रध्यै ॥ ८ ॥

त्वम्	त्वम्	तू
त्याम्	ताम्	उसको
नः	अस्मभ्यम्	हमारे लिये
इन्द्र	हे इन्द्र !	हे इन्द्र
देव	हे देव !	हे देव
चित्राम्	विविधरूपम्	नानारूप वाले को
इषम्	अन्नम्	अन्नको
आपः	आपः	जल
न	इव	की न्याईं
पीपयः	प्रवर्धय (प्यायीवृद्धौ ण्यन्ता- त्लोडर्थेलुङि व्यत्ययेन पीनापोऽभ्यासवत्व)	बढाओ

परिऽज्मन्	परितोगच्छन् (जमतिर्गतिकर्मा निघं०२।१४)	चारों ओर जाता हुआ
यया	येन	जिससे
शूर	हेशूर !	हे शूरवीर
प्रति	प्रति +	–
अस्मभ्यम्	अस्मभ्यम्	हमारे ताईं
यंसि	प्रति + यंसि, प्रयच्छसि	देते हो
त्मनम्	जीवनम् (आकार लोपः,उपधादीर्घाभावश्च)	जीवन को
ऊर्जम्	बलम्	बल को
न	इव	की न्याईं
विश्वध	विश्वतः (पृषोदरादित्वात्साधुः)	सब ओर
क्षरध्यै	क्षरितुम् (तुमर्थेऽध्यैन्प्रत्ययः)	वहनेकेलिये

संस्कृतार्थः।

हे इन्द्र ! हे देव ! त्वं परितो गच्छन्नस्मभ्यं विविध रूपं तमन्नं जलमिव प्रवर्धय येन हे शूर! अस्मभ्यं सर्वतो क्षरितुमिव जीवनं बलम् (च) प्रयच्छसि ॥ ८ ॥

भाषार्थः।

हे इन्द्र ! हे देव ! चारों ओर जाते हुए आप हमारे लिये नानारूप वाले उस अन्नको जलकी न्याईं बढाओ जिससे हे शूरवीर! आप हमारे ताईं सब ओर बहने की न्याईं जीवन (और) बलको देते हो ॥८॥

हमारीरक्षा के लिये चारों ओर फिरते हुए इन्द्र देव हमारे लिये नाना प्रकार के अन्न को जलकी बाढ की न्याईं बढावें जिस से हमारा बल इतना बढे और जीवन ऐसी उमंगो वाला हो कि हम से उछल कर दूसरों के दुःख को निवारण करने वाला होसके ॥

इन्द्रोदेवता विराट्त्रिष्टुप्छन्दः ।१०।११।१०।११॥

अकारि तइन्द्रगोतमेभि र्ब्रह्माण्योक्तानमसाहरिभ्याम् ।सुपेशसंवाजमाभरानः प्रातर्मक्षूधियावसुर्जगम्यात् ॥ ९ ॥

अकारि	कृताः (वचनव्यत्ययः)	की गई
ते	तुभ्यम्	तेरे लिये
इन्द्र	हे इन्द्र !	हे इन्द्र
गोतमेभिः	गोतमवंशीयैः	गोतमवंशियों से
ब्रह्माणि	मन्त्ररूपाःस्तुतयः	मन्त्ररूपस्तुतियां
आऽउक्ता	यावदुक्तानि (शेर्लोपः)	जहां तक उच्चारण किये गये
नमसा	नमस्कारेण	नमस्कार पूर्वक
हरिऽभ्याम्	अश्वाभ्याम्	घोड़ों के लिये
सुऽपेशसम्	सुरूपम्	सुन्दर रूप वाले को
वाजम्	धनम् (आ०को०)	धन को
आ	आ+	–
भर	आ + भर,आहर	ले आओ

नः	अस्मभ्यम्	हमारे लिये
प्रातः	प्रातः	प्रातःकाल में
मक्षु	शीघ्रम्	शीघ्र
धियाऽवसुः	ध्यानेन,धनवान्	ध्यानसे धन वाला
जगम्यात्	आगच्छतु	आवे

संस्कृतार्थः ।

हे इन्द्र ! गोतम वंशीयैस्त्वदर्थं मन्त्ररूपाः स्तुतयः कृताः यावत् (त्वदीय-) अश्वाभ्यां नमस्कारेण (सह) वचनानि (कृतानि) (सत्वम्) सुरूपं धनमस्मभ्यंदेहि ध्यानेन धनवान् (भवानत्र) शीघ्रंप्रातरागच्छतु ॥९॥

भावार्थः ।

हे इन्द्र ! गोतम वंशियों ने आप के लिये मन्त्र रूप स्तुतियां की हैं साथ ही (आप के) घोड़ों के लिये नमस्कार के साथ वचन (उच्चारण किये हैं) (वह) आप हमें सुन्दर रूप वाले धनको दें (और) ध्यान द्वारा धन वाले(आप) शीघ्र प्रातःकाल में (यहां) आवें ॥ ९ ॥

नोधा ऋषि जो गोतम वंशी हैं कहते हैं कि हमने इन्द्र की मंत्रों से स्तुति की है साथ ही इन्द्र के घोड़ों के लिये नमस्कार युक्त वचनों को कहा है वह हमें सुन्दर रूप वाले धन को दें और शीघ्र हमारे पास नित्य प्रातः काल में आवें॥

इतित्रिषष्टितमं सूक्तम्।

ऋ० मं०१ सू० ६४

मरुतोदेवता नोधाऋषिः

विनियोग–सत्र के २४ वें दिन आग्निमारुत शस्त्र में (आ० श्रो० सू० उ० १।४।१३) और अभिप्लव षडह के पांचवें दिन में यह सूक्त पढा जाता है (आ० श्रो० सू० उ० १।७।८)

"पिन्वन्त्यप" यह छठा मन्त्र मरुत्वतीय शस्त्र में धाय्या है। (आ० श्रौ० सू० ५।१४।७)

'नृष्ठिरमरुत' " यह १५ वां मन्त्र पशुयाग संबन्धी मरुतों की याज्या है (आ० श्रो० सू० ३।७।१२)

इस सूक्त में मरुतों की स्तुति है, मरुत वीर्यवान, भली-प्रकार पूजने योग्य,मेघावी, महान, सेचन समर्थ,बलवान, जीवन की चेष्टाओं से युक्त, रुद्र के कुमार, पाप से रहित, पवित्र करने वाले, सूर्यों की न्याईं दीप्तिमान, वृष्टि की बूंदों से युक्त, भूतगणों की न्याईं भयंकर रूप वाले, जवान, भयानक, बुढाप से रहित, केवल अपना पेट पालनेवालों को मारने वाले, न रुकने वाली गति से युक्त,पर्वतों की न्याईं महत्त्व को प्राप्त हुए २, सब को अपने बल

से कंपाने वाले,नाना प्रकार के अलंकारों से भूषित, छाती पर सोने के हार पहिनने वाले, कंधों पर अस्त्रों से सजे हुए, अपनी इच्छा द्वारा आकाश से प्रकट होने वाले, स्तोता को ऐश्वर्य से युक्त करने वाले, शत्रुओं क कंपाने वाले और उन को भक्षण करने वाले, अपने बल से वायु और बिजली को उत्पन्न करने वाले, सब ओर जाने वाले, आकाश के स्तनों को दोहने वाले, और दोहे हुए दूध से पृथिवी को सींचने वाले, कल्याण के देने वाले,यज्ञ में पुष्टि युक्त बहुतायत को बरसाने वाले, वेगयुक्त मेघ को घोड़े की न्याईं सींचनेके लिये प्रेरण करने वाले,क्षय रहित मेघरूपी कूप को दोहने वाले, वृद्धि से युक्त,विचित्र दीप्ति वाले, पर्वतों की न्याईं स्वयं बढ़े हुए, हलके दौड़ने वाले, अग्नि के साथ मिल कर जंगली हाथियों की न्याईं बनों को उजाड़ने वाले, सिंहों की न्याईं गरजने वाले, उत्तम ज्ञान वाले,चितकबरे हरिणों की न्याईं सुन्दर रूप वाले,संपूर्ण धन वाले, विचित्र हथियारों से जल को प्रेरण करने वाले, प्रजा के सताने वालों को नाश करने वाले, द्यौ और पृथिवी को गुंजाने वाले, गण रूप से चलने वाले, मनुष्यों पर उपकार करने वाले, शूर वीर,नाश करने वाले क्रोधसे युक्त, संपत्तियों के साथ इकट्ठे रहने वाले, बलों से संयुक, अस्त्रों के फेंकने वाले, अनन्त बल वाले, शूर वीरों के कंगन पहिनने वाले, हाथों में बाण को धारण करने वाले जलों के बढ़ाने वाले, शीघ्र गति से युक्त, स्वयं चलने वाले, निश्चलों के गिराने वाले,अपनेको न रुकने वाले बनाते हुए,चमकते हुए,अस्त्रों वाले, रथ के सुवर्ण मय पहियों से बादलों को ऊपर उठाने वाले, शत्रुओं के रगड़ने वाले, मनुष्यों को प्यार करने वाले, बहुत काम करने वाले,रुद्र के पुत्र,धूलि को उठाने वाले, बहुत बढ़े हुए और शीघ्रता से सामने आने वाले हैं, ऐसे मरुत हम लोगों में वीरों से युक्त,आक्रमण को हटाने वाले,हजार गुने और सौ गुने बढ़ने वाले स्थिर धन को शीघ्र स्थापन करें ॥

मरुतोदेवता जगतीछन्दः ।१२।१२।१२।१२

वृष्णेशर्धायसुमखायवेधसे

नोधःसुवृक्तिंप्रभरामरुद्भ्यः । अ-

पोनधीरोमनसासुहस्त्यो गिरः

समञ्जेविदथेष्वाभुवः ॥ १ ॥

वृष्णे	वीर्य्यवते	वीर्य्यवानके लिये
शर्धाय	गणाय	समूह के लिये
सुऽमखाय	सुपूजनीयाय	भलीप्रकार पूजने योग्य के लिये
वेधसे	मेधाविने (निघ०।३।१५)	मेधावी के लिये
१ नोधः	हे नोधः !	हे नोधा
सुऽवृक्तिम्	सुष्ठ्वाकर्षकम् (स्तोत्रम्)	खूबआकर्षणकरने वाले (स्तोत्र) को

प्र	प्र+	–
भर	प्र+भर, अर्पय	अर्पण कर
मरुत्ऽभ्यः	मरुद्भ्यः	मरुतों के लिये
अपः	अपः	जलों को
न	इव	जैसे
धीरः	प्रशान्तः	शान्त
मनसा	मनसा	मन से
सुऽहस्त्यः	कर्म कुशलः	कर्म में चतुर
गिरः	स्तुतीः	स्तुतियों को
२ सम्	सम्+	–
२ अञ्जे	सम्–अञ्जे, सञ्जीकरोमि	मैं सजाता हूं
विदथेषु	यज्ञेषु	यज्ञों में
आऽभुवः	सप्रभावाः (आ०को०)	प्रभाव वालों को

संस्कृतार्थः।

हे नोधः! वीर्यवते सुपूजनीयाय मेधाविने मरुद्गणाय सुष्ठ्वाकर्षकम् (स्तोत्रम्) अर्पय, यथा मनसाप्रशान्तः कर्मकुशलः (च पुरुषः)यज्ञेषु सप्रभावा अपः (सज्जी-) करोति तथाऽहम्) स्तुतीः सज्जीकरोमि ॥ १ ॥

भावार्थः

हे नोधा वीर्य्यवान भली प्रकार पूजने योग्य (और)मेधावी मरुद्गण के लिये खूब आकर्षण करने वाले (स्तोत्र) को अर्पण कर, जैसे मन से शान्त (और) कर्म में चतुर (पुरुष) यज्ञों में प्रभाव वाले जलों को (सजाता है वैसे)मैं स्तुतियों को सजाता हूं ॥ १ ॥

(१) मंत्र के पूर्वार्द्ध में नोधा ऋषि अपने आप को सम्बोधन करते हैं।

(२) ऋषि कहते हैं कि मैं मरुद्गण के लिये स्तुतियों को ऐसे सजाता हूं जैसे यज्ञ में ऋत्विज लोग जलों को प्रोक्षणी आदि पात्रों में भर कर सजाते हैं।

मरुतोदेवता जगतीछन्दः।१२।१२।१२।१२॥

ते जज्ञिरे दिव ऋष्वास उक्षणो

रुद्रस्यमर्या असुरा अरेपसः। पाव-

ऋष्वासः शुचयः सूर्याइव सत्वानोन-
द्रप्सिनोघोरवर्पसः ।२।

ते	ते	वे
जज्ञिरे	प्रादुर्बभूवुः	प्रकट हुए
दिवः	आकाशात्	आकाश से
ऋष्वासः	महान्तः (निघं०३।३)	महान
उक्षणः	सेक्तारः (उक्षसेचने,दीर्घाभाव श्छान्दसः)	सेचन करने वाले
रुद्रस्य	रुद्रस्य	रुद्र के
१ मर्याः	कुमाराः (आ०को०)	कुमार
२ असुराः	प्राणवन्तः	प्राण वाले

अरेपसः	रेपःपापंतद्रहिताः	पाप से रहित
पावकासः	पावकाः (जसोऽसुगागमः)	पवित्र करने वाले
शुचयः	दीप्ताः	दीप्तिमान
१ सूर्याःऽइव	सूर्य्याइव	सूर्य्यों की न्याईं
४ सत्वानः	भूतगणाः (तै०सं०४।५।१)	भूतगण
न	इव	की न्याईं
द्रप्सिनः	बिन्दुभिर्युक्ताः	बूंदों वाले
घोरऽवर्पसः	भयङ्कर रूपाः (वर्पइतिरूपनाम, निघं०३।७)	भयानक रूप वाले

संस्कृतार्थः।

ते महान्तः सेक्तारो रुद्रस्य कुमाराः प्राणवन्तः पापरहिताः पावकाः सूर्य्याइव दीप्तिमन्तो भूतगणा इव भयङ्कर रूपाः (वृष्टि-) बिन्दुभिर्युक्ताः (मरुतः) आकाशात्प्रादुर्बभूवुः ॥ २ ॥

भाषार्थः।

वे महान, सेचन समर्थ, रुद्रके कुमार, प्राणवाले, पाप से रहित, पवित्र करने वाले, सूर्यां की न्याईं दीप्तिमान, भूतगणों की न्याईं भयानक रूप वाले, (वृष्टिकी) बूंदों से युक्त (मरुत) आकाश से प्रकट हुए हैं ॥ २ ॥

(१) आकाश की भयानक अवस्थाके अभिमानी रुद्रदेवता हैं, और ऐसी दशा में प्रकट होने से मरुत उनके पुत्र हैं।

(२) प्राण वाले अर्थात बलवान जीवन की चेष्टाओं से युक्त।

(३) सूर्य्य अनेक हैं यद्यपि हमारी पृथिवी के स्वामी एक ही हैं।

(४) भूतगण जो रोग की अवस्था में मनुष्य को अनेक भयानक रूप में दीखते हैं।

मरुतोदेवता जगतीछन्दः।१२।१२।१२।१२॥

युवानोरुद्राअजराअभोग्घनोव-

वक्षुरध्रिगावःपर्वताइव। दृळ्हाचिद्

विश्वाभुवनानिपार्थिवा प्रच्यावय-

न्तिदिव्यानिमज्मना॥ ३॥

युवानः	युवानः	जवान
रुद्राः	घोराः	भयानक
अजराः	जरा रहिताः	बुढ़ापे से रहित
अभोक्ऽहनः	ये (अन्यान्) न भोजयन्तितेषां हन्तारः (हन्तेःक्विप्)	जो (दूसरों को) भोजन नहीं कराते उनके मारने वाले
ववक्षुः	महत्त्वं प्रापुः (ववक्षिथेतिमहन्नाम) (निघं०३।३)	महत्व को प्राप्त हुए २
अध्रिऽगावः	अधृतगमनाः, अप्रतिहतगतय-इत्यर्थः	न रुकने वाली गति से युक्त
पर्वताःऽइव	पर्वता इव	पर्वतोंकी न्याईं
दृळ्हा	दृढानि (शेर्लोपः)	दृढ
चित्	अपि	भी
विश्वा	सर्वाणि (शेर्लोपः)	सब

भुवनानि	भूतानि (आ०को०)	प्राणियों को
२ पार्थिवा	पृथिव्यांभवानि	पृथिवी में होने वालों को
प्र	प्र+	–
च्यावयन्ति	प्र + च्यावयन्ति, कम्पयन्ति	कंपाते हैं
२ दिव्यानि	दिवि भवानि	आकाश में होने वालों को
मज्मना	बलेन (निघं०२।९)	बलसे

संस्कृतार्थः ।

युवानो घोरा जरारहिता अभोजयितॄणांहन्तारोऽप्रतिहतगतयः (मरुतः)पर्वताइव महत्त्वं प्रापुः, (ते) पृथिव्यां दिवि(च)भवानि दृढान्यपि सर्वाणि भूतानि (निज-) बलेन कम्पयन्ति ॥ २ ॥

भापार्थः ।

जवान, भयानक, बुढापे से रहित, भोजन न कराने वालों के मारने वाले, न रुकने वाली गति से युक्त (मरुत) पर्वतों की न्याई महत्व को प्राप्त हुए हैं, (वे)पृथिवी (और) आकाश में होने वाले सम्पूर्ण दृढ़ प्राणियों को भी (अपने-) बल से कंपाते हैं ॥२॥

-(१) जो दूसरों को नहीं खिलाते और केवल अपना पेट पालते ऐसे अनार्य पुरुषों के मारने वाले।

(२) पृथिवीमें होने वाले दृढ प्राणी वृक्षआदि और आकाशमें होने वाले श्येन आदि हैं॥

मरुतोदेवता जगतीछन्दः ।१२।१२।१२।१२॥

चित्रैरञ्जिभिर्वपुषे व्यञ्जते वक्षः
सुरुक्माँ अधियेतिरेशुभे । अंसेष्वेषां
निमिमृक्षुर्ऋष्टयः साकंजज्ञिरेस्व-
धयादिवोनरः ॥ ४ ॥

चित्रैः	नानाविधैः	नानाप्रकार वालों से
अञ्जिऽभिः	अलङ्कारैः	अलङ्कारों से
वपुषे	रूपार्थम् (निघं०१।७)	रूप के लिये
वि	वि +	—

अञ्जते	वि+अञ्जते, भूषयन्ति	सिंगारते हैं
वक्षःऽसु	वक्षस्सु	छातियों पर
रुक्मान्	स्वर्णभूषणानि (आ०को०)	सोने के भूषणों को
अधि	अधि +	–
येतिरे	अधि + येतिरे, धृतवन्तः (यतीप्रयत्ने)	धारण किया है
शुभे	शोभार्थम् (भावेक्विप्)	शोभा के लिये
अंसेषु	स्कन्धेषु	कंधों में
एषाम्	एषाम्	इन के
नि	नि+	–
मिमृक्षुः	नि+मिमृक्षुः, सज्जिताबभूवुः (आ०को०)	सजे हैं
ऋष्टयः	आयुधानि	अस्त्र

साकम्	सह	साथ
जज्ञिरे	प्रादुर्बभूवुः	प्रकट हुए हैं
स्वधया	स्वेच्छया (आ०को०)	अपनी इच्छासे
दिवः	आकाशात्	आकाश से
नरः	नराः	नर

संस्कृतार्थः।

(मरुतः) रूपाऽर्थं नानाविधैरलङ्कारैः (आत्मानम्) भूषयन्ति, (एते) शोभाऽर्थंवक्षस्सु स्वर्णभूषणानि धृतवन्तः एषां स्कन्धेष्वायुधानि सज्जितानि बभूवुः (एते) नरा स्वेच्छयाऽऽआकात्प्रादुर्बभूवुः ॥४॥

भावार्थः।

रूप के लिये (मरुत) नाना प्रकार के अलङ्कारों से (अपने को) सिंगारते हैं इन्होंने) शोभा के लिये छातियों पर सोने के भूषणों को धारण किया है इन के कंधों पर अस्त्र सजे हुए हैं (ये) नर अपनी इच्छा द्वारा आकाश से प्रकट हुए हैं ॥ ४ ॥

विद्युत और मेरुज्योति (Aurora polaris) मरुद्गण के नाना अलंकार, छातियों के हार और बर्छी आदि अनेक रूप में प्रकट होते हैं, इन से युक्त हुए २ ये,वीर अपनी इच्छा से आकाश में से निकल पड़ते हैं।

मरुतोदेवता जगतीछन्दः।१२।१२।१२।१२॥

ईशानकृतोधुनयोरिशादसो वा-

तान्विद्युतस्तविषीभिरक्रत । दुह-

न्त्यूधर्दिव्यानिधूतयो भूमिंपिन्व-

न्तिपयसापरिज्रयः॥ ५ ॥

ईशानऽकृतः	ऐश्वर्य्ययुक्तं कुर्वाणाः	ऐश्वर्य्य से युक्त करते हुए
धुनयः	कम्पयितारः	कंपानेवाले
रिशादसः	रिशान्तिहिंसन्तीति रिशाः शत्रव-स्तेषामत्तारः (रिशाहिंसायाम्,अदभक्षणे, असुन्प्रत्ययः)	शत्रुओं के भक्षण करने वाले

वातान्	वायून्	वायुओं को
विऽद्युतः	विद्युतः	बिजलिओं को
तविषीभिः	बलैः	बलों से
अक्रत	उत्पादितवन्तः	उत्पन्न किया है
दुहन्ति	दुहन्ति	दोहते हैं
१ ऊधः	ऊधांसि (सुपामिति जसःसुः)	स्तनों को
दिव्यानि	आकाशेभवानि	आकाश म होने वालों को
धूतयः	कम्पयितारः	कंपाने वाले
भूमिम्	पृथिवीम्	पृथिवी को
पिन्वन्ति	सिञ्चन्ति (पिविसेचने)	सींचते हैं
पयसा	पयसा	दूध से

परिऽज्रयः	परितोगन्तारः (ज्रयतिर्गतिकर्मा निघं०२।१४)	सबओरजानेवाले

संस्कृतार्थः ।

(स्तोतारम्) ऐश्वर्य्ययुक्तं कुर्वाणाः शत्रूणां कम्पयितारोऽत्तारः (च मरुतोनिज-) वलै र्वायून् वि- द्युतः (च) उत्पादितवन्तः, परितोगन्तारः कम्पयि- तारः (च ते) आकाशे भवान्यूधांसि दुहन्ति (तनो दुग्धेन-) पयसा पृथिवीं सिञ्चन्ति ॥ ५ ॥

भावार्थः ।

(स्तोता को) ऐश्वर्य्यसे युक्त करनेवाले,शत्रुओंको कंपाने(और) भक्षण करने वाले (मरुतों ने अपने) वलों- से वायु(और) विजलियों को उत्पन्न किया है, सब ओर जाने वाले (और) कंपाने वाले (वे) आकाश में होने वाले स्तनों को दोहते हैं (और दोहे हुए) दूध से पृथिवी को सींचते हैं ॥ ५ ॥

(१) आकाश में होने वाले स्तन बादल हैं, जिन को मरुत दोहन करके पृथिवी को सींचते हैं ।

मरुतोदेवता जगतीछन्दः ।१२।१२।१२।१२।

पिन्वन्त्यपोमरुतःसुदानवः

पयो घृतवद्विदथेष्वाभुवः । अत्यंनमिहेविनयन्तिवाजिनमुत्संदुहन्तिस्तनयन्तमक्षितम् । ६ ।

पिन्वन्ति	सिञ्चन्ति (पिविसेचने)	सींचते हैं
अपः	अपः	जलों को
मरुतः	मरुतः	मरुत
सुऽदानवः	कल्याणदानाः (यास्कः)	कल्याण के देने वाले
पयः	क्षीरम्	दूध को
घृतऽवत्	घृत युक्तम्	घृत से युक्त को
विदथेषु	यज्ञेषु	यज्ञों में
आऽभुवः	सप्रभावाः (भा०को०)	प्रभाव वाले

अत्यम्	अश्वम् (निघं०।१।१४)	घोड़े को
न	इव	जैसे
२ मिहे	सेचनार्थम् (मिहसेचने,भावेक्विप्)	सींचने के लिये
वि	वि +	–
नयन्ति	वि+नयन्ति, प्रेरयन्ति	प्रेरण करते हैं
२ वाजिनम्	वेगवन्तम्	वेग वाले को
२ उत्सम्	कूपम् (निघं०।३।२३)	कूए को
दुहन्ति	दुहन्ति	दोहते हैं
स्तनयन्तम्	गर्जन्तम्	गर्जते हुए को
अक्षितम्	अक्षीणम्	क्षय रहित को

संस्कृतार्थः ।

कल्याण दाना मरुतोऽपः सिञ्चन्ति सप्रभावाः

(ते) यज्ञेषु घृतयुक्तं क्षीरं (वर्षयन्ति ते) वेगवन्तं (मेघम्) अश्वमिव सेचनार्थं प्रेरयन्ति,गर्जन्तमक्षीणं कूपम् (च) दुहन्ति ॥ ६ ॥

भावार्थः।

कल्याण के देने वाले मरुत जलों को सींचते हैं, प्रभावशाली (वे) यज्ञों में घृत से युक्त दूध को (बरसाते हैं, वे) वेगवाले (मेघ) को घोड़ेकी न्याईं सींचने के लिये प्रेरण करते हैं, (और) गर्जते हुए क्षय रहित कूप को दोहते हैं ॥ ६ ॥

(१) घृत से युक्त दूध को अर्थात पुष्टि युक्त बहुतायत को यजमान के ताईं देते हैं।

(२) जैसे लोक में वेग वाले सांड घोड़े,को वीर्य दान के लिये प्रेरण करते हैं इस प्रकार मरुत अन्तरिक्ष में मेघ को जल सींचने के लिये प्रेरण करते हैं।

(३) जैसे मनुष्य खेत को पानी देने के लिये चरस भर भर कर कूप को दोहते हैं इस प्रकार मरुत कूप रूपी मेघ से जल निकाल कर पृथिवी पर सींचते हैं।

मरुतोदेवता निचृज्जगतीछन्दः।१२।१२।१२।१२।

महिषासोमायिनश्चित्रभानवो गिरयोनस्वतवसोरघुष्यदः। मृ-

गाइवहस्तिनःखादथावना यदारु-

णीषुतविषीरयुग्ध्वम् ।७।

महिषासः	महान्तः (नि०३।३,जसोऽसुगागमः)	बड़े
मायिनः	प्रज्ञायुक्ताः (मायेतिप्रज्ञानाम,निघं० ३।९)	बुद्धि से युक्त
चित्रऽभानवः	विचित्र दीप्तयः	नाना प्रकार की दीप्ति वाले
गिरयः	पर्वताः	पर्वत
न	इव	की न्याईं
स्वऽतवसः	स्वतोवृद्धाः (तवतिर्वृद्ध्यर्थः)	स्वयं बढ़े हुए
रघुऽस्यदः	लघुधावनयुक्ताः (लरयरत्वम्,स्यन्द्-धावने आ०को०)	हलकेदौड़ने वाले
मृगाःऽइव	वन्याइव (आ० को०)	जंगलियोंकी न्याईं
हस्तिनः	गजाः	हाथी

खादथ	भक्षयथ	खाते हो
वना	वनानि (शेर्लोप,)	वनों को
यत्	यदा,	जब
आरुणीषु	अरुणवर्णासु	लालरंगवालियोंमें
तविषीः	बलानि	बलों को
अयुग्ध्वम्	संयोजयथ (लङर्थेलुङ्)	मिलाते हो

संस्कृतार्थः।

(हे मरुतः !) महान्तःप्रज्ञायुक्ता विचित्रदीप्तयः पर्वता इव स्वतो वृद्धा लघुधावनयुक्ताः (यूयम्) वन्या-गजा इव वनानि भक्षयथ, यदा (यूयम्) अरुणवर्णासु (अग्नेर्ज्वालासु निज-)बलानि संयोजयथ ॥ ७ ॥

भाषार्थः।

(हे मरुतो)महान बुद्धिसे युक्त,नाना प्रकार की दीप्ति वाले, पर्वतों की न्याईं स्वयं वढे हुए, हलके दौड़ने वाले आप जंगली हाथियों की न्याईं वनों

को खाते हो जब आप लाल रंग वाली (अग्नि की लाटों) में (अपने) बलों को मिलाते हो ॥ ७ ॥

जैसे सांढ बैल गौओं में अपने बलों को मिलाकर घासके खेतों को उजाडते हैं वैसे मरुत लाल रंग वाली अग्नि की ज्वालाओं में अपने बलोंको मिलाकर मस्त हाथियोंकी न्याईं वनों को उजाड़ते हैं।

मरुतोदेवता जगतीछन्दः१२।१२।१२।१२॥

सिंहाइवनानदतिप्रचेतसः पि-
शाइवसुपिशोविश्ववेदसः। च्पो-
जिन्वन्तःपृषतीभिर्ऋष्टिभिः स-
मित्सबाधःशवसाहिमन्यवः। ८।

सिंहाःऽइव	सिंहाइव	सिंहों की न्याईं
नानदति	भृशं नर्दन्ति	अत्यन्त गर्जते हैं
प्रऽचेतसः	प्रकृष्टज्ञानाः	उत्तम ज्ञान वाले
पिशाःऽइव	रुरुमृगा इव (पिशइतिरुरुनाम सा०भा०)	चितकबरे हरिणों की न्याईं

सुऽपिशः	सुरूपाः	सुन्दर रूप वाले
विश्ववेदसः	सम्पूर्णधन युक्ताः	संपूर्ण धन वाले
क्षपः	उदकम् (निघं०।१।१२)	जल को
जिन्वन्तः	प्रेरयन्तः	प्रेरण करते हुए
पृषतीभिः	चित्रैः (आ०को०)	विचित्रों से
ऋष्टिऽभिः	आयुधैः	हथियारों से
सम्	सम्यक्	पूरे से
इत्	(पूरणः)	–
सऽबाधः	बाधयासह वर्त्तमानान्, प्रजा-पीडका नित्यर्थः	प्रजा के सताने वालों का
शवसा	बलेन	बल से
अहिऽमन्यवः	अहिराहन्ता मन्युःक्रोधो येषांते	नाश करने वाले क्रोध से युक्त

को खाते हो जब आप लाल रंग वाली (अग्नि की लाटों) में (अपने) बलों को मिलाते हो ॥ ७ ॥

जैसे सांड बैल गौओं में अपने बलों को मिलाकर घासके खेतों को उजाडते हैं वैसे मरुत लाल रंग वाली अग्नि की ज्वालाओं में अपने बलोंको मिलाकर मस्त हाथियोंकी न्याईं वनों को उजाड़ते हैं।

मरुतोदेवता जगतीछन्दः१२।१२।१२।१२॥

सिंहाइवनानदतिप्रचेतसः पि-
शाइवसुपिशोविश्ववेदसः । क्षपो-
जिन्वन्तःपृषतीभिर्ऋष्टिभिः स-
मित्सबाधःशवसाहिमन्यवः । ८ ।

सिंहाःऽइव	सिंहाइव	सिंहों की न्याईं
नानदति	भृशं नर्दन्ति	अत्यन्त गर्जते हैं
प्रऽचेतसः	प्रकृष्टज्ञानाः	उत्तम ज्ञान वाले
पिशाःऽइव	रुरुमृगा इव (पिशइतिरुरुनाम सा०भा०)	चितकबरे हरिणों की न्याईं

सुऽपिशः	सुरूपाः	सुन्दर रूप वाले
विश्ववेदसः	सम्पूर्णधन युक्ताः	संपूर्ण धन वाले
क्षपः	उदकम् (निघं०१।१२)	जल को
जिन्वन्तः	प्रेरयन्तः	प्रेरण करते हुए
पृषतीभिः	चित्रैः (आ०को०)	विचित्रों से
ऋष्टिऽभिः	आयुधैः	हथियारों से
सम्	सम्यक्	पूरे से
इत्	(पूरणः)	–
सऽबाधः	बाधयासह वर्त्तमानान्, प्रजापीडका नित्यर्थः	प्रजा के सताने वालों का
शवसा	बलेन	बल से
अहिऽमन्यवः	अहिराहन्ता मन्युःक्रोधो येषांते	नाश करने वाले क्रोध से युक्त

संस्कृतार्थः।

(मरुतः) प्रकृष्टज्ञाना रुरुमृगा इव सुरूपाः सम्पूर्ण धनयुक्ता श्चित्रैरायुधैरुदकं प्रेरयन्तः (प्रजा-) पीडकान् (प्रति) सम्यग् बलेनाऽऽहन्तृक्रोधयुक्ताः (सन्तः) सिंहाइव भृशं नर्दन्ति॥ ८॥

भापार्थः।

(मरुत) उत्तम ज्ञान वाले, चितकबरे हरिणों की न्याईं सुन्दर रूप वाले,संपूर्ण धन वाले,विचित्र हथियारों से जल को प्रेरण करने वाले (प्रजा को)सताने-वालों के (प्रति) पूरे बलसे नाश करने वाले क्रोध से युक्त हुए २ सिंहों की न्याईं अत्यन्त गरजते हैं॥८॥

(१) धूलि युक्त आंधी में वर्षा की बूंदें पड़ने से मरुत चितकबरे हरिणों की न्याईं सुन्दर प्रतीत होते हैं।

मरुतोदेवता निचृज्जगती छन्दः।११।१२।१२।१२।

रोदसीआवदतागणश्रियो नृषाचःशूराःशवसाहिमन्यवः। आवन्धुरेष्वमतिर्नदर्शता विद्युन्नत-

स्थौमरुतोरथेषुवः । ९ ।

रोदसी०	द्यावा पृथिव्यौ	द्यौ(और)पृथिवीको
आ	आ+	–
वदत	आ+वदत,शब्दयत (अन्तर्भावितण्यर्थः)	गुँजाओ
गणऽश्रियः	हे गणरूपेण गच्छन्तः !	हे गणरूप से चलने वालों
नृऽसाचः	नॄन्मनुष्यान् सेवमानाः	मनुष्योंपर उपकार करने वाले
शूराः	हे शूराः !	हे शूरवीरो
शवसा	वलेन	वल से
अहिऽमन्यव	आहन्तृक्रोधयुक्ताः	नाश करने वाले क्रोध से युक्त
आ	आ+	–
वन्धुरेषु	रमणीयेषु (भा०को०)	सुन्दरों में

अमतिः	चन्द्रः (आ०को०)	चन्द्रमा
न	इव	की न्याईं
दर्शता	दर्शनीया	सुन्दर
विऽद्युत्	विद्युत्	बिजली
न	इव	की न्याईं
तस्थौ	आ+तस्थौ,	चढ़ी हुई है
मरुतः	हे मरुतः !	हे मरुतो
रथेषु	रथेषु	रथों में
वः	युष्माकम्	आपके

संस्कृतार्थः।

हे गणरूपेण गच्छन्तः। हे शूराः! मनुष्यान्सेवमानाः (शत्रुभ्यश्च) आहन्तृक्रोधयुक्ताः (यूयं निज-) बलेन द्यावापृथिव्यौ शब्दयत, हे मरुतः! युष्माकं रमणीयेषु रथेषु चन्द्रइव, दर्शनीया विद्युदिव (काचिद्देवी) आतस्थौ ॥ ९ ॥

भापार्थः।

हे गणरूप से चलने वालो ! हे शूरवीरो ! मनुष्यों पर उपकार करने वाले, (और शत्रुओं के ताईं) नाश करने वाले क्रोध से युक्त (आप अपने) बल से द्यौ (और) पृथिवी को गुंजाओ, हे मरुतो ! आपके सुन्दर रथों में चन्द्रमा की न्याईं सुन्दर विद्युत जैसी (कोई देवी) चढ़ी हुई है॥९॥

"विद्युत जैसी कोई देवी" यातो विद्युत है या मेघज्योति जो अनेक रूप में प्रकट होती है।

मरुतोदेवता जगतीछन्दः।१२।१२।१२।१२।

विश्ववेदसोरयिभिःसमोकसः
सम्मिश्लासस्तविषीभिर्विरप्शिनः।
अस्तारइषुंदधिरेगभस्त्यो रनन्त-
शुष्मावृषखादयोनरः ॥ १० ॥

विश्वऽवेदसः| सम्पूर्णधनयुक्ताः| सम्पूर्ण धनोंवाले

रयिऽभिः	श्रीभिः	सम्पत्तियों से
सम्ऽओकसः	समानस्थानाः (उचसमवाये)	इकट्ठे रहने वाले
सम्ऽमिश्लासः	संमिश्राः संयुक्ता इत्यर्थः (जसोऽसुगागमः, रस्यलत्वञ्च)	संयुक्त
तविषीभिः	बलैः	बलों से
विऽरप्शिनः	महान्तः (निघं॰३।३)	महान
अस्तारः	प्रक्षेप्तारः (असुक्षेपणे,ताच्छीलिक स्तृन्,इडभावश्छान्दसः)	फेंकने वाले
इषुम्	बाणम्	बाण को
दधिरे	धृतवन्तः	धारण किया है
गभस्त्योः	हस्तयोः	दोनों हाथों में
अनन्तऽशुष्माः	अनन्तबलाः	अनन्त बल वाले

वृषऽखादयः	वृषाणां शूराणां सम्बन्धि खादिः कङ्कणं येषां ते (आ०को०)	शूरवीरों के कंगन पहिनने वाले
नरः	नराः	नरों ने

संस्कृतार्थः।

सम्पूर्ण धनयुक्ताः श्रीभिः समानस्थाना बलैः संयुक्ता महान्तः (अस्त्राणाम्) प्रक्षेप्तारोऽनन्त-बलाः शूरसम्बन्धि कङ्कण धारिणो नरा हस्तयोर्बाणं धृतवन्तः ॥ १० ॥

भावार्थः।

सपूर्ण धनों वाले, सम्पत्तियों के साथ इकट्ठे रहने वाले, बलों से संयुक्त, महान, (अस्त्रों के) फेंकने वाले, अनन्त बलवाले, शूरवीरों के कंगन पहिननेवाले नरों ने दोनों हाथोंमें बाण को धारण किया है ॥ १० ॥

(१) जैसे कोई २ राजपूत एक पैर में कड़ा पहनते हैं, अथवा दुलहा एक हाथ में कंगन डोरा पहनता है अथवा कोई २ भुजा में अनन्त पहनते हैं ये सब शूरवीरता के चिन्ह हैं, जो आर्य जाति में अब तक लुप्त नहीं हुए हैं ॥

मरुतोदेवता जगतीछन्दः ।१२।१२।१२।१२।

हिरण्ययेभिःपविभिःपयोवृध उ-

जिघ्नन्त आपथ्योऽन पर्वतान्। म-

खा अयासः स्वसृतो ध्रुवच्युतो दुध्र-

कृतो मरुतो भ्राजदृष्टयः ॥११॥

हिरण्ययेभिः	सुवर्णमयैः	सोनेवालों से
पविऽभिः	(रथ-) चक्रैः	पहियों से
पयःऽवृधः	जलानां वर्धयितारः (क्विप्)	जलों के बढाने वाले
उत्	उत्+	–
जिघ्नन्ते	उत्+जिघ्नन्ते ऊर्ध्वंगमयन्ति (हन्तेर्व्यत्ययेनाऽऽत्मनेपदम्, शपः श्लुश्छान्दसः)	ऊपर उठाते हैं
आऽपथ्यः	पथिभवः (रथः)	रस्ते में चलनेवाला (रथ)
न	इव	की न्याईं

पर्वतान्	मेघान्	मेघों को
मखाः	पूजनीयाः (आ०को०)	पूजने योग्य
अयासः	क्षिप्रगतयः (आ०को०)	शीघ्रगति वाले
स्वऽसृतः	स्वयंसरणशीलाः (क्विप्)	स्वयं चलने वाले
ध्रुवऽच्युतः	ध्रुवाणांनिश्चलानाम् (वृक्षादीनाम्) च्यावयितारः	निश्चलों को गिराने वाले
दुध्रऽकृतः	(आत्मानम्)दुर्धरं कुर्वाणाः	(अपने को) न रुकने वाले बनाते हुए
मरुतः	मरुतः	मरुत
भ्राजत्ऽऋष्टयः	दीप्यमानाऽऽयुधाः	चमकतेहुए अस्त्रों से युक्त

संस्कृतार्थः ।

जलानां वर्षयितारः, पूजनीयाः,क्षिप्रगतयः, स्वयं सरण शीला निश्चलानां च्यावयितारः, (आत्मानम्)

दुर्धरं कुर्वाणा दीप्यमानाऽऽयुधा मरुतः सुवर्णमयै रथ-चक्रैः पथिभवः (रथः) इव मेघानूर्ध्वं गमयन्ति॥११॥

भाषार्थः।

जलों के बढ़ानेवाले, पूजनीय, शीघ्र गति से युक्त, स्वयं चलने वाले निश्चलों को गिराने वाले, (अपने-को) न रुकने वाले बनाते हुए, चमकते हुए अस्त्रों वाले मरुत, सोने के पहियों से रस्ते में चलने वाले (रथ) की न्याई बादलों को ऊपर उठाते हैं॥११॥

(१) जैसे रस्ते में चलता हुआ रथ धूली को ऊपर उठाता है इस प्रकार मरुत अपने सुनहरी 'रथ के पहियों से बादलों को ऊपर उठाते हैं, जहां आकाश की ठंडक लगने से वे बरस पड़ते हैं

मरुतोदेवता जगतीछन्दः ।१२।१२।१२।१२॥

घृषुंपावकंवनिनंविचर्षणिं रुद्र-स्यसूनुंहवसागृणीमसि। रजस्तुरं-तवसंमारुतंगण मृजीषिणंवृषणंस-श्चतश्रिये॥ १२॥

घृषुम्	(शत्रूणाम्)घर्षकम्	(शत्रुओं के) रगड़ने वाले को
पावकम्	पावकम्	पवित्र करनेवालेको
वनिनम्	कामयमानम्	प्रेम करनेवालेको
विऽचर्षणिम्	कर्मिष्ठम् (आ०को०)	बहुत काम करने वाले को
रुद्रस्य	रुद्रस्य	रुद्रके
सूनुम्	पुत्रम्	पुत्र को
हवसा	आह्वानेन	पुकार कर
गृणीमसि	स्तुमः (गृशब्दे मसइकारागमः)	हमस्तुति करते हैं
रजःऽतुरम्	रजसःपांसोस्तुरं त्वरयितारं प्रेरकमित्यर्थः (तुरत्वरणे,क्विप्)	धूलि के उठाने वाले को

तवसम्	प्रवृद्धम्	बहुतवढ़े हुए को
मारुतम्	मरुत्सम्बन्धिनम्	मरुत्सम्बन्धीको
गणम्	गणम्,	गणको
ऋजीषिणम्	शीघ्रमागन्तारम् (आ०को०)	शीघ्रता से सामने आने वाले को
वृषणम्	वीर्य्यवन्तम्	वीर्य्यवान को
सश्चत	गच्छत (निघं०२।१४)	जाओ
श्रिये	सम्पत्त्यर्थम्	संपत्ति के लिये

संस्कृतार्थः ।

(वयं शत्रूणाम्) घर्षकम् (मनुष्याणाम्) पावकं कर्म्मिष्ठं रुद्रस्य पुत्रं स्तुमः, (तम्) पांसोःप्रेरकं प्रवृद्धं शीघ्रमागन्तारं वीर्य्यवन्तं मारुतंगणम्(प्रति) सम्पत्त्यर्थं गच्छत ॥ १२ ॥

भाषार्थः ।

हम (शत्रुओं के) रगड़ने वाले, (मनुष्यों के) पवित्र करने वाले (और) बहुत काम करने वाले, रुद्र

के पुत्र की स्तुति करते हैं (उस) धूलि के उठाने वाले, बहुत बढे हुए, शीघ्रता से सामने आने वाले (और) वीर्य्यवान मरुद्गण के पास संपत्ति के लिये जाओ ॥ १२ ॥

(१) रुद्र का पुत्र मरुद्गण।

मरुतोदेवता जगतीछन्दः ।१२।१२।१२।१२।

प्रनूसमर्तःशवसाजनाँअति तस्थौ-
वऊतीमरुतोयमावत। अर्वद्भि र्वा-
भरतेधनानृभि राप्रच्छ्यंक्रतुमा-
तिपुष्यति ।१३।

प्र	प्र+	–
नु	क्षिप्रम्	शीघ्र
सः	सः	वह
मर्तः	मनुष्यः	मनुष्य

शवसा	बलेन	बलसे
जनान्	मनुष्यान्	मनुष्यों को
अति	अतीत्य	लांघकर
तस्थौ	प्र+तस्थौ,प्रतिष्ठितो बभूव	प्रतिष्ठित हुआ
वः	युष्माकम्	आपकी
ऊती	रक्षणेन (तृतीयायाःपूर्वसवर्णदीर्घत्वम्)	रक्षा से
मरुतः	हे मरुतः !	हे मरुतो
यम्	यम्	जिस को
आवत	अरक्षत	रक्षित किया
१ अर्वत्ऽभिः	अश्वैः	घोड़ों से
१ वाजम्	अन्नम्	अन्न को

भरते	सम्पादयति	संपादन करता है
धना	धनानि (शेर्लोपः)	धनों को
नृऽभिः	मनुष्यैः	मनुष्यों से
आऽपृच्छ्यम्	आप्रष्टव्यम्	पूछने के योग्य को
क्रतुम्	ज्ञानम् (आ०को०)	ज्ञान को
आ	आ+	–
क्षेति	आ+क्षेति, प्राप्नोति(क्षिगतौ)	प्राप्त होता है
पुष्यति	पुष्टोभवति	पुष्ट होता है

संस्कृतार्थः ।

हे मरुतः! स मनुष्यः क्षिप्रं बलेन मनुष्यानतीत्य प्रतिष्ठितोबभूव यम् (निज) रक्षणेन (यूयम्) अरक्षत, (सः) अश्वैरन्नं मनुष्यैर्धनानि (च) सम्पादयति (सः) आप्रष्टव्यं ज्ञानं प्राप्नोति, पुष्टः (च) भवति। १३

भाषार्थः ।

हे मरुतो वह मनष्य शीघ्र बल द्वारा सब

मनुष्यों से बढ़ कर प्रतिष्ठित हुआ है जिस को आपने (अपनी) रक्षा से रक्षित किया है, वह घोड़ों द्वारा अन्न को (और) मनुष्यों द्वारा धनोंको संपादन करता है वह पूछने योग्य ज्ञान को प्राप्त करता है (और) पुष्ट होता है ॥ १३॥

(१) वह घोड़ों द्वारा अन्न को, अर्थात शत्रु के अन्न को और मनुष्यों द्वारा अर्थात सेना द्वारा शत्रु के धनों को प्राप्त करता है।

(२) पूछने योग्य ज्ञान, अर्थात असाधारण ज्ञान; जिसको पूछने के लिये लोग आकांक्षा करें।

मरुतोदेवता जगती छन्दः ।१२।१२।१२।१२।

चर्कृत्यंमरुतःपृत्सुदुष्टरं द्युमन्तं शुष्मंमघवत्सुधत्तन। धनस्पृतमुक्थ्यं विश्वचर्षणिं तोकंपुष्येमतनयंशतं-हिमाः । १४ ।

चर्कृत्यम्	कर्मसमर्थम् (यङ्लुगन्तात्करोतेः क्यप्,तुगागमश्च)	काम करने में समर्थ को
मरुतः	हे मरुतः !	हे मरुतो
पृत्ऽसु	संग्रामेषु	युद्धों में
दुस्तरम्	दुःखेन तरितव्यम् अजेयमित्यर्थः	न जीते जाने वाले को
द्युऽमन्तम्	दीप्तिमन्तम्	प्रकाश वाले को
शुष्मम्	वलम्	वल को
मघवत्ऽसु	धनवत्सु (मघमितिधननाम, निघं॰२।१०)	धनवानों में
धत्तन	स्थापयत (तस्यतनादेशः)	स्थापन करो
धनऽस्पृतम्	धनैः प्रीतम्	धनों से प्रसन्न को
उक्थ्यम्	प्रशस्यम् (निघं॰ ३।८	प्रशंसाकेयोग्य का

विश्वऽच-र्षणिम्	सर्वदर्शिनम्	सर्वदर्शी को
तोकम्	पुत्रम्	पुत्र को
पुष्येम	पोषयेम	हम पालते रहें
तनयम्	सन्ततिम्	सन्तान को
शतम्	शतम्	सौ
हिमाः	हेमन्तर्तूपलक्षितान् (संवत्सरान्)	वर्षों पर्य्यन्त

संस्कृतार्थः ।

हे मरुतः ! (अस्मदीयेषु) धनवत्सु कर्मसमर्थं संग्रामेष्वजेयं दीप्तिमन्तम् (च) बलं स्थापयत (वयम्) धनैः प्रीतं प्रशस्यं सर्वदर्शिनं पुत्रं (तस्य) सन्ततिं (च) शतवर्षपर्य्यन्तं पोषयेम ॥ १४ ॥

भाषार्थः ।

हे मरुतो ! (हमारे) धनवानों में काम करने में समर्थ, युद्धों में न जीते जाने वाले, (और) दीप्ति

मान, बल को स्थापन करो, (हम) धनों से प्रसन्न, प्रशंसा योग्य,सर्वदर्शी पुत्रको (और उसकी) सन्तान को सौ वर्ष पर्यन्त पालते रहें ॥ १४ ॥

मरुतोदेवता निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः।१०।११।११।११॥

नू ष्ठिरंमरुतोवीरवन्त मृतीषाहं रयिमस्मासुधत्त। सहस्रिणंशतिनं शूशुवांसं प्रातर्मक्षूधियावसुर्जगम्यात् ॥१५॥

नु	क्षिप्रम्	शीघ्र
स्थिरम्	स्थिरम्	स्थिर को
मरुतः	हे मरुतः !	हे मरुतो
वीरऽवन्तम्	वीरैर्युक्तम्	वीरों से युक्त को
ऋतिऽसहम्	आक्रमणनिवारकम	आक्रमण के हटाने वाले का

रयिम्	धनम्	धन को
अस्मासु	अस्मासु	हम में
धत्त	स्थापयत	स्थापन करो
सहस्रिणम्	सहस्र गुणम्	हजार गुणे को
शतिनम्	शत गुणम्	सौ गुणे को
शशुऽवांसम्	वर्धमानम्	बढ़ने वाले को
प्रातः	प्रातः	प्रात काल में
मक्षु	शीघ्रम्	शीघ्र
धियाऽवसुः	ध्यानेन धनवान्	ध्यानद्वाराधनवान
जगम्यात्	आगच्छतु	आवे

संस्कृतार्थः।

हे मरुतः ! (यूयम्) अस्मासु वीरोपेतमाक्रमण-
निवारकं सहस्रगुणं शतगुणम् (च) वर्धमानं स्थिरं

धनं स्थापयत, ध्यानेन धनवान् (भवद्गणः) शीघ्रं प्रातरागच्छतु ॥ १५ ॥

भाषार्थः ।

हे मरुतो ! आप हम में वीरों से युक्त, आक्रमण को हटाने वाले, हजार गुणे (और) सौ गुणे, बढने वाले, स्थिर धन को शीघ्र स्थापन करो, ध्यान द्वारा धनवान (आपका गण) शीघ्र प्रातःकाल में आवे ॥ १५ ॥

हम में मरुत ऐसा धन स्थापन करें कि जिसके द्वारा हम वीरों का पालन करके उन से युक्त हों और जिस के द्वारा हम शत्रुओं के आक्रमण को निवारण करसकें, जो धन शत्रु के धन से हजार गुना और सौ गुना हो, जो धन बढने वाला हो और जो धन हमारे पास स्थिरता से रहे।

इति चतुःषष्टितमं सूक्तम्।

ऋ० मं०१ सू०६५

अग्निर्देवता, पराशरऋषिः

(वसिष्ठस्य सुतः शक्तिः शक्तेः पुत्रः पराशरः)

विनियोग—सत्रयाग के दसवें दिन वैश्वदेव शस्त्र में पहिले यह सूक्त पढ़ा जाता है (शां०श्रौ०सू०उ० २।१२।२४)

इस और अगले पांच सूक्तों का द्विपदा विराट छन्द है, अर्थ के लिये दो दो मन्त्र जुड़े हुए लिखे हैं परन्तु पढ़े अलग अलग जाते हैं, ७० सूक्तके अन्तिम मंत्र का कोई जोड़ा नहीं है।

इन सूक्तों में अग्नि के अप्रत्यक्ष रूप का वर्णन है प्रथम में अग्नि को सारी चेतन सृष्टि का बीजरूप वर्णन कियाहै, जल जो प्राणियों के जीवनके हेतु हैं, और जिन के बिना लोक मृत के समान है, उनके गर्भ में भी अग्नि ही हैं जो जलों को प्राणियों के जीवन का हेतु बनाते हैं।

जब इन्द्र के पोरुष से इस पृथिवी पर समुद्र सरित और स्रोत रूप में जल स्थित होगए तब देवता जीवसृष्टि की रचना करने के निमित्त अग्नि को जो सृष्टिरचना रूपी यज्ञ को लेकर जलोंकी गुफा में छिपे हुए थे खोजने लगे,जैसे मनुष्य पशु को चुराकर ले जाते हुए चोर को पैरके खोज द्वारा ढूंढते हैं, अग्नि के पैर का खोज ऋत के व्रत अर्थात सृष्टि के नियम थे जिन के पीछे२ देवता गए, वहां पर देवताओं की बड़ी भारी सभा हुई, और उन्होंने देखा कि जलों के गर्भमें अग्नि ही प्रथम जीव रूपसे उत्पन्न हुए हैं और उन की माता स्तोत्रों द्वारा उनको बढ़ा रही हैं(इस प्रथम सूक्ष्मजीव (cell) से ही सब वृक्ष, पशु,मनुष्यों की क्रमशः उत्पत्ति हुई) यही *अग्नि,वायु द्वारा वृक्षोंकी रगड़ से प्रकट होकर दावाग्नि रूपमें बनों-*

को खातेहैं यही जीव रूप में ऐसे श्वास लेतेहैं जैसे जलोंमें बैठा हुआ हंस (क्योंकि सूक्ष्म जीव के शरीर की बनावट जल की न्याईं द्रव है और वृक्ष, पशु,मनुष्य आदि के शरीर इन्हीं सूक्ष्म जीवों cells के पुञ्ज हैं) यही जीव रूप में सवेरे जाग कर मनुष्यों को निद्रा से चेत कराते हैं यही सोम की न्याईं शरीर को रचने वालेहैं (क्योंकि जीव जगत की सामग्री से स्वयं ही अपना शरीर रच लेता है, माता के गर्भ में माता के शरीर की सामग्री से और जन्म हुए पीछे बाह्य सामग्री से)

अग्निर्देवता द्विपदाविराट् छन्दः।१०।१०

पश्वानतायुंगुहाचतन्तं नमोयु-
जानंनमोवहन्तम् (१)। सजोषाधी-
राःपदैरनुग्म न्नुपत्वासीदन्विश्वे-
यजत्राः (२)। १।

पश्वा	पशुना	पशुके साथ
न	इव	जैसे
तायुम्	चौरम् (निघं०३।२४)	चोर को

गुहा	गुहायाम् (सुपामितिसप्तम्यालुक्)	गुफा में
चतन्तम्	गच्छन्तम् (निघ०२।१४)	जाते हुए को
१ नमः	यज्ञम् (आ०को०)	यज्ञ को
१ यजानम्	धारयन्तम्	धारण करते हुए को
१ नमः	यज्ञम्	यज्ञ को
१ वहन्तम्	वहन्तम्	लेजाते हुए को
सऽजोषाः	सङ्गताः (आ०को०)	इकट्ठे हुए २
धीराः	मेधाविनः	मेधावी
१ पदैः	पादचिन्हैः	पैर के चिन्हों से
अनु	अनु+	–
ग्मन्	अनु+ग्मन्, अन्वगमन् (गमेर्लुङ्च्छान्दस-श्च्लेर्लुक्)	पीछे २ गए

उप	उप+	–
त्वा	त्वाम्	तुझ को
सीदन्	उप+सीदन्, उपनिषेदुः	पास बैठे
विश्वे	सर्वे	सब
यजत्राः	यष्टव्याः	पूजनीय

संस्कृतार्थः।

(हे अग्ने!) यज्ञं धारयन्तं यज्ञं वहन्तम्(च त्वाम्) सङ्गता मेधाविनः (देवाः)पशुनासह गुहायां गच्छन्तं चौरमिव पादचिन्हैरन्वगमन् (पुनः) यष्टव्याः (ते) सर्वे त्वामुपनिषेदुः ॥१॥

भावार्थः।

(हे अग्नि) यज्ञ को धारण करते हुए (और) यज्ञ को.ले जाते हुए(आप)को इकट्ठे हुए२मेधावी (देवता) पैर के चिन्हों से पीछे२ गए, जैसे पशु के साथ गुफा में जाते हुए चोर(के पीछे२ मनुष्य जाते हैं, फिर) पूजनीय (वे) सब आप के पास बैठे ॥१॥

(१) अग्नि के पैर के चिन्ह ऋत के नियम हैं जैसे अगले मंत्रसे प्रतीत होता है ॥

अग्निर्देवता द्विपदाविराट् छन्दः।१०।१०

ऋतस्यदेवाअनुव्रतागु र्भुवत्परिष्टिर्द्यौर्नभूम (३)। वर्धन्तीमापःपन्वासुशिश्विव मृतस्ययोनागर्भसुजातम् (४)। २।

२ ऋतस्य	ऋतस्य	ऋत के
देवाः	देवाः	देवता
२ अनु	अनु+	–
२ व्रता	व्रतानि (शेर्लोपः)	नियमों को
२ गुः	अनु+गुः, अनुगतवन्तः (अडभावः)	पीछे२ गए

भुवत्	अभवत् (अडभावः,उवङादेशश्छान्दसः)	हुई
परिष्टिः	परिषद् (ऋ०७।१८।७)	सभा
द्यौः	द्यौः	द्यौ
न	इव	की न्याई
भूम	महती (ह्रस्वश्छान्दसः)	बड़ी
वर्धन्ति	वर्धयन्ति (अन्तर्भावितण्यर्थः, व्यत्ययेनपरस्मैपदम्)	बढाते हैं
ईम्	(पूरणः)	—
आपः	आपः	जल
पन्वा	स्तोत्रेण (पनस्तुतौ,भावेउ-प्रत्ययः)	स्तोत्र से
सुशिश्विम्	सुष्ठुवर्धमानम् (श्विवृद्धौ;किः प्रत्ययो द्वित्वञ्च)	सुन्दररूप से बढ हुए को

ऋतस्य	जलस्य (निघं०१।१२)	जल के
योना	योनौ (सुपामितिषष्ठयाडाऽऽदेशः)	योनि में
गर्भे	मध्ये	बीच में
सुऽजातम्	सुष्ठुजातम्	भलीप्रकार जन्मे हुए को

संस्कृतार्थः।

देवा ऋतस्य व्रतान्यनुगतवन्तः, (तेषाम्) द्यौरिव महती परिषदभवत् जलस्य योनौ मध्ये सुष्ठु जातं सुष्ठु वर्धमानम् (च शिशुम्) आपः स्तोत्रेण वर्धयन्ति।२।

भाषार्थः।

देवता ऋत के नियमों के पीछे २ गए उनकी द्यौ जैसा बड़ी सभा हुई जल की योनि के मध्य में भली प्रकार जन्मे हुए (और) बढते हुए (बालक) को जल स्तोत्रों द्वारा बढाते हैं॥

(१) जब इस पृथिवी पर अग्नि ने प्रथम जीवरूप से जलों के गर्भ में जन्म लिया तो उनको माता ने उन को स्तुतियों से बढाया इसलिये अब भी जीव स्तुति से बढते हैं और झिडकने से घटते हैं॥

(२) इससे यह भी भविष्य अर्थ निकल सकता है कि जीवन का रहस्य ढूंढनेके लिये विद्वानोंको बडी२ सभाएं होंगी और वे अन्वेषण करके यह निश्चय करेंगे कि जीवन का व्यवहार जीव रहित सृष्टि

के व्यवहार से भिन्न नहीं है, यहां भी वही ऋत काम करता है जो निर्जीव सृष्टि में करता है और उसी ऋत का अनुगमन करने से जीवन का रहस्य खुल जायगा ॥

अग्निर्देवता द्विपदाविराट् छन्दः ।१०।१०

पुष्टिर्नरण्वाक्षितिर्नपृथ्वी गिरि-
र्नभुज्मक्षोदोनशम्भु (५)। अत्योना-
ऽज्मन्त्सर्गप्रतक्तः सिन्धुर्नक्षोदःक-
ईंवराते (६)।२।

पुष्टिः	पुष्टिः	पुष्टि
न	इव	की न्याईं
रण्वा	रमणीया (सा०भा०)	रमणीय
क्षितिः	पृथिवी (निघं०१।१)	पृथिवी
न	इव	की न्याईं

पृथ्वी	विस्तीर्णा	विस्तार वाली
गिरिः	मेघः (निघं०।१०)	मेघ
न	इव	की न्याईं
भुज्म	भोजयिता (सुपामितिसोर्लुक्)	भोजन देने वाला
क्षोदः	उदकम् (निघं०१।१२)	जल
न	इव	की न्याईं
शम्ऽभु	शान्तिप्रदम्	शांति देने वाला
अत्यः	अश्वः	घोड़ा
न	इव	की न्याईं
अज्मन्	संग्रामे (निघं०२।१७सप्त-म्यालुक्)	युद्ध में
सर्गऽप्रतक्तः	अभिक्रमणार्थं प्रयातः [सर्गोऽभिक्रमणम् (आ०को०)तकतिर्गति-कर्मानिघं०२।१४]	धावे के लिये आगे बढ़ा हुआ

सिन्धुः	समुद्रः	समुद्र
न	इव	की न्याईं
क्षोदः	क्षोभयुक्तः (आ०को०)	क्षोभयुक्त
कः	कः	कौन
ईम्	एनम्	इस को
वराते	वारयेत (वृञ्वरणे,अन्तर्भावितण्यर्थादस्माल्लेट्याडागमः)	रोके

संस्कृतार्थः

(अग्निः) रमणीया पुष्टिरिव, विस्तीर्णा भूमिरिव, भोजयिता मेघ इव, शान्तिप्रदमुदकमिव, संग्राम आक्रमणार्थं प्रयातोऽश्वइव,क्षोभयुक्तःसमुद्र इव(अस्ति) एनं को वारयेत ॥३॥

भाषार्थः ।

(अग्नि) रमणीय पुष्टि की न्याईं, विस्तारवाली पृथिवी की न्याईं भोजन देने वाले मेघ की न्याईं, शान्ति देने वाले जलकी न्याईं, युद्ध में धावे के लिये

आगे बढे हुए घोडे की न्याईं (और) क्षोभयुक्त समुद्र का न्याईं (हैं) इनको कौन रोके ॥३॥

जैसे पुष्टि सुहावनी है जैसे विस्तृत भूमि निवासस्थान के देनेवाली है जैसे मेघ वर्षा द्वारा भोजन को देता है, जैसे जल शान्ति को देने वाले हैं इसी प्रकार अग्नि अपने उपासक को सुख देने वाले हैं। शत्रुके आक्रमण के लिये अग्निदेव ऐसे हैं जैसे युद्ध में धावे के लिये [आगे बढ़ा हुआ घोड़ा और जैसे क्षोभ युक्त समुद्र, इन के आक्रमण को कोई नही रोक सकता ॥

अग्निर्देवता द्विपदाविराट्छन्दः ।१०।१०

जामिःसिन्धूनांभ्रातेवस्वस्रा मि-

भ्यान्नराजावनान्यत्ति (७) । यद्वा-

तजूतोवनाव्यस्था दग्निर्दाति रो-

मापृथिव्याः (८) ।४।

जामिः	वन्धुः	वन्धु
सिन्धूनाम्	स्यन्दनशीलानाम् (अपाम्)	जलों का

भ्राताऽइव	भ्रातेव	भ्राता की न्याई
स्वस्राम्	स्वसॄणाम् (नुडभावश्छान्दसः)	बहनों का
इभ्यान्	धनिनः	धनवानों को
न	इव	जैसे
राजा	राजा	राजा
वनानि	वनानि	वनों को
अत्ति	भक्षयति	खाता है
यत्	यदा	जब
वातऽजूतः	वातेनवेगंप्राप्तः	वायु के द्वारा वेग को प्राप्त हुआ २
वना	वनानि (शेर्लोपः)	वनोंको
वि	वि+	–

अस्थात्	वि+अस्थात्, प्रसरति (लडर्थेलुङ्)	फैलता है
अग्निः	अग्निः	अग्नि
ह	खलु	सचमुच
दाति	छिनत्ति (दाप्लवने)	कतरता है
रोम	रोमाणि (शेर्लोपः)	बालों को
पृथिव्याः	पृथिव्याः	पृथिवी के

संस्कृतार्थः।

अग्निः स्वसृणांभ्रातेवाऽपांबन्धुः (अस्ति सः) राजा धनिन इव वनानि भक्षयति यदा (च) वायुना वेगं प्राप्तः (सन्) वनानि प्रसरति (तदा) खलु पृथिव्याः रोमाणि च्छिनत्ति ॥ ४ ॥

भावार्थः।

अग्नि बहनों के भाई की न्याई जलोंके बन्धु (हैं) और वनों को ऐसे खाते हैं जैसे राजा धनवानों को, (और) जब वायु के द्वारा वेग को प्राप्त होकर वनों

में फैलते हैं (तब) सचमुच पृथिवी के बालों को कतरते हैं ॥४॥

अग्नि जलों के बीच में ऐसे रहते है जैसे बहनों के बीच में भाई, और वनों को इस प्रकार खाजाते हैं जैसे धनवानों को अन्यायी राजा, जब अग्नि वायु की सहायता से वनों में फैलते हैं तो उनको ऐसे अनायास से साफ कर डालते हैं जैसे नापित बालों को ॥

अग्निर्देवता द्विपदाविराट्छन्दः ।१०।१०

श्वसित्यप्सु हंसो न सीदन् क्रत्वा चेतिष्ठो विशामुषर्भुत् (९)। सोमो न वेधा ऋतप्रजातः पशुर्न शिश्वा विभुर्दूरेभाः (१०) ।५।

श्वसिति	श्वसिति	श्वास लेता है
अप्सु	अप्सु	जलों में
हंसः	हंसः	हंस

न	इव	की न्याईं
सीदन्	उपविशन्	बैठता हुआ
क्रत्वा	ज्ञानेन (नामाधाऽस्भावः)	ज्ञान से
चेतिष्ठः	चेतयितृतमः (चितीसंज्ञाने)	अत्यन्त चेत कराने वाला
विशाम्	मनुष्याणाम् (निघं०२।३)	मनुष्यों का
उषःऽभुत्	उपसिप्रबुद्धः (क्विप्प्रत्ययोवस्यमत्वम्)	उषाकाल में जागा हुआ
१ सोमः	सोमः	सोम
न	इव	की न्याईं
वेधाः	रचयिता	रचने वाला
ऋतऽप्रजातः	जलादुत्पन्नः	जल से उत्पन्न हुआ २
पशुः	पशुः	पशु
न	इव	की न्याईं
	शिशुना (गौमाधाऽभावः)	बालक के साथ

विऽभः	प्रबलः	प्रबल
दूरेऽभाः	दूरेभाःप्रकाशो यस्यसः (बहुलवचनादलुक्)	दूर से दीप्तिवाला

संस्कृतार्थः।

(अग्निः) अप्सुहंसइवोपविशन् श्वसिति, (सः) उषसि प्रबुद्धः (सन्) ज्ञानेन प्रजानां चेतयितृतमः (अस्ति) जलात् प्रादुर्भूतः (सः) सोम इव (शरीरस्य) रचयिता (अस्ति) शिशुना (सहवर्तमानः) पशुरिव प्रबलः दूरतः प्रकाशितः (च) अस्ति ॥५॥

भावार्थः।

(अग्नि) जलों में हंस की न्याईं बैठते हुए श्वास लेते हैं (वह) उषाकाल में जागकर ज्ञान द्वारा प्रजाओं के अत्यन्त चेत करानेवाले हैं, जल से उत्पन्नहुए२ (वह) सोम की न्याईं शरीर के रचने वाले हैं (और) बालक के साथ होने वाले पशु का न्याईं प्रबल(और) दूर से दीप्ति वाले हैं ॥५॥

(१) अग्निदेवजल से उत्पन्न हुए २ अर्थात जीव रूप में इस प्रकार शरीर को रचलेते हैं जैसे सोम अर्थात् औषधि और वनस्पतियोंके अन्तर्गत रस उनके शरीरों को रचताहै क्योंकि रसके द्वारा ही वृक्ष आदि जीव बढते हैं और रस के सूखने से मर जाते हैं ॥

इति पञ्चषष्टितमं सूक्तम्।

ऋ० मं०१ सू०६६।

अग्निर्देवता, पराशरऋषिः

विनियोग—इस सूक्त का किसी कर्म विशेष में विनियोग नहीं है।

अग्नि हमारे लिये रमणीय धन की न्याईं, देखने वाले सूर्य्य की न्याईं, प्राणरूप जीवन की न्याईं नित्य संबंध वाले पुत्र की न्याईं, शीघ्रगामी घोड़े की न्याईं और दूध वाली गौ की न्याईं हैं, वह रमणीय घर की न्याईं और पके हुए जौ की न्याईं सुख को देने वाले हैं, वह स्तुति शील ऋषि की न्याईं प्रशंसा के योग्य और प्रसन्न घोड़े की न्याईं बल को धारण करने वाले हैं, वह असह्य तेज वाले, और नित्य किये जाने वाले यज्ञ की न्याईं पाप को दूर करने वाले हैं, वह घर में रहने वाली सब को पालने में समर्थ स्त्री की न्याईं हैं, उज्वल होकर दहकते हुए वह प्रजाओं में सूर्य्य का काम देते हैं जैसे सुवर्ण से मंढा हुआ तीव्र रथ युद्ध में उपयोगी होता है वैसे अग्नि मनुष्यों में हैं, वह युद्ध में छोडी हुई सेना की न्याईं भय को धारण करने वाले हैं—शत्रु के लिये वह ऐसे हैं जैसे चमकीले मुख वाला अस्त्र, जो कुछ उत्पन्न हुआ है और जो होगा वह अग्नि हैं, ऐसे अग्नि देव को पूजते हुए हम उनकी सालोक्यता को प्राप्त होवें और इस लोक और परलोक दोनों को जीतें॥

अग्निर्देवता द्विपदाविराट्छन्दः।१०।१०।

रयिर्न चित्रा सूरो न संदृग् आयुर्न प्राणो नित्यो न सूनुः (१)। तक्वा न-

भूर्णिर्वनासिषक्ति पयोनधेनुः शुचिर्विभावा ॥ १ ॥

रयिः	धनम्	धन
न	इव	की न्याई
चित्रा	रमणीयम् (आ०को०)	रमणीय
सूरः	सूर्य्यः	सूर्य्य
न	इव	की न्याई
समऽहक्	सम्यग्द्रष्टा	भलीभान्तिदेखने वाला
आयुः	जीवनम्	जीवन
न	इव	की न्याई
प्राणः	प्राण रूपम्	प्राण रूप
नित्यः	नित्य सम्बन्धी	नत्य सम्बन्ध वाला

न	इव	की न्याईं
नुः	पुत्रः	पुत्र
तक्वा	अश्वः (आ० को०)	घोड़ा
न	इव	की न्याईं
भूर्णिः	शीघ्रगामी	शीघ्र चलने वाल
वना	वनानि	वनों को
सिसक्ति	सेवते	सेवन करता है
पयः	पयस्वती (छान्दसोमतुपोलुक्)	दूध वाली
न	इव	की न्याईं
धेनुः	गौः	गौ
शुचिः	विशुद्धः	पवित्र
विभाऽवा	अतिदीप्तिमान्	अत्यन्त दीप्ति वाला

संस्कृतार्थः।

(अग्निः)रमणीयंधनमिव, सम्यग्द्रष्टा सूर्य्यइव

प्राणरूपं जीवनमिव, नित्यसम्बन्धी पुत्र इव, शीघ्र-गाम्यश्व इव, पयस्वती गौरिव (अस्ति) विशुद्धोऽति-दीप्तिमान् (च सः) वनानि सेवते ॥१॥

भाषार्थः ।

(अग्नि) रमणीय धन की न्याईं, देखनेवाले सूर्य्य की न्याईं, प्राणरूप जीवनकी न्याईं, नित्य संबंध वाले पुत्र की न्याईं, शीघ्र चलने वाले घोड़ेकी न्याईं और दूध वाली गौ की न्याईं (हैं) पवित्र (और) अत्यन्त दीप्ति वाले (वह) वनों को सेवन करते हैं॥१॥

अग्निर्देवता द्विपदाविराट् छन्दः ।१०।१०।

दाधार क्षेममोको न रण्वो यवो-

न पक्वो जेता जनानाम् (३) । ऋषि-

र्न स्तुभ्वा विक्षु प्रशस्तो वाजी न प्रीतो

वयो दधाति (४) ।२।

दाधार	धारयति (लडर्थे लिट्)	धारण करता है

मनुष्यों में प्रशंसा किए गए हैं, (वह) प्रसन्न घोड़े की न्याईं बल को धारण करते हैं ॥२॥

आग्नर्देवता द्विपदाविराट्छन्दः ।१०।१०।

दुरोकशोचिःक्रतुर्ननित्यो जाये-
वयोनावरंविश्वस्मै (५)। चित्रोयद-
भ्राट्श्वेतोनविक्षु रथोनरुक्मोत्वेषः
समत्सु (६)॥ ३ ॥

दुरोकऽ-शोचिः	दुरोकं दुस्सेवं शोचिस्तेजोयस्यसः (सा०भा०)	कष्ट से सहारे जाने वाले तेज से युक्त
क्रतुः	यज्ञः	यज्ञ
न	इव	की न्याईं
नित्यः	नित्यंविहितः	नित्य किये जाने वाला

जायाऽइव	जायेव	स्त्री की न्याईं
योनौ	गृहे (निघं०३।४)	घर में
अरम्	(भरणे) समर्था	पालन में समर्थ
विश्वस्मै	सर्वस्मै	सब के लिये
चित्रः	उज्ज्वलः (आ०फो०)	उज्ज्वल
यत्	यदा	जब
अभ्राट्	भ्राजते भ्राजदीप्तौ,लङर्थेलङि॰ व्यत्ययेन परस्मैपद छान्दसश्चशापोलुक्)	दहकता है
श्वेतः	शुभ्रवर्णः (सूर्य.) (सा०भा०)	श्वेत रंग वाला (सूर्य)
न	इव	की न्याईं
विक्षु	प्रजासु	प्रजाओं में

क्षेमम्	सुखम्	सुख को
ओकः	गृहम्	घर
न	इव	की न्याईं
रण्वः	रमणीयः	रमणीय
यवः	यवः	जौ
न	इव	की न्याईं
पक्वः	पक्वः	पका हुआ
जेता	जेता	जीतने वाला
जनानाम्	मनुष्याणाम्	मनुष्यों के
ऋषिः	ऋषिः	ऋषि
न	इव	की न्याईं
स्तुभ्वा	स्तुतिकर्ता (स्तुभ-स्तुतौक्वनिप्प्रत्ययः)	स्तुति करने वाला

वि॒क्षु	मनुष्येषु	मनुष्यों में
प्र॒ऽश॒स्तः	प्रशस्तः	प्रशंसाकिया गया
वा॒जी	अश्वः	घोड़ा
न	इव	की न्याईं
प्री॒तः	प्रीतः	प्रसन्न हुआ २
वयः	बलम् (आ०को०)	बल को
द॒धा॒ति॒	धारयति	धारण करता है

संस्कृतार्थः ।

मनुष्याणां जेता(अग्निः) रमणीयं गृहमिव,पक्वो यवइव (च) सुखं धारयति(सः) स्तुतिकर्ता ऋषिरिव मनुष्येषु प्रशस्तः (अस्ति सः) प्रीतोऽश्वइव बलं धारयति ॥२॥

भाषार्थः ।

मनुष्यों के जीतने वाले (अग्नि) रमणीय घरकी न्याईं (और) पके हुए जौ की न्याईं सुख को धारण करते हैं (वह) स्तुति करने वाले ऋषि की न्याईं

रथः	रथः	रथ
न	इव	की न्याईं
रुक्मी	स्वर्णवेष्टितः	सोने से मंढा हुआ
त्वेषः	तीव्रः (त्विडितितीव्रतानाम आ०को०)	तीव्र
समत्ऽसु	संग्रामेषु (निघं०२।१७)	युद्धों में

संस्कृतार्थः।

(अग्निः) दुस्सेवतेजाः, नित्यंविहितो यज्ञ इव (चाऽस्ति,सः) गृहे (वर्तमाना) (भरण-) समर्था जायेव (अस्ति) यदा (सः) उज्ज्वलः (सन्) भ्राजते (तदा) प्रजासु शुभ्रवर्णः सूर्य्य इव (भवति) सः संग्रामेषु तीव्रः स्वर्ण वेष्टितो रथइव (चाऽस्ति) ॥३॥

भाषार्थः।

(अग्नि) कष्ट से सहारे जाने वाले तेज से युक्त (और) नित्य किये जाने वाले यज्ञ की न्याईं हैं (वह) घर में रहनेवाली सब को (पालन में)समर्थ स्त्री की न्याईं (हैं) जब(वह) उज्ज्वल होकर दहकते हैं (तब) प्रजाओं में श्वेत रंग वाले सूर्य्य की न्याईं (होजाते हैं,

अंक ३९-४०] [मार्गशीर्ष-पौष १९६६

ऋग्वेद संहिता

(वैदिकजीवनभाष्ययुता)

पदपाठ, शब्दार्थ, संस्कृत और भाषा अनुवाद
टिप्पणी और मन्त्रों के आशय पर
व्याख्यान से युक्त

जिसको मुलतान निवासी पं० शङ्करदत्तशास्त्री
की सहायता से शिवनाथ आहिताग्नि ने
सम्पादन किया।

लाहौर

पञ्जाब एकानोमीकल यन्त्रालय में प्रिण्टर लाला
लालमन के अधिकार से छपा।

१२ अंकों का अग्रिम मूल्य २)
पहले २४ अंकों का मूल्य ५॥)

ऋ० सं० ३७–३८ अङ्कयोः शुद्ध्यशुद्धि पत्रम्।

पृ०	पंक्ति	अशुद्धम्	शुद्धम्
१६०२	५	स०	सू०
१६०९	३	कुत्सोय	कुत्साय
१६११	१२	ज्नम्ना:	ज्नुम्ना:
१६१६	१०	न्	वज्रिन्
१६१७	१४	स्वर्मी-	स्वर्मी-
१६२०	१७	यत्सु-	यत्सु-
१६२१	१४	(दू	दू
१६२६	४	जघामिव	जघमिव
१६३१	१५	(स्तापम्)	(स्तोपम्)
१६४१	१२	स्वेच्छ ।	स्वेच्छया
१६४२	१४	रियान्त	रियन्ति
१६४७	१९	निचृज्जगती	जगती
,,	२१	रुघ	रघु
१६५८	४	क्षतो	क्षतो
,,	८	पाश	पाशे
१६६१	८	रुद्रस्य	रुद्रस्य
१६६१	१६	(तर	(तुर्
११६३	९	र्जि-	वर्जि-
१६६६	१२	पत्सु	पृत्सु
१६६७	१०	योग्यका	योग्यकी
१६६९	१५	काम	कम्
,,	,,	वालेका	वालेकी
१६७०	७	भ्रमुऽ	भूमुऽ
१६७२	२०	व्रत	व्रत
१६७४	८	यजानम्	युजानम्
१६७७	१०	स्ततो,	स्तुतो,
,,	१९	मऽ	मुऽ
१६७८	१५	जैसा	जैसी
१६८१	२	चोदः	चोदः
१६८९	१४	नत्य	नित्य
१६९०	३	मनु	मनुः

(वह) युद्धों में तीव्र (और) सोने से मंढे हुए रथ की न्याई (हैं) ॥ ३ ॥

अग्निर्देवता द्विपदाविराट्छन्दः।१०।१०।

सेनेवसृष्टाऽमंदधात्य स्तुर्नदिद्यु-
त्त्वेषप्रतीका (७) । यमोहजातोय-
मोजनित्वं,जारःकनीनांपतिर्जनी-
नाम् (८) ॥ ४ ॥

सेनाऽइव	सेनेव	सेना की न्याई
सृष्टा	सृष्टा	छोड़ी हुई
अमम्	भयम (निघं० १०।२१)	भय को
दधाति	धारयति	धारण करता है
अस्तुः	(अस्त्राणाम्)क्षेप्तुः (असुक्षेपणे)	(अस्त्र) चलाने वाले के

न	इव	की न्याईं
दिद्युत्	आयुधम्	अस्त्र
त्वेषऽप्रतीका	दीप्तमुखम्	चमकीले मुख वाला
१ यमः	(इन्द्रस्य) यमजः (इन्द्राऽग्न्योर्युगपदुत्पन्नत्वात्)	(इन्द्र का) जोड़ला
ह	एव	ही
जातः	उत्पन्नः (भूतसङ्घः)	उत्पन्न हुए २ (प्राणी)
यमः	यमजः	जोड़ला
जनिऽत्वम्	उत्पत्स्यमानम् (भूतजातम्)	उत्पन्न होने वाले (जीव)
२ जारः	जरयिता कन्यात्वस्य निवर्तयितेत्यर्थः	कन्यापन को तोड़ने वाला
२ कनीनाम्	कन्यानाम्	कन्याओं के

यह सब अग्नि हैं क्योंकि यही सब के जीवन हैं जैसे ६५ सूक्त में कहा गया है।

(२) कन्याओं का विवाह उन के कन्याभाव को नष्ट करता है और वह विवाह अग्नि के द्वारा ही होता है इसलिये अग्नि कन्याओं के जार कहे गये हैं।

विवाहिता स्त्री अग्नि को घर में स्थापन करके पति के साथ नित्य पूजन करती है और गृहपति कह कर उसकी स्तुति करती है इस लिये अग्नि विवाहिता स्त्रियों के भी पति हैं॥

अग्निर्देवता द्विपदाविराट्छन्दः।१०।१०।

तंवश्चराथावयंवसत्याऽस्तंनगा-

वोनक्षन्तइद्धम् (९)। सिन्धुर्नक्षोदः

प्रनीचीरैनोन्नवन्तगावःस्वर्दृशी-

के (१०)॥५॥

तम्	तम्	उसको
वः	युष्मान्, स्वामित्यर्थः(आदरार्थं बहुवचनम्)	तुझ को

१ चराथा	चरन्त्या (जङ्गम-रूपया पश्वाहुत्या) (निरु०१०।२१) (चिमकोरात्वम्)	चलने वाले (पशु की आहुति) से
वयम्	वयम्	हम
वसत्या	निवसन्त्या (स्थावर रूपया औषधाहुत्या) (निरु०१०।२१)	स्थावर (अन्न की आहुति) से
अस्तम्	गृहम् (निघं०३।४)	घर को
न	इव	जैसे
गावः	गावः	गौएं
नक्षन्ते	प्राप्नुवन्ति (व्यत्ययेनाऽऽत्मनेपदम्)	प्राप्त होती हैं
इद्धम्	प्रदीप्तम्	दीप्तिमान को
सिन्धुः	स्यन्दन शीलम्	बहने वाला

न	इव	की न्याईं
२ क्षोदः	उदकम् (निघं०१।१२)	जल
प्र	प्र +	–
२ नीचीः	नीचैः (ऋ०५।४४।४)	नीचे
ऐनोत्	प्र+ऐनोत् प्राप्नोति (इण् गतौ-लडर्थे लिट् व्यत्ययेन इनुप्रत्ययः)	प्राप्त होता है
२ नवन्त	प्राप्नुवन्ति (नवतिर्गतिकर्म्मा, निघं०।२।१४ लडर्थे लङ्,अडभावश्छान्दसः)	पहुंचती हैं
२ गावः	किरणाः (निघं०१।५)	किरणें
२ स्वः	नभसि	ऊपरके आकाशमें
दृशीके	दर्शनीये	दर्शनीय में

संस्कृतार्थः ।

(हे अग्ने! वयम्) पश्वाहुत्या,औषधाऽऽहुत्या (च)

प्रदीप्तं त्वां (प्राप्नुवाम) यथा गावः गृहं प्राप्नुवन्ति, (सोऽग्निः) स्यन्दनशीलमुदकमिव नीचैः प्राप्नोति (तस्य) किरणा दर्शनीये नभसि प्राप्नुवन्ति ॥५॥

भावार्थः।

(हे अग्नि) पशु की आहुति से (और) अन्न की आहुति से दीप्तिमान आपको हम (प्राप्त होवें) जैसे गौएं घर को प्राप्त होती हैं, (वह अग्नि) बहते हुए जल की न्याईं नीचे को प्राप्त होते हैं उनकी किरणें दर्शनीय ऊपर के आकाश में पहुंचती हैं ॥५॥

(१) नित्य जो अन्न से आहुति दी जाती है और बड़े बड़े सोम आदि यज्ञों में जो कभी कभी पशु के हृदय से आहुति दी जाती है इन के द्वारा हम अग्नि की सालोक्यता को प्राप्त [करें जैसे गौएं सायंकाल में घर को प्राप्त होती हैं।

(२) जैसे अग्निदेव नीचे की ओर भी जाते हैं और ऊपर के लोक में भी फैलते हैं इसी प्रकार हम अग्नि की सालोक्यता से इस नीचे के लोक और परलोक दोनों को जीतें ॥

इति षट्षष्टितमं सूक्तम्।

ऋ०मं०१.सू० ६७

अग्निर्देवता पराशरऋषिः।

विनियोग—लैङ्गिक,

अग्निदेव वनों में जयशील, मनुष्यों के मित्र, शीघ्रकारी को चाहने वाले, सुन्दर अभिप्राय को रखने वाले, कुशल की न्याईं अनुकूल और ज्ञान की न्याईं कल्याण रूप हैं, यह सब वीर्यों को हाथ में लिये हुए मनुष्य के हृदय रूपी गुफा में बैठे हैं और सब देवता इन से डरते हैं, जो पुरुष हृदय से रचे हुए मन्त्रों से स्तुति करते हैं वे इस आत्मरूपी अग्नि को जानते हैं, अग्नि ने परमात्मरूप में सत्य संकल्पों द्वारा अन्तरिक्ष और द्युलोक को ठैराया हुआ है। और वही प्रत्येक मनुष्य के हृदय में आत्मरूप से विद्यमान है। जो पुरुष अग्नि को हृदयस्थ आत्मा के रूप में जानकर ऋत की धारा में बैठा है और जो अग्नि को प्रदीप्त कर उस में यज्ञ करते हैं वे सब कल्याणों को प्राप्त करते हैं। जो अग्नि जलों के बीच में सर्वांग रूप से विद्यमान हैं, जो ओषधि रूप से उगते हैं और जो प्रसूतिका स्त्रियों में मनुष्य रूप से प्रकट होते हैं, धीर पुरुषों ने उसी को घर की न्याईं अपना आश्रय स्थान बनाया है।

अग्निर्देवता द्विपदाविराट् छन्दः ।१०।१०

वनेषु जायुर्मर्तेषु मित्रो वृणीते श्रुष्टिं

राजेवाजुर्यम् (१)। क्षेमो न साधुः

क्रतुर्न भद्रो भुवनस्वाधीर्होताहव्यवाट् (२) ॥१॥

१ वनेषु	वनेषु	वनों में
१ जायुः	जयशीलः (जिजयेअस्मादुण्प्रत्ययः)	जयशील
मर्तेषु	मनुष्येषु	मनुष्यों में
मित्रः	मित्ररूपः (लिङ्गव्यत्यय)	मित्र रूप
वृणीते	सम्भजते,स्वीकरोतीत्यर्थः	स्वीकार करता है
श्रुष्टिम्	क्षिप्रकारिणम् (श्रुष्टीतिक्षिप्रनाम निरु०६।१२)	शीघ्रकारी को
राजाऽइव	राजेव	राजा की न्याईं
अजुर्यम्	जरा रहितम् (जृषवयोहानौभावेण्यत् वृद्धौ कृतायामात्वस्योत्वंछान्दसम्)	बुढ़ापे से रहित को
क्षेमः	कुशलम्	कुशल

न	इव	की न्याई
साधुः	अनुकूलः (आ०को०)	अनुकूल
क्रतुः	ज्ञानम्	ज्ञान
न	इव	की न्याई
भद्रः	कल्याणरूपः	कल्याण रूप
भुवत्	अभवत् (भवतेर्लङ्युवडादेशो ऽडभावश्छान्दसः)	हुआ
सुऽआधीः	शोभनाभिप्राय-युक्तः	सुन्दर अभिप्राय वाला
होता	होता	होता
हव्यऽवाट्	हव्यवाहनः	हवियों को पहुंचाने वाला

॥ संस्कृतार्थः ॥

वनेषु जयशीलो मनुष्येषु मित्ररूपः(चाऽयमग्निः) राजा युवानमिव क्षिप्रकारिणं स्वीकरोति, शोभनाऽ-

भिप्राययुक्तो हव्यवाहनः (सः) होता कुशलमिवाऽ-
नुकूलो ज्ञानमिव कल्याण रूपः (च) अभवत् ॥ १ ॥

भावार्थः।

वनों में जयशील (और) मनुष्यों में मित्र रूप (यह अग्नि) शीघ्रता से कार्य्य करने वाले को स्वीकार करते हैं जैसे राजा जवान को, सुन्दर अभिप्राय वाले, हवियों को पहुंचाने वाले (वह) होता, कुशल की न्याईं अनुकूल (और) ज्ञान की न्याईं कल्याण रूप हुए ॥ १ ॥

वनों में जब अग्नि लगती है तो कोई उस को बुझा नहीं सकता इस लिये अग्नि वनों में जयशील है ॥

अग्निर्देवता द्विपदा विराट् छन्दः ॥१०॥१०

हस्तेदधानोनृम्णाविश्वा न्यमेदे-
वान्धाद्गुहानिषीदन (२)। विदन्ती-
मत्रनरोधियंधा हृदायत्तष्टान्मन्त्राँ-
अशंसन् (४) ॥ २ ॥

हस्ते	हस्ते	हाथ में
दधानः	धारयन्	धारण करता हुआ
नृम्णा	पौरुषाणि	पौरुषों को
विश्वानि	सर्वाणि	सब को
अमे	भये	भय में
देवान्	देवान्	देवताओं को
धात्	धारितवान् (अडभावः)	रक्खा
गुहा	गुहायाम् (सप्तम्यालुक्)	गुफा में
निऽसीदन्	निषीदन्	बैठता हुआ,
विदन्ति	जानन्ति	जानते हैं
ईम्	एनम्	इसको
अत्र	अस्याम्	इसमें

नरः	पुरुषाः	पुरुष
धियम्ऽधाः	बुद्धीनां धारयितारः (बहुलवचनाद्द्वितीयायामप्यलुक्)	बुद्धिमान
हृदा	हृदयेन	हृदय से
यत्	यदा	जब
तष्टान्	निर्म्मितान्	रचे हुओं को
मन्त्रान्	मन्त्रान्	मन्त्रों को
अशंसन्	स्तुतिरूपेणोच्चारयन्ति (लडर्थेलङ्)	स्तुति रूपसे उच्चारण करते हैं

संस्कृतार्थः ।

सर्वाणि पौरुषाणि हस्तेधारयन् गुहायां निषीदन् (अयमग्निः) देवान्भयेधारितवान् बुद्धीनां धारयितारः पुरुषा यदा हृदयेन निर्म्मितान् मन्त्रान्स्तुतिरूपेणोच्चारयन्ति (तदा) अस्याम् (गुहायाम्) एनम् (अग्निम्)जानन्ति ॥ २ ॥

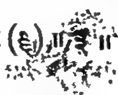
भाषार्थः।

सब पौरुषों को हाथ में धारण करते हुए गुफा में बैठते हुए (इस अग्नि ने) देवताओं को भय में रक्खा बुद्धिमान पुरुष जब हृदय से रचे हुए मंत्रों को स्तुति रूप से उच्चारण करते हैं (तब) इस (गुफा) में इस (अग्नि) को जानते हैं ॥ २ ॥

अग्नि आत्मरूप होने से सब बलों को धारण किए हुए मनुष्य के हृदय रूपी गुफा में बैठे हैं इसीलिये सब बलों का मूल स्थान मनुष्य का अपना आत्मा है दूसरे देवता जो मनुष्य के शरीर की रक्षा करते हैं जैसे दस इन्द्रियां, मन, बुद्धि अहङ्कार इत्यादि सब इस गुफा में बैठे हुए देवता से डरते हैं, इस देवता के जानने का उपाय हृदय से रचे हुए मंत्रों द्वारा स्तुति करना है, जो बुद्धिमान ऐसा करते हैं वे उस को जानते हैं और सब बल उनके हस्तगत होजाते हैं ॥

अग्निर्देवता द्विपदाविराट्छन्दः ।१०।१०।

अजोनक्षांदाधारपृथिवीं तस्त-
म्भद्यामिन्त्रेभिःसत्यैः (५)। प्रिया-
पदानिपश्वोनिपाहि विश्वायुरग्ने
गुहागुहंगाः (६)॥ ३ ॥



अजः	अजतिगच्छतीत्यजःसूर्य्यः (सा०भा०)	सूर्य
न	इव	की न्याईं
द्याम्	पृथिवीम् (निघं०।१।२)	पृथिवी को
दाधार	धारितवान्	धारण किया है
पृथिवीम्	अन्तरिक्षम् (निघ०१।३)	अन्तरिक्ष को
तस्तम्भ	स्तम्भितवान्	थांभा हुआ है
द्याम्	द्युलोकम्	द्युलोक को
मन्त्रेभिः	सङ्कल्पैः (भिसऐसभावश्छान्दसः)	संकल्पों से
सत्यैः	सत्यैः	सत्यों से
प्रिया	प्रियाणि (शेर्लोपः)	प्रिय
पदानि	स्थानानि	स्थानों को

३ पशवः	पशुजातेः	पशु जाति के
नि	नि +	—
३ पाहि	नि + पाहि,नितरां रक्ष	खूब रक्षा करो
४विश्वऽआयुः	सर्वस्यायूरूपः	सब का आयु रूप
अग्ने	हे अग्ने !	हे अग्नि
४ गुहा	गुहायाः (सुपांसुलुगिति पञ्चम्या आजादेशः)	गुफा से
४ गुहम्	गुहाम् (ह्रस्वश्छान्दसः)	गुफा को
गाः	गतवानसि (अडभावः)	तू गया है

संस्कृतार्थः ।

(अग्निः) सूर्य्यः पृथिवीमिवाऽन्तरिक्षं धारितवान् (सः)सत्यसङ्कल्पैर्द्युलोकं स्तम्भितवान् हे अग्ने! (त्वम्) पशुजातेः प्रियाणि स्थानानि नितरां रक्ष सर्वस्याऽऽयूरूपः (त्वमेव) गुहाया गुहां गतवानसि ॥३॥

भापार्थः।

(अग्नि ने) अन्तरिक्ष को धारण किया हुआ है। जसे सूर्य ने पृथिवी को, (उस ने) सत्यसंकल्पों से द्युलोक को थांभा हुआ है, हे अग्नि आप पशु जाति के प्रिय स्थानोंकी खूब रक्षा करें,सब के आयु रूप (आप ही) गुफा से गुफा में गए हैं ॥ ३॥

(१) अग्नि प्रत्यगात्माही नही किन्तु परमात्मा भी है। जैसे सूर्य ने पृथिवी को धारण किया हुआ है ऐसे ही अग्नि ने अन्तरिक्ष को, और सूर्य के निवास स्थान द्युलोक को थांभा हुआ है।

(२) यह जगत परमात्मा के सत्य संकल्पों द्वारा ठैरा हुआ है मनुष्य भी जितना सत्य का चिन्तन करता है उतना सृष्टि की स्थिति में सहायता करता है।

(३) इस से ऋषि का आशय यही है कि द्यौ ओर पृथिवी को धारण करने वाले जो परमात्मरूप में अग्नि हैं वह यही हैं जो साक्षात में वनों को जला रहे हैं, इस लिये प्रार्थना है कि अग्निदेव हमारी गोओं के चरने के सुन्दर स्थानों की रक्षा करें, उन को न जलावें।

(४) सब के आयुरूप यह एक ही अग्नि हैं जो एक हृदय से दूसरे हृदय में गए हैं अर्थात जो सब मनुष्यों के हृदय रूप गुफा में विराजमान हैं ॥

अग्निर्देवता द्विपदाविराट्छन्दः ।१०।१०।

यद्दीं चिकेतगुहाभवन्त मायःससाद-

धारामृतस्य (७)। वियेचृतन्त्यृता-

सपन्त आदिद्वसूनिप्रववाचास्मै(८)

॥४॥

यः	यः	जितने
ईम्	एनम्	इस का
चिकेत	ज्ञातवान्	जाना
गुहा	गुहायाम् (सप्तम्यालुक्)	गुफा में
भवन्तम्	विद्यमानम्	विद्यमान को
आ	आ +	–
यः	यः	जो
ससाद	आ+ससाद,	बैठा
१ धाराम्	धाराम्	धारा को

१ ऋतस्य	ऋतस्य	ऋत के
वि	वि+	–
ये	ये	जो
चतन्ति	वि+चृतन्ति, दीपयन्ति (गुणाभावश्छान्दसः)	प्रदीप्त करते हैं
ऋता	यज्ञान् (शेर्लोपः)	यज्ञों को
सपन्तः	समवयन्तः,सम्पादयन्तइत्यर्थः	सम्पादन करते हुए
आत्	अनन्तरम्, क्षिप्रमित्यर्थः	शीघ्र
इत्	एव	ही
२ वसूनि	धनानि	धनों को
प्र	प्र+	—
ववाच	प्र+ववाच,प्रयच्छति (लडर्थेलिट्)	देता है

अस्मै	तस्मै (तलोपश्छान्दसः)	उसके ताईं

संस्कृतार्थः ।

यः (पुमान्) गुहायां विद्यमानम् (अग्निम्) ज्ञातवान् यः (च) ऋतस्य धारामाससाद, ये (च) यज्ञान् सम्पादयन्तः (एनम्) दीपयन्ति क्षिप्रमेव (अयमग्निः) तस्मै (यजमानवृन्दाय) धनानिप्रयच्छति ॥४॥

भापार्थः ।

जिस (पुरुष ने) गुफा में विद्यमान (अग्नि) को जाना है (और) जो ऋत की धारा में बैठा है (और) जो यज्ञों को सम्पादन करते हुए (अग्नि को) प्रदीप्त करते हैं शीघ्र ही (यह अग्नि) उन (यजमानों) के ताईं धनों को देते हैं ॥ ४ ॥

(१) "ऋत की धारा में बैठा है" अर्थात परमात्मा की इच्छा के अधीन अपनी इच्छा को कर दिया है। जैसे नदी की धारा में बैठने से जल का कण! समुद्र को पहुंच जाता है ऐसे ही ऋत की धारा में बैठने से मनुष्य परमात्मा को प्राप्त होता है।

(२) वसु नाम मद्र का भी है इसलिये, वसूनि, से सब प्रकार के कल्याण जिनमें धन मख्य है समझने चाहियें।

अग्निर्देवता द्विपदाविराट्छन्दः ।१०।१०।

वियोवीरुत्सुरोधन्महित्वो त-

प्रजाउतप्रसूष्वन्तः (९)। चित्तिर्-
पांदमेविश्वायुः सद्मेवधीराःसम्माय-
चक्रुः (१०)।५।

वि	वि+	–
यः	यः	जो
वीरुत्ऽसु	ओषधीषु (निघ०५।१२)	ओषधियों में
रोधत्	वि+रोधत्, व्यरुहत् (हस्यधत्वम्)	उगा है
महिऽत्वा	महत्त्वेन	महत्व से
उत	अपिच	और
प्रऽजाः	प्रजासु (विभक्तिव्यत्ययः)	प्रजाओं में
उत	(पूरणः)	–
प्रऽसूषु	प्रसूतिकासु	प्रसूतिका स्त्रियों में

अन्तः०	मध्ये	बीच में
चित्तिः	ज्ञानवान् (चिती सञ्ज्ञाने)	ज्ञानवान
अपाम्	अपाम्	जलों के
दमे	गृहे, मध्यइत्यर्थः	बीच में
विश्वऽआयुः	सर्वस्याऽऽयूरूपः	सब का आयु रूप
सद्मऽइव	गृहमिव	घर की न्याईं
धीराः	दृढनिश्चयाः	दृढ निश्चयवालों ने
सम्ऽमाय	सम्पूज्य	भली भाँति पूजन करके
चक्रुः	चक्रुः	किया है

संस्कृतार्थः।

यः (अग्निर्निज-) महत्त्वेनोपधीषु व्यरुहत्, अपिच प्रजासु प्रसूतिकासु (च) मध्ये (व्यरुहत् सः) ज्ञानवान् जलानां मध्ये सर्वस्याऽऽयूरूपः (सन् विद्यते तम) धीराःसम्पूज्य गृहमिव (आश्रय रूपम्) चक्रुः ॥५॥

भावार्थः ।

जो (अग्नि अपने) महत्त्व से ओषधियों में उगे हैं और जो प्रजाओं में (और) प्रसूतिका स्त्रियों में (उत्पन्न हुए हैं, वह) ज्ञानवान, जलों के बीच में सब के आयु रूप (होकर, विद्यमान हैं, उन को) दृढ निश्चय वाले पुरुषों) ने भली भांति पूज कर घर की (न्याईं आश्रय रूप) बनाया है ॥ ५ ॥

इति सप्त षष्टितमं सूक्तम् ।

ऋ०मं० १ सू० ६८ ।

अग्निर्देवता पराशरऋषिः ।

विनियोग—लैङ्गिक,

अग्निदेव सूर्यरूप में स्थावर और जङ्गम को पकाते हुए रात्रिओं को अन्धकार से रहित करते हैं । यह देव अपनी महिमा से सब देवताओं में बढ़े हुए हैं । जब सूके काष्ठ से अरणि द्वारा मथन किए जाकर यह प्रकट होते हैं तभी सब देवता यज्ञ को पाते हैं और इस के अनुगामी होकर ऋत को सेवन करते हुए देवत्व को प्राप्त होते हैं । जो कर्म प्राणी समुदाय करते हैं वे ऋत की प्रेरणाएं हैं, और जो जीवन समूह है वह ऋत की भावना है । जो अग्नि के निमित्त देता है वा जिस को उस का ज्ञान है उस को अग्निदेव जानते हैं और धन से पूर्ण करते हैं । जो अग्नि हमारे होम के साधन हैं वही प्रजाओं के और सब धनों के स्वामी हैं, उन्हीं से वीर्य की इच्छा करनी चाहिए जिस से हमारा वृद्धि

बल बढ़े ओर हम उस को जान सकें। जैसे पुत्र पिता की आज्ञा को मानता है वैसे जो अग्नि की आज्ञा सुन कर शीघ्र उस के अनुसार कर्म करता है,उस के लिये अग्निदेव धनके द्वार खोल देते हैं,अग्नि का जानना तब होता है कि घर में स्थापित अग्नि को और नक्षत्रों द्वारा आकाश के भूषित करने वाले परमात्मा को एकजाने।

अग्निर्देवता द्विपदाविराट्छन्दः १०।१०।

श्रीणन्नुपस्थाद्दिवंभुरण्युः स्थातुश्चरथमक्तून्व्यूर्णोत् (१)। परियदेषामेकोविश्वेषां भुवद्देवोदेवानांमहित्वा (२)॥ १ ॥

१ श्रीणन्	पचन् (श्रीञपाके)	पकाता हुआ
उप	उप+	–
स्थात्	उप+स्थात्,उपतस्थौ (अडभाव)	प्राप्त हुआ है

दिव॑म्	द्युलोकम्	द्युलोक को
भु॒र॒ण्युः	क्षिप्रकारी (निघं०२।१५)	शीघ्रकारी
स्था॒तुः	स्थावरम् (कर्मणिषष्ठी)	स्थावर को
च॒रथ॑म्	जङ्गमम्	जङ्गम को
अ॒क्तून्	रात्रीः	रात्रियों को
वि	वि+	–
ऊ॒र्णो॒त्	वि+ऊर्णोत्,विगताऽऽच्छादनंकृतवान् (ऊर्णुञ्आच्छादने)	(अन्धकार रूपी) आच्छादन से रहित किया
परि॑	परि+	–
यत्	यः (विभक्तेर्लुक)	जो
ए॒षाम्	एतान् (कर्मणि षष्ठी)	इनको
एकः॑	एकः	एक

विश्वेषाम्	सर्वान् (कर्मणिषष्ठी)	सबको
भुवत्	परि+भुवत्, अतिचक्राम	आगे बढ़ गया
देवः	देवः	देव
देवानाम्	देवान् (कर्मणिषष्ठी)	देवताओं को
महिऽत्वा	महिम्ना (सुपामितितृतीयाया आत्वम्)	महिमा से

संस्कृतार्थः।

(सः) क्षिप्रकारी (अग्निः सूर्य्य रूपेण) स्थावरं जङ्गमम्(च)पचन् (सन्)द्युलोक मुपतस्थौ(तत्रस्थित्वा) रात्रीर्विगताच्छादनं कृतवान्,य एको देव एतान्सर्वान् देवान् महिम्नाऽतिचक्राम ॥१॥

भावार्थः।

(वह) शीघ्र कारी (अग्नि सूर्य्य रूप से) स्थावर और जंगम को पकाते हुए द्युलोक को प्राप्त हुए (वहां स्थित होकर) रात्रियों को अन्धकार से रहित किया, जो एक देव इन सब देवताओं से महिमा द्वारा बढ गए॥१॥

(१) जैसे अग्नि सूर्य्यरूप में ओषधियों को पकाते हैं, वैसे जङ्गम अर्थात मनुष्य और पशुको भी बढने के लिये सूर्य्य की आवश्यकता है, जैसे अग्नि या सूर्य्य की उष्णता और प्रकाश के न होने से ओषधियां मर जाती हैं वैसे पशु और मनुष्य भी ॥

अग्निर्देवता द्विपदाविराट्छन्दः ।१०।१०

आदित्तेविश्वेक्रतुंजुषन्त शुष्का-
द्यद्देवजीवोजनिष्ठाः (३)। भजन्त-
विश्वेदेवत्वंनाम ऋतंसपन्तोअमृत-
मेवैः (४) ॥२॥

आत्	अनन्तरम्	अनन्तर
इत्	एव	ही
ते	ते	उन्हों ने
विश्वे	सर्वे	सब
क्रतुम्	यज्ञम्	यज्ञ को

जुषन्त	प्राप्तवन्तः (लङ्यडभावः)	प्राप्त किया
शुष्कात्	शुष्कात्(काष्ठात्)	सूके (काष्ठ) से
यत्	यदा	जब
देव	हे देव !	हे देव
जीवः	जीवनयुक्तः(सन्)	जीता हुआ
जनिष्ठाः	प्रादुरभवः (अडभावः)	तू प्रकट हुआ
भजन्त	प्राप्नुवन् (अडभावः)	प्राप्त किया
विश्वे	सर्वे	सबने
देवऽत्वम्	देवत्वम्	देवत्व को
नाम	खलु (आ०को०)	सच मुच
ऋतम्	ऋतम्	ऋत को
सपन्तः	सेवमानाः	सेवन करते हुए

अमृतम्	मरण रहितम्	मरण से रहित को
एवैः	गमनैः (आ०को०)	गमनों से

संस्कृतार्थः ।

हे देव! यदा (त्वम्, अरणिरूपात्) शुष्कात् (काष्ठाद्मथनेन) जीवन युक्तः (सन्) प्रादुरभवस्तदनन्तरमेव ते सर्वे (देवाः) यज्ञं प्राप्तवन्तः, सर्वे मरणरहितं (त्वामनुसृत्य-) गमनैः (च) ऋतं सेवमाना देवत्वं खलु प्राप्नुवन् ॥२॥

भावार्थः ।

हे देव! जब आप (अरणीरूप) सूके (काष्ठ) से (मथन द्वारा) जाते हुए प्रकट हुए तिस के अनन्तर ही उन सब (देवताओं) ने यज्ञ को प्राप्त किया (और) मरण रहित (आप के पीछे) चलने से ऋत को सेवन करते हुए सब ने सच मुच देवपन को पाया ॥२॥

देवता ऋत के मार्ग में चलने से देवत्व को प्राप्त हुए हैं, ऐसे ही मनुष्य भी ऋत का अनुसरण करने से देव पदवी को पहुंच सकता है।

अग्निर्देवता द्विपदाविराट् छन्दः ।१०।१०

ऋतस्यप्रेषाऋतस्यधीति

विश्वायुर्विश्वेअपांसिचक्रुः (५) ।

यस्तुभ्यंदाशाद्योवातेशिक्षात्तस्मै-

चिकित्वान्रयिंदयस्व (६) ॥ ३ ॥

१ ऋतस्य	ऋतस्य	ऋतकी
१ प्रेषाः	प्रेरणानि (आ०को०)	प्रेरणाएं
२ ऋतस्य	ऋतस्य	ऋतकी
२ धीतिः	भावना (आ०को०)	भावना
४ विश्वऽआयुः	जीवन समूहः	जीवन समूह,
विश्वे	सर्वे	सब
५ अपांसि	कर्म्माणि (निघं०२।१)	कर्म्मोंको
५ चक्रुः	कुर्वन्ति (लडर्थेलिट्)	करते हैं

यः	यः	जो
तुभ्यम्	तुभ्यम्	तेरे ताईं
दाशात्	दद्यात् (दाशृदानेलेट्याडागमः)	देवे
यः	यः	जो
वा	वा	अथवा
ते	तव	तेरे
शिक्षात्	ज्ञानं प्राप्नुयात् (आ०को०, लेट्याडागमः)	ज्ञानको प्राप्त करे
तस्मै	तस्मै	उसके ताईं
चिकित्वान्	जानन् (कितज्ञाने,लिटःक्वसुः)	जानता हुआ
रयिम्	धनम्	धन को
दयस्व	देहि (दयदाने):	तू दे

संस्कृतार्थः ।

सर्वे (जीवा यानि) कर्म्माणि कुर्वन्ति (तानि) ऋतस्य प्रेरणानि (यः) जीवन समूहः (सः) ऋतस्य भावना, (हे अग्ने !) यस्तुभ्यं दद्याद् यो वा तव ज्ञानं प्राप्नुयात् तस्मै जानन् (त्वम्) धनं देहि ॥३॥

भावार्थः ।

सब (जीव जिन) कर्मों को करते हैं (वे) ऋत की प्रेरणाएं (हैं जो) जीवन समूह (है वह) ऋतकी भावना (है) (हे अग्नि) जो आप के ताईं देवे अथवा जो आप के ज्ञान को प्राप्त करे उस के ताईं जानते हुए आप धन को देवें ॥३॥

(१) सब जीव जिन कर्मों को करते हैं अर्थात् जो मनुष्यसमुदाय के कर्मों का परिणाम है वह ऋत की प्रेरणा से होता है, जैसे नदी के जलसमुदाय का परिणाम समुद्र की प्राप्ति है इसी प्रकार मनुष्यसमुदाय के कर्मों का परिणाम किसी विशेष अवस्था की प्राप्ति है जो उनके हित के लिये है इसके अनुकूल कर्म करना सृष्टि क्रम में सहायक बनना है यही यज्ञ कर्म है इससे अन्यत्र कर्म बंधन का हेतु है ॥

(२) सब प्राणियों का जीवन समूह है वह ऋत की भावना है जो केवल एक जीव के अर्थ अर्थात अपने स्वार्थ का ही चिंतन है वह ऋत की भावना से बाहर है, उस मनुष्य का जीवन निष्फल है जो ऋत की भावना से बाहर है, ऋत की भावना के भीतर उसी का जीवन है

अग्निर्देवता द्विपदाविराट्छन्दः ।१०।१०

होतानिषत्तोमनोरपत्ये सचि-
न्वासांपतीरयीणाम् (७)। इच्छन्त-
रेतोमिथस्तनूषु सञ्जानतस्वैर्दक्षै-
रमूराः (८) ॥ ४ ॥

होता	होता	होता
नि॒ऽसत्तः	निषण्णः	बैठा हुआ
मनोः	मनोः	मनु की
अपत्ये	प्रजायाम्	प्रजा में
सः	सः	वह
चित्	एव	ही

नु	खलु	सचमुच
आसाम्	आसाम्	इन का
पतिः	स्वामी	स्वामी
रयीणाम्	धनानाम्	धनों का
इच्छन्त	ऐच्छन् (व्यत्ययेनाऽऽत्मनेपदम्)	इच्छा की
रेतः	वीर्य्यम्	वीर्य्य को
मिथः	अन्योऽन्यस्य	एक दूसरे के
तनूषु	शरीरेषु	शरीरों में
सम्	सम् +	—
जानत	सम् + जानत, संयुक्ताबभूवुः (अडभावः)	संयुक्त हुए
स्वैः	स्वकीयैः	अपनों से
दक्षैः	समर्थैः(पुत्रैः)	समर्थ (पुत्रों) से

अमूराः	सिद्धार्थाः	अर्थ सिद्धि को प्राप्त हुए२

संस्कृतार्थः ।

(हे अग्ने !) मनोः प्रजायां होतृ रूपेण निषण्णः सः (त्वम्) एवाऽऽसाम् (प्रजानाम्) धनानाम् (च) स्वामी (असि) (इमाः प्रजाः) अन्योन्यंशरीरेषु वीर्यं मैच्छन् सिद्धार्थाः (सत्यश्च) समर्थैर्निज (पुत्रैः) संयुक्ता ग्भूवु ॥ ४ ॥

भाषार्थः ।

(हे अग्नि) मनुकी प्रजा में होता रूप से विराजे हुए वह (आप) ही इन (प्रजाओं और) धनों के स्वामी (हैं) (इन प्रजाओं ने) एक दूसरे के शरीरों में वीर्य्य की इच्छा की और अर्थ सिद्धि को प्राप्त होकर सामर्थ्य वाले निज (पुत्रों) से युक्त हुए ॥ ४ ॥

जो अग्नि हमारे होम के साधन हैं उन को न जानने के कारण ही हम किसी मनुष्य विशेष को प्रजाओं और धन का स्वामी मान कर उस से अपनी उन्नति की आशा करते हैं, वास्तव में सबके राजा और सब धनके स्वामी अग्नि हैं । यही संतान की इच्छा होने पर वीर्य रूप से शरीरों में प्रवेश करके प्रजा को बलवान और सपुत्रों से युक्त करते हैं ॥

अग्निर्देवता द्विपदाविराट् छन्दः १०।१०

पितुर्न पुत्राः क्रतुं जुषन्त श्रोषन्ये अस्य शासं तुरासः (९)। वि राय और्णोद्दुरः पुरुक्षुः पिपेश नाकं स्तृभिर्दमूनाः (१०) ॥ ५ ॥

पितुः	पितुः	पिता की
न	इव	जैसे
पुत्राः	पुत्राः	पुत्र
क्रतुम्	कर्म्म	कर्म्म को
जुषन्त	असेवन्त (अडभावः)	सेवन किया
श्रोषन्	अशृण्वन् (अडभावः)	सुना
ये	ये	जिन्हों ने

अस्य	अस्य	इसकी
शासम्	शासनम्	आज्ञा को
तुरासः	त्वरमाणाः	शीघ्रता से युक्त हुए २
वि	वि+	—
रायः	धनस्य	धन के
और्णोत्	वि+और्णोत्, उद्घाटितवान्	खोल दिया
दुरः	द्वाराणि	द्वारों को
पुरुऽक्षुः	बह्वन्नयुक्तः (क्षु रित्यन्ननाम, निघं०२।७)	बहुत अन्नवालेने
पिपेश	भूषितवान् (आ०को०)	सजाया
नाकम्	दिवम् (निघं०१।४)	आकाश को
स्तृऽभिः	नक्षत्रैः (निघं०३।२९)	तारागणों से

१ दमूनाः	गृहासक्तमनाः (नि०४।१)	घर में आसक्त मन वाला

संस्कृतार्थः ।

ये (मनुष्याः) अस्य (अग्नेः) शासनं पुत्राः पितुरिवाऽशृण्वन् (श्रुत्वा च) त्वरमाणाः कर्माऽसेवन्त (तेभ्यः) वह्वन्नयुक्तः (अग्निः) धनस्य द्वाराण्युद्घटितवान् गृहासक्तमनाः (अयमग्निरेव) नक्षत्रैर्दिवं भूषितवान् ॥५॥

भावार्थः ।

जिन (मनुष्यों) ने इस (अग्नि) की आज्ञा को सुना जैसे पुत्र पिता की (सुनते हैं) (और सुनकर) शीघ्रता से कर्म्म को सेवन किया (उन के लिये) वहुत अन्न से युक्त (अग्नि ने) धन के द्वारों को खोल दिया, घर में आसक्त मन वाले (इस अग्नि ने ही) नक्षत्रों से आकाश को भूषित किया है ॥५॥

(१) "घर में" अर्थात यजमान के घर में आसक्त मन वाले अग्नि जो उस की हवि की कामना करते हैं वह और नक्षत्रों से आकाश को भूषित करने वाले परमात्मा एक ही हैं

इत्यष्टषष्टितमंसूक्तम् ।

ऋ० मं०१ सू०६९।

अग्निर्देवता पराशर ऋषिः।

विनयोग—लैङ्गिक,

इस सूक्त में भी अग्नि की स्तुति है अग्निदेव सूर्य रूप में अपने प्रकाशद्वारा द्यावापृथिवी को पूर्ण करते हैं,वह सृष्टि में प्रकट होकर अपने बल द्वारा सब देवताओं से बढ़ गये हैं, यद्यपि वह देवताओं से उत्पन्न होने के कारण उन के पुत्र हैं परन्तु सृष्टि की आदि में सब देवताओंके पूर्वज होने सेउनके पिता भी हैं,वह बुद्धिमान,अहंकार से रहित,अन्न के स्वाद को खूब जानने वाले, धनकी न्याईं कामना के योग्य हैं, और घर में स्थापन किये जाकर आनन्द के देने वाले हैं जैसे घर में उत्पन्न हुआ पुत्र आनन्द को देता है, और दुःखों से पार लंघाते हैं जैसे तृप्त हुआ२ घोड़ा रस्ते से पार लंघाता है। जब यज्ञमें नाना देवताओं को बुलाया जाता है तब अग्नि ही उस उस रूप को धारण करके हवि को ग्रहण करते हैं,जब आर्य्य सुखी थे तब अग्नि के व्रतों का लोप नहीं करते थे और अग्निदेव भी सब देवताओं के साथ मिल कर उनके पापों को मार कर दूर भगाते थे।

अग्निर्देवता द्विपदाविराट् छन्दः। १०। १०

शुक्रः शुशुक्वाँ उषो न जारः पप्रा

समीची दिवो न ज्योतिः (१)। परि-

प्रजात:क्रत्वाबभूथ भुवोदेवानांपिता

पुत्र:सन् (२)'।१।

शुक्र:	शुभ्रवर्णः	उज्ज्वल रंगवाला
शुशुक्वान्	दीप्तिमान् (शुच दीप्तौ,लिट: क्वसु:,व्यत्ययेन कुत्वम)	दीप्ति से युक्त
१ उष:	उषसः (सुपामितिषष्ठयाःसु:)	उषाके
न	इव	की न्याईं
१ जार:	जरयिता	जीर्ण करने वाला
पप्रा	पूरयिता (पृ+कि:,डादेश:)	पूर्ण करने वाला
२ समऽईची०	सङ्गतयो:(द्यावा-पृथिव्यो:) (विभक्तेर्लुक्)	मिलेहुए(द्यावा-पृथिवी) का
दिव:	दिवः	द्यो के

न	इव	की न्याईं
ज्योतिः	ज्योतिः	प्रकाश
परि	परि+	–
प्रऽजातः	प्रादुर्भूतः	प्रकटहुआ २
क्रत्वा	बलेन (नाभावाऽभावः)	बल से
बभूथ	परि+बभूथ,अति- क्रान्तवानसि (निपातनादिडभावः)	तू बढ़गया है
भुवः	अभवः (उवङादेशश्छान्दसः, अडभावश्च)	तू हुआ
देवानाम्	देवानाम्	देवताओं का
२ पिता	पिता	पिता
१ पुत्रः	पुत्रः	पुत्र
सन्	सन्	हुआ २

संस्कृतार्थः ।

(हे अग्ने !) उषसोजरयितेव शुभ्रवर्णो दीप्तिमान् (च त्वम्) दिवो ज्योतिरिव सङ्गतयोः (द्यावापृथिव्योः) पूरयिता (असि त्वम्) प्रादुर्भूतः (सन्) बलेन (सर्वान्) अतिक्रान्तवानसि, (त्वम्) देवानां पुत्रः सन् पिताऽभवः ॥ १ ॥

भावार्थः ।

(हेअग्नि) उषा के जीर्ण करने वाले की न्याईं उज्ज्वल रंग वाले (और) दीप्तिमान (आप) द्यौ के प्रकाश की न्याईं जुड़े हुए (द्यावा पृथिवी) को पूर्ण करने वाले (हैं) आप प्रकट होकर बल द्वारा (सब से) बढ़ गये हैं आप देवताओं के पुत्र होकर पिता बने हैं ॥१॥

(१) उषा को जीर्ण करने वाले सूर्य हैं जिन के समीप आने से उषा जीर्ण होकर नष्ट होजाती है ॥

(२) "जुड़े हुए द्यावा पृथिवी" जैसे क्षितिज में दीखते हैं। और वास्तव में भी आकाश द्वारा जुड़े हुए हैं इसी कारण से सूर्य का प्रकाश पृथिवी तक पहुंच जाता है ॥

(३) अग्नि देवताओं के पुत्र इस लिये हैं कि वह इस पृथिवी पर बन में वायु द्वारा बनस्पतियों की रगड़ से उत्पन्न हुए हैं और पिता इस लिये हैं कि सब देवताओं का पूर्व रूप सृष्टि के आदि की अग्नि ही है ॥

अग्निर्देवता द्विपदाविराट् छन्दः । १० । १० ॥

वेधाअदृप्तोअग्निर्विजानन्नूधर्न-
गोनांस्वाद्मापितूनाम् (२)। जनेनशे-
वआहूर्यःसन् मध्येनिषत्तोरण्वो-
दुरोणे (४)।२।

१ वेधाः	मेधावी (निघं० ३।१५)	बुद्धिमान
१ अदृप्तः	दर्प रहितः	अहंकार से रहित
अग्निः	अग्निः	अग्नि
विऽजानन्	विशेषेण जानन्	खूब जानता हुआ
२ ऊधः	स्तनः	थन
न	इव	की न्याईं
२ गोनाम्	गवाम् (नुडभावश्छान्दसः)	गौओं के

२ स्वाद्म	स्वादम् (मावेमनिन् प्रत्ययःसोर्लुक् च)	स्वाद को
२ पितूनाम्	अन्नानाम् (निघं० २।७)	अन्नों के
जने	प्रजायाम्	मनुष्यों में
न	इव	की न्याईं
श्रेवः	धनम् (आ० को०)	धन
आऽहूर्यः	आह्वातव्यः	बुलाने योग्य
सन्	सन्	हुआ २
मध्ये	मध्ये	बीच में
निऽसत्तः	निषण्णः	बैठा हुआ
रण्वः	रमणीयः	आनन्द देनेवाला
दुरोणे	गृहे (निघं ३।४)	घर में

(संस्कृतार्थः।

मेधावी दर्परहितः (च)अग्निर्गवांस्तनइवाऽन्नानां स्वादं [illegible] प्रजासुधनमिवाऽऽह्वातव्यःसन् गृह-

मध्ये रमणीयः (भूत्वा) निषण्णः(अस्ति) ॥ २ ॥

भापार्थः ।

बुद्धिमान और अहंकार से रहित अग्नि गौओं के थन की न्याईं अन्नों के स्वादको खूब जानते हुए प्रजाओं में धनकी न्याईं बुलाने योग्य होकर घर के बीचमें आनन्द देते हुए बैठे (हैं) ॥ २ ॥

(१) बुद्धिमान होकर अहंकार से रहित होना देवगुण है।

(२) जिस प्रकार गौ का स्तन तृण में से मीठे रस को जान कर निकाल लेता है इसी प्रकार जठराग्नि अन्नों के स्वाद को जानते हुए शरीर में पुष्टिकारक रस को लेकर शेष को फेंक देते हैं।

अग्निर्देवता द्विपदाविराट् छन्दः । १० । १०

पुत्रोनजातोरण्वोदुरोणे वा-

जीनप्रीतोविशोवितारीत् (५)।

विशोयदह्वेनृभिःसनीळा अग्निर्दे-

वत्वाविश्वान्यश्याः (६)। ३।

भाषार्थः ।

घर में उत्पन्न हुए पुत्र की न्याईं आनन्द देने वाले अग्नि तृप्त हुए घोड़े की न्याईं मनुष्यों को पार लंघाते हैं, जब मैं मनुष्यों के साथ (यज्ञ में) इकट्ठे रहने वाले विश्वे देवों को बुलाता हूं (तब) अग्नि(ही) सम्पूर्ण देव-भावों को प्राप्त होजाते हैं ॥ ३ ॥

जब यज्ञ में अनेक देवताओं का आवाहन किया जाता है तो सब देवताओंके गुणों को धारण करने वाले अग्नि ही वह वह देवता बन-जाते हैं क्योंकि वास्तव में सारे देवता अग्निके ही रूपान्तर हैं ।

अग्निर्देवता द्विपदाविराट् छन्दः । १० । १०

भुरिग् द्विपदा विराट् छन्दः । ११ । १०

नकिष्टएताव्रतामिनन्ति नृभ्यो यदेभ्यःश्रुष्टिंचकर्थ (७)। तत्तुतेदंसोयदहन्त्समानै र्नृभिर्यद्युक्तोविवेर्पांसि (८)। ४ ।

नकिः	नहि	नहीं
ते	तव	तेरे
एता	एतानि (शेर्लोपः)	इनको
१ व्रता	व्रतानि (शेर्लोपः)	नियमों को
१ मिनन्ति	लोपयन्ति	लोप करते हैं
नृऽभ्यः	मनुष्येभ्यः	मनुष्यों के लिये
यत्	यतः	क्योंकि
एभ्यः	एभ्यः	इनके लिये
श्रुष्टिम्	सुखम् (निघं० ४।२)	सुख को
चकर्थ	कृतवानसि	तूने किया है
तत्	तत्	वह
तु	एव (आ०को०)	ही
ते	तव	तेरा

पुत्रः	पुत्रः	पुत्र
न	इव	की न्याई
जातः	उत्पन्नः	उत्पन्न हुआ २
रणवः	आनन्ददायकः	आनन्द देनेवाला
दुरोणे	गृहे (निघं ३ । ४)	घर में
वाजी	अश्वः	घोड़ा
न	इव	जैसे
प्रीतः	तृप्तः	तृप्त हुआ२
विशः	मनुष्यान्	मनुष्यों को
वि	वि+	–
तारीत्	वि+तारीत्, वितारयति (लडर्थेलुङ्व्यत्ययः)	पार लंघाता है
विश्वः	विश्वान् देवान् (ऋ०मं०१।३।१६)	विश्वेदेवों की

यत्	यदा	जब
अह्वे	आह्वयामि	मैं बुलाता हूं
नृऽभिः	मनुष्यैः सह	मनुष्यों के साथ
सऽनीळाः	समान स्थानान्	इकट्ठे रहने वालों को
अग्निः	अग्निः	अग्नि
देवऽत्वा	देवत्वानि	देव भावों को
१ विश्वानि	सर्वाणि	सब को
२ अश्याः	अश्नुते प्राप्नोति (लिङ्व्यत्ययेन परस्मैपद मध्यमौ विकरणस्यच्छान्दसोलुक्)	प्राप्त होजाता है

संस्कृतार्थः।

गृह उत्पन्नः पुत्रइवाऽऽनन्द दायकः (अग्निः) तृप्तोऽश्वइव मनुष्यान् वितारयति, यदा (अहम्) मनुष्यैः सह (यज्ञे) समानस्थानान्विश्वान्देवानाऽऽह्वयामि (तदा) अग्निः (एव) सर्वाणि देवत्वानि प्राप्नोति।२।

भाषार्थः ।

घर में उत्पन्न हुए पुत्र की न्याईं आनन्द देने वाले अग्नि तृप्त हुए घोड़े की न्याईं मनुष्यों को पार लंघाते हैं, जब मैं मनुष्यों के साथ (यज्ञ में) इकट्ठे रहने वाले विश्वे देवों को बुलाता हूं (तब) अग्नि(ही) सम्पूर्ण देवभावों को प्राप्त होजाते हैं ॥ ३ ॥

जब यज्ञ में अनेक देवताओं का आवाहन किया जाता है तो सब देवताओंके गुणों को धारण करने वाले अग्नि ही वह वह देवता बनजाते हैं क्योंकि वास्तव में सारे देवता अग्निके ही रूपान्तर हैं ।

अग्निर्देवता द्विपदाविराट् छन्दः । १० । १०

भुरिग् द्विपदा विराट् छन्दः । ११ । १०

नकिष्टएताव्रतामिनन्ति नृभ्यो यदेभ्यःश्रुष्टिंचकर्थ(७)। तत्तुतेदंसोयदहन्त्समानैर्नृभिर्यद्युक्तोविवेरपांसि (८)। ४ ।

नकिः	नहि	नहीं
ते	तव	तेरे
एता	एतानि (शेर्लोपः)	इनको
१ व्रता	व्रतानि (शेर्लोपः)	नियमों को
१ मिनन्ति	लोपयन्ति	लोप करते हैं
नृऽभ्यः	मनुष्येभ्यः	मनुष्यों के लिये
यत्	यतः	क्योंकि
एभ्यः	एभ्यः	इनके लिये
श्रुष्टिम्	सुखम् (निघं० ४। ३)	सुख को
चकर्थ	कृतवानसि	तूने किया है
तत्	तत्	वह
तु	एव (आ०को०)	ही
ते	तव	तेरा

दंसः	कर्म्म (निघं० २ । १)	कर्म्म को
यत्	यत्	जो
अहन्	हतवान्	मारा
२ समानैः	समानैःसह	तुल्यों के साथ
२ नृऽभिः	नरैः	नरों से
यत्	यत्	जो
युक्तः	युक्तः	मिल कर
विवेः	गमयितवान् (अन्तर्भावितण्यर्थो वेतिर्गतिकर्म्मा निघं० २। १४)	निकाल दिया
रपांसि	पापानि	पापों को

संस्कृतार्थः

(हे अग्ने !) यतः (त्वम्) एभ्यः (आर्य्य-) मनुष्येभ्यः सुखं कृतवानसि (अतस्ते) तवैतानि व्रता- न न लोपयन्ति तत्तवैव कर्म्म यत् समानै नरैर्युक्तः

(त्वम्) पापानि हतवान् (हत्वाच दूरम्)गमयितवान् ।४।

मापार्थः ।

(हेअग्नि) जिस से आपने इन (आर्य्य) मनुष्यों के लिये सुख को किया है (इस लिये ये) आप के इन नियमों को नहीं तोड़ते यह आपका ही काम (है) जो आपने समान नरों के साथ मिल कर पापों को मारा (और मार कर दूर) निकाल दिया ॥ ४ ॥

(१) जब आर्य्य सुखी थे तब अग्नि के व्रतों को लोप नहीं करते थे उस समय—

समान नरों अर्थात् विश्वेदेवों के साथ मिलकर अग्नि ने आर्यों के पापों को मार कर दूर देशों में भगा दिया था।

अग्निर्देवता द्विपदाविराट् छन्दः ।१०।१०

उषोनजारोविभावोस्रः संज्ञा-

तरूपश्चिकेतदस्मै (९) । त्मना

वहन्तोदुरोव्यृण्वन्नवन्तविश्वेस्व-

१र्हशीके (१०) । ५ ।

उषः	उषसः (सुपामितिषष्ठ्याःसुः)	उषा के
न	इव	की न्याईं
जारः	जरयिता	जीर्ण करने वाला
विभाऽवा	सौन्दर्य्ययुक्तः (आ०को०)	सौन्दर्य्य वाला
उस्रः	दीप्तः (आ० को०)	दीप्ति वाला
संज्ञातऽरूपः	प्रसिद्ध रूपः	प्रसिद्ध रूप वाला
१ चिकेतत्	जानातु (लेटिरूपम्)	जाने
१ अस्मै	अस्मै	इसके लिये
२ त्मना	आत्मना (मन्त्रेष्वित्याकार-लोपः)	अपने आप से
वहन्तः	वहन्तः	खेचलने वालों ने
दुरः	द्वाराणि	द्वारों को

वि	वि+	–
ऋण्वन्	वि+ऋण्वन् उद्घाटितवन्तः (ऋणुगतौ, अडभावः)	खोल दिया
नवन्त	अगच्छन् (नवतिर्गतिकर्म्मा निघं०२।१४)	पहुंच गए
विश्वे	विश्वे-(देवाः)	विश्वे (देवों) ने
स्वः	नभसि	ऊपरके आकाशमें
दृशीके	दर्शनीये	सुन्दर में

संस्कृतार्थः।

उषसो जरयितेव सौन्दर्य्य युक्तो दीप्तः (च) प्रसिद्धरूपः (अग्निः) अस्मै (मह्यम्) जानातु, आत्मना वहन्तो विश्वे-(देवाः) द्वाराण्युद्घाटितवन्तः (उद्घाट्य च) दर्शनीये नभसि प्राप्नुवन् ॥ ५ ॥

भावार्थः।

उषा के जीर्ण करनेवाले की न्याईं सौन्दर्य्ययुक्त (और) दीप्तिमान प्रसिद्ध रूप वाले (अग्नि) इस (मुझ) को जानें, अपने को आपसे लेचलते हुए विश्वे (देवों) ने

द्वारों को खोला (और खोलकर) ऊपर के सुन्दर आकाश में पहुंच गए ॥ ५ ॥[1]

(१) जैसे कोई साधारण मनुष्य जिसमें राजा की भक्ति हो यह चाहता है कि राजा मुझे जाने इसी प्रकार ऋषि इच्छा करते हैं कि सूर्य्य की न्याईं सुन्दर और दीप्तिमान अग्नि मुझ को जानें।

सायं काल के समय जब सूर्य्य की किरणें सूर्य्य में लीन होजाती हैं उस घटना को ऋषि ऐसे देखतेहैं कि मानो सारे देवता (किरणों के विश्वेदेव होने के विषय में देखो पृष्ट ३१०)विना किसी वाहन के अपनी निज शक्तिसे ऊपर चढते हुए आकाश के द्वारों को खोल कर ऊपर के आकाश में पहुच गए।

इत्येकोन सप्ततितमं सूक्तम्।

ऋ० मं०१ सू०७०

अग्निर्देवता पराशर ऋषिः

विनियोग-लैङ्गिक।

सुन्दर दीप्ति वाले अग्नि देवताओं के नियमों को और मनुष्यों की सृष्टि को पूर्ण रूप से जानते हुए सब में व्याप्त हैं। यह जल स्थल स्थावर और जंगम सब के बीच में वर्तमान हैं, यह मृत्यु से रहित, सुन्दर चिन्तन से युक्त, और मनुष्यों की आत्मा के तुल्य हैं, यह रात्रि के स्वामी हैं, और पर्याप्त (काफी) स्तुति करने वाले के तांई धनों के देने वाले हैं। यह स्थावर और जंगम के लिये आनन्द के हेतु, सृष्टि के मूल कारण जलों से उत्पन्न और यजमान के सब कर्मों को सफल करने वाले हैं,

नक्षत्र और किरणें जो हमारे लिये ज्योतिरूप भेट को लाते हैं, उन के महत्व का कारण अग्नि ही हैं, मनुष्यों ने अनेक कालों में नाना रूप से अग्नि को सेवा की है और उस से धन को पाया है जैसे वृद्ध पिता से पुत्र पाते हैं, अग्नि परोपकारी की न्याई कामना से युक्त, योधा की न्याई शूरवीर, दण्ड देने वाले की न्याई भयंकर और युद्ध में तेज रूप हैं।

अग्निर्देवता द्विपदाविराट्छन्दः ।१०।१०

वनेमपूर्वीरर्य्योमनीषा अग्निः सुशोकोविश्वान्यश्याः (१) । आदै-व्यानिव्रताचिकित्वा नामानुषस्य जनस्यजन्म (२) । १ ।

वनेम	कामयेमहि	हम कामना करें
पूर्वीः	प्रभूताः(इषः)	बहुत(अन्नों) को
अर्य्यः	आर्य्य-(प्रजाः) (सुपामितिजसःसुः)	आर्य्य-(प्रजा)

मनीषा	स्तुत्या (आ० को० तृतीयाया लुक्)	स्तुति से
अग्निः	अग्निः	अग्नि
सुऽशोकः	चारुदीप्तियुक्तः (शुचदीप्तौ घञ्)	मनोहर दीप्ति वाला
१ विश्वानि	सर्वाणि	सब को
१ अश्याः	व्याप्तवान् (अशुङ्व्याप्तौव्यत्ययेन परस्मैपद मध्यमौ)	व्याप्त है
आ	समन्तात्	चारोंओरसे
दैव्यानि	देवसम्बन्धीनि	देव संबंधियों को
व्रता	व्रतानि (शेर्लोपः)	नियमों को
चिकित्वान्	जानन्	जानता हुआ
आ	(पूरणः)	–
मानुषस्य	मानुषस्य+	–

जनस्य	मानुषस्य+जनस्य मनुष्यसमूहस्य	मनुष्यसमूहकी
जन्म	सृष्टिम् (आ०को०)	सृष्टिको

संस्कृतार्थः

आर्य्य (प्रजा वयम्) स्तुत्या प्रभूताः (इषः) कामयेमहि,चारुदीप्तियुक्तोऽग्निर्दैव्यानि व्रतानि मनुष्यसमूहस्य सृष्टिम् (च) समन्ताज्जानन् (सन्) सर्वाणि व्याप्तवान्। १।

भावार्थः।

आर्य (प्रजा) हम स्तुतिद्वारा बहुत (अन्नों) की कामना करें, सुन्दर दीप्तिवाले अग्नि देवताओं के नियमों को (और) मनुष्यों की सृष्टि को पूर्ण रूप से जानते हुए सब में व्याप्त हैं। १।

अग्नि देवताओं के नियमों को और मनुष्यों को खूब जानते हैं क्योंकि वह सब देव और मनुष्य सृष्टि में व्याप्त हैं।

अग्निर्देवता द्विपदाविराट्छन्दः। १०। १०

गर्भोयोअपांगर्भोवनानां गर्भ-

श्चस्थातांगर्भश्चरथाम् (३)। अद्रौ-

चित्रस्मा॒अन्तर्दु॑रो॒णे वि॒शां॑विश्वो॑

अ॒मृत॑:स्वा॒धीः(४) ॥ २ ॥

गर्भ॑:	मध्येवर्त्तमानः	वीचमें रहने वाला
यः	यः	जो
अ॒पाम्	अपाम्	जलों के
गर्भ॑:	मध्येवर्त्तमानः	वीचमें रहने वाला
वना॑नाम्	वनानाम्	वनों के
गर्भ॑:	मध्येवर्त्तमानः	वीचमेंरहनेवाला
च॒	च	और
स्था॒ताम्	स्थातॄणाम् (ऋकारलोपेन नुडाग-माऽभावश्छान्दसः)	स्थावरों के
गर्भ॑:	मध्येवर्त्तमानः	वीचमें रहनेवाला

चरथाम्	जङ्गमानाम् (नुडभावश्छान्दसः)	जंगमों के
अद्रौ	पर्वते	पर्वत में
चित्	अपि	भी
अस्मै	तस्मै (तलोपश्छान्दसः)	उसकेलिये
अन्तः	मध्ये	बीचमें
दुरोणे	गृहे	घर में
विशाम्	प्रजानाम्	प्रजाओं का
न	इव	की न्याईं
विश्वः	आत्मा (आ०को०)	आत्मा
अमृतः	मरणरहितः	मरण से रहित
सुऽआधीः	शोभनध्यानयुक्तः	सुन्दरध्यान से युक्त

संस्कृतार्थः।

अपां मध्ये वनानां मध्ये स्थावराणां मध्ये जङ्गमानां च मध्ये वर्त्तमानो मरणरहितः शोभन ध्यानेनयुक्तो यः(अग्निः)प्रजानामात्मेव(अस्ति)तस्मै गृहमध्ये पर्वते ऽपि (च हविर्दीयते) ॥२॥

भाषार्थः।

जो (अग्नि देव) जलों के बीच वनों के बीच स्थावरों के बीच और जंगमों के बीच वर्त्तमान, मरण से रहित सुन्दर ध्यान से युक्त (और) प्रजाओं के आत्मा की न्याईं (हैं) उनके लिये घर (और) पर्वत में भी (हवि दी जाती है) ॥ २ ॥

जैसे अग्नि को घर में यजमान अन्न आदि की हवि देते हैं वैसे पर्वत में मातरिश्वा (वायु) वृक्षों की हवि देते हैं इस लिये ग्रीष्म ऋतु में कई पर्वत दिन में धूम्र युक्त और रात्रि में जलते हुए दीख पड़ते हैं।

अग्निर्देवता द्विपदाविराट् छन्दः।१०।१०

सह्विचुपावाँअग्नीरयीणां दाश्वद्वोअस्माअरंसक्तैः(५)। एताचिकि-

त्वोभमानिपाहि देवानांजन्ममर्तां-

श्चविद्वान्(६)।३।

सः	सः	वह
हि	एव	ही
क्षपाऽवान्	रात्रिमान्, रात्रि-पतिरित्यर्थः	रात्रि का स्वामी
अग्निः	अग्निः	अग्नि
रयीणाम्	धनानि (द्वितीयार्थेषष्ठी)	धनों को
दाशत्	ददाति (दाशृदानेलेटयडागमः)	देता है
यः	यः	जो
अस्मै	अस्मै	इस के लिये
अरम्	पर्य्याप्तम्	पर्य्याप्त
सुऽउक्तैः	सुष्ठूक्तैः	सुन्दरवाणियों से

एता	एतानि (शेर्लोपः)	इनको
चिकित्वः	हेचेतनावन्! (निरु०२।११)	हे चेतन
भूम	भूतानि (आ०को०)(शेर्लोपः)	जीवों को
नि	नि+	–
पाहि	नि+पाहि, नितरां रक्ष	खूबरक्षा करो
देवानाम्	देवानाम्	देवताओं की
जन्म	सृष्टिम्	सृष्टि को
मर्तान्	मनुष्यान्	मनुष्यों को
च	च	और
विद्वान्	जानन्	जानता हुआ

संस्कृतार्थः।

स एव रात्रिपतिरग्निः (तस्मै) धनानि ददाति योऽस्मै सुष्टूक्तैः पर्य्याप्तम् (स्तौति), हेचेतनावन्!

देवानां सृष्टिं मनुष्यांश्च जानन् (त्वम्) एतानि भूतानि नितरां पाहि । ३ ।

भापार्थः ।

वह रात्रि के स्वामी[1] अग्नि (उसके ताईं) धनों को देते हैं जो इन के लिये सुन्दर वाणियों से पर्य्याप्त (स्तुति करता है) हे चेतन ! देवताओं की सृष्टि को और मनुष्यों को जानते हुए आप इन जीवों की खूब रक्षा करें । ३ ।

(१) जैसे सूर्य्य दिन के स्वामी हैं वैसे ही सूर्य्य के अभाव में ताप और प्रकाश के हेतु होनेसे अग्नि रात्रिके स्वामी हैं, उत्तर देशों की लम्बी रात्रियों में तो विना अग्नि के ताप और प्रकाश के जीवन ही असम्भव जैसा है ।

अग्निर्देवता द्विपदाविराट् छन्दः ॥ १० । १० ।

वर्धान्यंपूर्वीःक्षपोविरूपाः स्था-

तुश्चरथमृतप्रवीतम्(७)। अराधिहो-

तास्वर्निषत्तः कृण्वन्विश्वान्यपां-

सिसत्या(८)। ४ ।

वर्धान्	वर्धयन्ति (ण्यन्ताद्वृधेर्लेटयाडागमोणिलोपश्च)	वढाते हैं
यम्	यम्	जिसको
पूर्वीः	बह्व्यः (पूर्वसवर्णदीर्घः)	बहुत
क्षपः	रात्र्यः	रात्रियां
१ विऽरूपाः	विविधरूपाः	नानारूपवालीं
स्थातुः	स्थावरस्य	स्थावर के
च	च(जङ्गमस्य)	और(जंगमके)
रथम्	आनन्दहेतुम् (आ०को०)	आनन्दके हेतु को
२ ऋतऽप्रवीतम्	ऋतात् प्रविमुक्तम् (वीगतौ)	ऋत से निकले हुए को
३ अराधि	आराधितोऽभूत (कर्त्तरिलुङि व्यत्ययेन च्लेर्चिण्)	प्रसन्न किया गया

होता	होता	होता
स्वः	ज्योतिषि (अव्ययम्)	ज्योति में
निऽसत्तः	निषण्णः	बैठा हुआ
कृण्वन्	कुर्वन् (कृविकरणे)	करता हुआ
विश्वानि	सर्वाणि	सबको
अपांसि	कर्माणि (निघं० २।१)	कर्मों को
सत्या	सत्यानि, अमोघानीत्यर्थः (शेर्लोपः)	सत्य अर्थात सफल

संस्कृतार्थः।

ऋतात् प्रविमुक्तं स्थावरस्य(जङ्गमस्य) चाऽऽनन्दहेतुं यम्(अग्निम्) नाना रूपा बह्व्यो राज्यो वर्धयन्ति (सः) ज्योतिषि निषण्णो होता सर्वाणि कर्म्माण्यमोघानिकुर्वन् (अस्माभिः) आराधितोऽभूत् ॥ ४ ॥

भावार्थः।

ऋत से निकले हुए स्थावर और (जंगम) के

आनन्द के हेतु जिस (अग्नि) को नाना रूप वाली अनेक रात्रियां बढाती हैं (वह) सम्पूर्ण कर्मों को सफल करते हुए ज्योति में बैठे हुए होता (हमसे) प्रसन्न किए गए। ४।

(१) रात्रियां विरूपा इसलिये हैं कि कोई लम्बी और कोई छोटी होती है, कोई काली और कोई उज्वल होती है, कोई उष्ण और कोई ठंडी होती है।

(२) ऋत से निकले हुए को अर्थात सृष्टि के मूल कारण जलों से उत्पन्न हुए को।

जब अग्नि में घृत की आहुति देने से ज्वाला उठती है तो ऐसा प्रतीत होता है कि ज्योति में बैठे हुए देवहोता अग्निदेव प्रसन्न हो गये हैं।

अग्निर्देवता भुरिग्द्विपदाविराट् छन्दः ।१०।११

गोषुप्रशस्तिंवनेषुधिषे भरन्त विश्वेबलिंस्वर्णः(९)। वित्वानरःपु-रुत्रासपर्यन्पितुर्नजिव्रेर्विवेदोभरन्त (१०)॥५॥

गोषु	नक्षत्रेषु (आ०को०)	नक्षत्रों में
१ प्रऽशस्तिम्	उत्कर्षम्	महत्व को
वनेषु	किरणेषु (निघं१।५)	किरणों में
१ धिषे	स्थापितवानसि (द्वित्याभावश्छान्दसः)	तूने स्थापन किया है
भरन्त	आहरन (हृञ्‌हरणे, ह्रस्यभत्वम् डभावउपसर्गलोपश्च)	लाए हैं
विश्वे	सर्वे	सब
बलिम्	बलिम्	भेटको
स्वः	ज्योतीरूपम्	प्रकाशरूपको
नः	अस्मभ्यम्	हमारे ताईं
वि	वि+	–
त्वा	त्वाम्	तुझको

नर॒:	मनुष्याः	मनुष्य
पु॒रु॒ऽत्रा	बहुषु (कालेषु) (सप्तम्यर्थेत्राप्रत्ययः)	बहुत (कालों) में
स॒प॒र्य॒न्	वि+सपर्यन्,वि-विधंपूजितवन्तः (सपरपूजायाम्, लङ्यडभावः)	नानाप्रकार से पूजा की है
पि॒तः	पितुः	पिता से
न	इव	जैसे
जि॒व्रेः	वृद्धात् (जॄष वयोहानौछान्दसंरूपम्	बूढ़े से
वि	वि+	–
वेद॑ः	धनम्	धनको
भ॒र॒न्त	वि+भरन्त, प्राप्तवन्तः (अडभावः)	प्राप्त किया है

संस्कृतार्थः।

(हे अग्ने !त्वम) नक्षत्रेषु किरणेषु (च) उत्कर्षं स्थापितवानसि(ते)सर्वं अस्मभ्य ज्योतीरूपं बलिमा-

हरन् मनुष्या बहुषु (कालेषु) त्वां विविधं पूजितवन्तः, वृद्धात् पितुरिव (त्वत्तः) धनम् (च) प्राप्तवन्तः । ५ ।

भावार्थः ।

(हे अग्नि) आप ने नक्षत्रों (और) किरणों में महत्त्व को स्थापन किया है, (वे) सब हमारे लिये प्रकाश रूप भेट को लाए हैं मनुष्यों ने बहुत (कालों) में नाना प्रकार से आप की पूजा की है (और) (आप से) धन को पाया है जैसे (पुत्र) बूढे पिता से (पाते हैं) । ५ ।

नक्षत्र और सूर्य्य की किरणों में प्रकाश के हेतु अग्नि ही हैं, नक्षत्रों के अत्यन्त दूर होने से उनकी उष्णता हम तक नहीं पहुंचती केवल थोडा सा प्रकाश पहुंचता है ।

– अग्निर्देवता द्विपदाविराट् छन्दः । १० । १०

साधुर्न गृध्नुरस्तेव शूरो यातेव भीमस्त्वेषः समत्सु (११) । ६ ।

१ साधुः	परोपकारी (यः पर कार्य्याणि साध्नोति)	परोपकारी

द्युलोक के वीर्य्य का कारण भी अग्निदेव है जिस वीर्य्य के भय से अंधकार चोर की न्याईं खिसक गया और जिसके पीछे अग्नि ने सूर्य्य के किरण रूपी अस्त्र को फेंका, तब द्युलोक ने भी अपना तेज अपनी पुत्री उषा में धारण किया। ऐसे अग्निदेव को जो अपने घर में प्रदीप्त करके अन्न की हवि देता है उस का बल बढ़ता है और वह युद्ध के लिये प्रेरित होकर शत्रु के धन को प्राप्त करता है, जब अग्निदेव मनुष्यों के लिये अन्न को उत्पन्न करने की कामना करते हैं; तब वह द्यौ के गर्भ में मरुतों को उत्पन्न करके उनको वृष्टि के लिये प्रेरण करते हैं, अग्निदेव सूर्य्य रूप में सब धन संपत्ति के स्वामी हैं और राजा मित्र और वरुण नक्षत्रों के बीच में, मनुष्य के लिये इस धन के कोश की रक्षा करते हैं, ऐसे अग्निदेव हमारे पूर्वजों की मित्रता को स्मरण करते हुए बुढ़ापे से पहले हमारी सुध लेवें और हमारे समीप प्राप्त होकर अपनी भक्ति प्रदान करें ॥

अग्निर्देवता त्रिष्टप्छन्दः ॥११।११।११।११

उपप्रजिन्वन्नुशतीरुशन्तं पतिं-
ननित्यंजनयः सनीळाः । स्वसारः-
श्यावीमरुषीमजुषञ्चित्रमुच्छन्ती-
मुषसंनगावः ॥ १ ॥

उप	(पूजने) (आ०को०)	पूजा से
प्र	भृशम्	अत्यन्त
जिन्वन्	प्रीणयन्ति (जिविप्रीणने लडर्थे-लडयडभावः)	प्रसन्न करती हैं
उशतीः	कामयमानाः (पूर्वसवर्णदीर्घः)	प्रेम से भरी हुईं
उशन्तम्	कामयमानम्	कामना करतेहुए को
पतिम्	पतिम्	पति को
न	इव	जैसे
नित्यम्	नित्यम्	सदा
जनयः	जायाः	स्त्रियां
सऽनीळाः	समानस्थानाः	इकट्ठी रहने वालीं
स्वसारः	अङ्गुलयः (निघ०२।५)	अंगुलियों ने
श्यावीम्	कृष्णपीतवर्णाम्	काले पीले रंग वाली को

अरुषीम्	ईषद्रक्तवर्णाम् (अरुषइतीषद्रक्तनाम, आ०को०)	थोड़े लाल रंग वाली को
अजुषन्	सेवन्ते (जुषीप्रीतिसेवनयोः-लडर्थेलङिव्यत्ययेन-परस्मैपदंरुडागमश्च)	सेवन करती हैं
चित्रम्	चित्रम् +	–
उच्छन्तीम्	चित्रम्+उच्छन्ती-म,प्रकाशेनाऽऽवि-र्भवन्तीम्	प्रकाश के साथ फूटने वाली को
उषसम्	उषसम्	उषा को
न	इव	जैसे
गावः	रश्मयः	किरणें

संस्कृतार्थः।

समानस्थाना अङ्गुलयः कामयमाना जायाः कामयमानं पतिमिव (अग्निम्) नित्यं पूजनेन भृशं प्रीणयन्ति सेवन्ते (च), यथा रश्मयः कृष्ण-पीत वर्णाम् (पुनः) ईषद्रक्त वर्णाम् (पुनः) प्रकाशेना-ऽऽविर्भवन्तीमुषसम् (सेवन्ते) ॥ १ ॥

भावार्थः ।

इकट्ठी रहने वाली अंगुलियां सदा (अग्नि को) पूजन से अत्यन्त प्रसन्न करती हैं जैसे प्रेम भरी स्त्रियां कामना करने वाले पति को (प्रसन्न करती हैं) और इस प्रकार उसको) सेवन करती हैं जैसे काले पीले रंग वाली, (फिर) थोड़े लालरंग वाली (फिर) प्रकाश के साथ फूटने वाली उषा को किरणें (सेवन-करती हैं) । १ ।

, दूसरी उपमा का यह प्रयोजन है कि अग्निदेव भी सेवन किये जाने से उषा की न्याईं उपासक पर खिल जाते हैं, परन्तु तत्काल नहीं शनैः शनै खिलते हैं जैसे उषा पहिले काले पीले रंग वाली होती है फिर लाल रंग वाली और फिर पूर्ण प्रकाश के साथ खिलती है । अग्नि के खिलने से यह तात्पर्य्य है कि वह उपासक के हृदय को प्रकाशित कर सदा के लिये आनन्द से पूर्ण कर देते हैं ।

अग्निर्देवता त्रिष्टुप्छन्दः ।११।११।११।११॥

वीळुचिद्दृह्ळ्हा पितरोनउक्थै
रद्रिंरुजन्नङ्गिरसोरवेण । चक्रुर्दिवो
बृहतोगातुमस्मे अहःस्वर्विविदुःके-
तुमुस्राः ॥ २ ॥

वीळु	वल युक्तानि (वीळुइति वलना, मनि घं०२।९।विभक्तेर्लुक्)	वल वालों को
चित्	अपि	भी
हृळ्हा	दुर्गाणि (आ० को,०शेर्लोपः)	गढों को
पितरः	पितरः	पितरों ने
नः	अस्माकम्	हमारे
उक्थैः	शस्त्रैः	स्तोत्रों से
अद्रिम्	पर्वतम्	पर्वत को
रुजन्	भञ्जितवन्तः (रुजोभङ्गे, अडभावः)	तोड़ दिया
अङ्गिरसः	अङ्गिरसः	अङ्गिराओं ने
रवेण	नादेन	नाद से
चक्रुः	कृतवन्तः	बनाया
दिवः	द्युलोकस्य,	द्युलोक के

बृहतः	महतः	महान के
गातुम्	मार्गम्	रस्ते को
अस्मे०	अस्मभ्यम्	हमारे लिये
अहः०	दिनम्	दिन को
स्वः	ज्योतिः	ज्योति को
विविदुः	लब्धवन्तः (विद्लृलाभे)	प्राप्त किया
केतुम्	ध्वज रूपम्	ध्वज रूप को
उस्राः	रश्मीन् (निघं० १।५)	किरणों को

संस्कृतार्थः ।

अस्माकं पितरोऽङ्गिरसः स्तोत्रैर्बलयुक्तान्यपि दुर्गाणि,नादेन (तमो रूपम्) पर्वतम् (च) भञ्जितवन्तः (तेन) अस्मभ्यं महतो द्युलोकस्य मार्गं कृतवन्तः, दिनं ज्योतिर्ध्वज रूपम्(सूर्य्यम्)किरणान्(च)लब्धवन्तः।२।

भाषार्थः ।

हमारे पितर अंगिराओं ने स्तोत्रों से बल वाले भी गढों को (और) नाद से (अंधकार रूपी) पर्वत

को तोड़ दिया (उससे) हमारे लिये द्युलोक के मार्ग को बनाया (और) दिन, ज्योति, ध्वज रूप सूर्य (और) किरणों को प्राप्त किया ॥ २ ॥

अग्नि देवता का इस मंत्र के साथ यह संबंध है कि हमारे पितर अङ्गिरा अग्नि को स्थापन करके उन्हीं की स्तुति करते थे, मंत्र द्वारा उच्च नाद से स्तुति करके आर्य जाति के पितरों ने सब मनुष्यों के लिये अन्धकार को दूर कर द्युलोक का रास्ता प्रकट किया, और उनके लिये सूर्य की किरणों को प्राप्त किया जो कि जीवन का हेतु हैं। आशय यह है कि अङ्गिराओं ने स्तुति से देवताओं का बल बढ़ाया जिससे वे ऊपर कहे हुए कर्म को करने में समर्थ हुए (देखो० पृ० १५६४)

अग्निर्देवता त्रिष्टुप्छन्दः। ।११।११।११।११

दधन्नृतं धनयन्नस्य धीतिमादिदर्यो दिधिष्वो३ विभृत्राः। अतृप्यन्तीरपसो यन्त्यच्छा देवाञ्जन्म प्रयसा वर्धयन्तीः ॥ ३ ॥

१ दधन्	अधारयन् (दधधारणे,लङि-व्यत्ययेनपरस्मैपदमडभावश्च)	धारण किया
१ ऋतम्	ऋतम्	ऋत को
धनयन्	धनमकुर्वन् (धनशब्दात्तत्करोतीति णिच्,लङ्यडभावः)	धन को बनाया
अस्य	अस्य	इस की
धीतिम्	भक्तिम् (आ०को०)	भक्ति को
आत्	अनन्तरम्	पीछे
इत्	एव	ही
२ अर्यः	आर्य्यं (प्रजाः) (सुपामितिजसःसुः)	आर्य्यं (प्रजाएं)
दिधिष्वः	धारयन्त्यः (निपातनात्साधुः)	स्थापन करतीहुईं
विऽभृत्राः	पालयन्त्यः (भृञ्भरणे, विपूर्वादस्मादौणादिकस्त्रन्प्रत्ययः)	पालन करती हुईं

अतृष्यन्तीः	तृष्णारहिताः (पूर्वसवर्णदीर्घः)	तृष्णा से रहित हुई २
अपसः	कर्म्म (कर्मणिषष्ठी)	कर्म्म को
यन्ति	गच्छन्ति	चलती हैं
अच्छ	अभिलक्ष्य	लक्ष रख कर
देवान्	देवानाम् (षष्ठ्यर्थेद्वितीया)	देवताओं की
जन्म	जातिम्	जाति को
प्रयसा	अन्नेन	अन्न से
वर्धयन्तीः	वर्धयन्त्यः (पूर्वसवर्णदीर्घः)	बढाती हुई

संस्कृतार्थः।

(अङ्गिरसः) ऋतमधारयन्नस्य (अग्नेः) भक्तिम् (च) धनरूपामकुर्वन्, अनन्तरमेवाऽऽर्य्य- (प्रजाः) (अग्निम्) धारयन्त्यः पालयन्त्यः (च) तृष्णा रहिताः (सत्यः) (हवीरूपेण) अन्नेन देवजातिं वर्धयन्त्यः कर्म्माऽभिलक्ष्य गच्छन्ति। २।

भाषार्थः।

(अंगिराओं ने) ऋत को धारण किया (और) इस(अग्नि)की भक्तिको धनरूपबनाया(इसके)अनन्तर ही आर्य्य(प्रजाएं)(अग्नि को) स्थापन करती हुई (और) पालन करती हुई तृष्णा से रहित हुई २ (हविरूप) अन्न से देवजाति को बढाती हुई कर्म्म को लक्ष रख कर चलती हैं॥ ३॥

(१) ऋत को धारण किया अर्थात स्तुतिद्वारा सृष्टि क्रम में देवताओं की सहायता की।

(२) अङ्गिराओं ने ही आर्य्यजाति को अग्नि का स्थापन और रक्षा करना सिखाया तभी से आर्य्यसन्तान विषय भोग की तृष्णा से रहित हुई २ कर्म द्वारा देवजाति के बल को बढाने में तत्पर रही है जिस से देवता असुरों (पाप की शक्तियों) को जीत कर संसार में धर्म और सुख की बहुलता करने में समर्थ रहे हैं।

अग्निर्देवता त्रिष्टुप्छन्दः ।११।११।११।११।

मथीद्यदींविभृतोमातरिश्वा गृहेगृहेश्येतोजेन्योभूत्। आदींराज्ञेनसहीयसेसचा सन्नादूत्यं१भृगवाणो विवाय॥ ४॥

मथीत्	मथितवान् (अडभावः)	मथन किया
यत्	यदा	जब
ईम्	एनम्	इस को
विऽभृतः	व्याप्तः	फैले हुए ने
मातरिश्वा	मातरिश्वा	मातरिश्वा ने
गृहेऽगृहे	गृहे गृहे	घर २ में
श्येतः	शुभ्रवर्णः	उज्वल रंग वाला
जेन्यः	प्रादुर्भूतः (जनीप्रादुर्भावे,अस्मा-दौणादिकयन्यप्रत्ययः)	प्रकट
भूत्	अभूत् (अडभावः)	हुआ
आत्	अनन्तरम्	पीछे
ईम्	एनम्	इस को
राज्ञे	राज्ञे	राजा के ताईं

न	इव	जैसे
सहीयसे	अधिकबलाय	अधिक वल वाले के ताईं
सचा	सहचरः	साथी
सन्	सन्	हुआ २
आ	(पूरणः)	—
दूत्यम्	दूतकर्म्मणे (चतुर्थ्यर्थेद्वितीया)	दूत कर्म्म के लिये
भृगवाणः	भृगुरिवाऽऽचरन् (व्यत्ययेनशानच्)	भृगुकी न्याईं आचरण करते हुए ने
विवाय	प्रेषयामास (वीगतौअन्तर्भावितण्यर्थाल्लिट्)	भेजा

संस्कृतार्थः ।

व्याप्तो मातरिश्वा यदैनम् (अग्निम्) मथितवान् (तदा) शुभ्रवर्णः (अयम्) गृहेगृहे प्रादुरभूत्, (तद्–) अनन्तरं भृगुरिवाऽऽचरन् (आर्य्यसमूहः) एनं दूत कर्म्मणे प्रेषयामास यथा (कश्चिद्राजा) सहचरः सन्नधिक वलाय राज्ञे (दूतंप्रेषयति) । ४ ।

भाषार्थः।

फैले हुए मातरिश्वा ने जब इस (अग्नि) को मथन किया (तब) उज्वल रंग वाले (यह) घर घर में प्रकट होने लगे (इसके) अनन्तर भृगु की न्याईं आचरण करते हुए (आर्यों ने) इस (अग्नि) को दूत कर्म्म के लिये भेजा जैसे (कोई राजा) साथी होकर अधिक बल वाले राजाके ताईं (दूत को भेजता है) ।४।

फैले हुए मातरिश्वा अर्थात् वायु ने जब वन में वृक्षों की रगड़ से अग्नि को मथन किया और आर्य्य मनुष्यों ने इस को अपने २ घरों में स्थापन किया तब इन को देवताओं के साथ इतनी पहुंच हो गई कि उन की राजसभा में अग्नि इन के दूत बनकर रहने लगे जिस से इन के अधिकार का संरक्षण कर सकें।

अग्निर्देवता त्रिष्टुप्छन्दः ।११।११।११।११.

महे यत्पित्र ईं रसं दिवे करव त्सरत्पृशन्यश्चिकित्वान् । सृजदस्ता धृषता दिद्युमस्मै स्वायां देवो दुहितरि त्विषिं धात् ।५।

म॒हे	महते	महान के लिये
यत्	यदा	जब
पि॒त्रे	पित्रे	पिता के लिये
ई॒म्	(पूरणः)	–
रस॑म्	वीर्य्यम् (आ० को०)	वीर्य्य को
दि॒वे	द्योतमानाय	दीप्तिमानकेलिये
कः	अकरोत् (दृढ्ल्ग्विड्लेर्लुक्, अड-भावश्च)	किया
अव॑	अव +	–
त्स॒र॒त्	अव + त्सरत् अपचक्राम त्सरच्छद्मगतौ)	चोरीसेनिकलगया
पृ॒ष॒न्यः	स्पृष्टेवाऽचरतीति (स्पृशतेः सलोपश्छा-न्दसः,तदेवाऽऽचर-तीतिक्यच)	स्पर्श करने वाले की न्याईं आच-रण करने वाला

चिकित्वान्	जानन्	जानता हुआ
सृजत्	विसृष्टवान् (अडभावः)	छोड़ा
अस्ता	(इषूणाम्) क्षेप्ता धनुर्धरइत्यर्थः	धनुर्धारीने
धृषता	धृष्टतया	बेधडक होकर
दिद्युम्	प्रदीप्तमस्त्रम् (आ० को०)	प्रदीप्त अस्त्र को
अस्मै	अस्मै	इस के ताईं
स्वायाम्	स्वकीयायाम्	अपनी म
देवः	देवः	देवने
दुहितरि	दुहितरि	पुत्री में
त्विषिर्	दीप्तिम्	दीप्ति को
धात्	धारितवान् (अडभावः)	धारण किया

संस्कृतार्थः ।

यदा (अग्निः) महते द्योतमानाय पित्रे वीर्य्यमकरोत् (तदा) स्पृष्टेवाऽऽचरन् (अन्धकारः) जानन् (सन्)अपचक्राम धनुर्धरः (अग्निः) अस्मै (अपक्रमते) धृष्टतया प्रदीप्तमस्त्रं विसृष्टवान् देवः (च) स्वकीयायां दुहितरि दीप्तिं धारितवान् ।५।

भावार्थः ।

जब (अग्निने) महान दीप्ति वाले पिता के लिये वीर्य्य को संपादन किया (तब) स्पर्श करने वाला (अन्धकार) जानता हुआ चोरी से निकल गया धनुर्धारी(अग्नि)ने इस चलते हुए के ताईं बेधडक होकर प्रदीप्त अस्त्र को छोडा (और) (द्यु) देव ने अपनी पुत्री में तेज को धारण किया । ५ ।

जब अग्नि ने सूर्य्य रूप में पिता द्यौ के ताईं तेज रूप वीर्य्य को दिया तब अन्धकार जो अत्यन्त गाढा होने से स्पर्श करता सा प्रतीत होता था चोर की न्याईं निकल गया, उस पर अग्नि ने सूर्य्य की किरण रूप अस्त्र को छोडा और पिता द्यौ ने तेज रूप वीर्य्य को अपनी पुत्री उषा में स्थापन किया । आशय यह है कि द्युलोक के तेज और उषा की दीप्ति का कारण अग्निदेव ही हैं ॥

अग्निर्देवता त्रिष्टुप्छन्दः ।११।११ ११।११

स्वआयस्तुभ्यंदमआविभाति

नमोवादाशादृशतोअनुद्यून्। वर्धो अग्ने वयोअस्यद्विबर्हा यासद्रायासरथंयंजुनासि। ६।

स्वे	स्वकीये	अपने में
आ	(पूरणः)	–
यः	यः	जो
तुभ्यम्	त्वाम् (द्वितीयार्थे चतुर्थी)	तुझ को
दमे	गृहे	घर में
आ	आ +	–
विऽभाति	आ+विभाति प्रज्वलयनि (अन्तर्भावितण्यर्थः)	प्रदीप्त करता है
नमः	(हवीरूपम्) अन्नम् (निघं २।७)	(हवि रूप) अन्न को

भाषार्थ ।

(अंगिराओं ने) ऋत को धारण किया (और) इस(अग्नि)की भक्तिको धनरूपबनाया(इसके)अनन्तर ही आर्य्य(प्रजाएं)(अग्नि को) स्थापन करती हुईं (और) पालन करती हुईं तृष्णा से रहित हुईं २ (हविरूप) अन्न से देवजाति को बढाती हुईं कर्म्म को लक्ष रख कर चलती हैं ॥ ३ ॥

(१) ऋत को धारण किया अर्थात स्तुतिद्वारा सृष्टि क्रम में देवताओं की सहायता की ।

(२) अङ्गिराओं ने ही आर्य्यजाति को अग्नि का स्थापन और रक्षा करना सिखाया तभी से आर्य्यसन्तान विषय भोग की तृष्णा से रहित हुई २ कर्म द्वारा देवजाति के बल को बढाने में तत्पर रही है जिस से देवता असुरों (पाप की शक्तियों) को जीत कर संसार में धर्म और सुख की बहुलता करने में समर्थ रहे हैं ।

अग्निर्देवता त्रिष्टुपछन्दः ।११।११।११।११॥

मथीद्यदींविभृतोमातरिश्वा गृहे-गृहेश्येतोजेन्योभूत् । आदींराज्ञेन-सहीयसेसचा सन्नादूत्यं१भृगवाणो विवाय ॥ ४ ॥

मथीत्	मथितवान् (अडभावः)	मथन किया
यत्	यदा	जब
ईम्	एनम्	इस को
विऽभृतः	व्याप्तः	फैले हुए ने
मातरिश्वा	मातरिश्वा	मातरिश्वा ने
गृहेऽगृहे	गृहे गृहे	घर २ में
श्येतः	शुभ्रवर्णः	उज्वल रंग वाला
जेन्यः	प्रादुर्भूतः (जनीप्रादुर्भावे,अस्मा-दौणादिकएन्यप्रत्ययः)	प्रकट
भूत्	अभूत् (अडभावः)	हुआ
आत्	अनन्तरम्	पीछे
ईम्	एनम्	इस को
राज्ञे	राज्ञे	राजा के ताईं

न	इव	जैसे
सहीयसे	अधिकवलाय	अधिक वल वाले के ताईं
सचा	सहचरः	साथी
सन्	सन्	हुआ २
आ	(पूरणः)	–
दूत्यम्	दूतकर्म्मणे (चतुर्थ्यर्थेद्वितीया)	दूत कर्म्म के लिये
भृगवाणः	भृगुरिवाऽऽचरन् (व्यत्ययेनशानच्)	भृगुकी न्याईं आचरण करते हुए ने
विवाय	प्रेषयामास (वीगतौअन्तर्भावित-ण्यर्थाल्लिट्)	भेजा

संस्कृतार्थ. ।

व्याप्तो मातरिश्वा यदैनम् (अग्निम्) मथितवान् (तदा) शुभ्रवर्णः (अयम्) गृहेगृहे प्रादुरभूत्, (तद्-) अनन्तरं भृगुरिवाऽऽचरन् (आर्य्यसमूहः) एनं दूत कर्म्मणे प्रेषयामास यथा (कश्चिद्राजा) सहचरः सन्नधिक वलाय राज्ञे (दूतंप्रेषयति) । ४ ।

भावार्थः।

फैले हुए मातरिश्वा ने जब इस (अग्नि) को मथन किया (तब) उज्वल रंग वाले (यह) घर घर में प्रकट होने लगे (इसके) अनन्तर भृगु की न्याईं आचरण करते हुए (आर्यों ने) इस (अग्नि) को दूत कर्म के लिये भेजा जैसे (कोई राजा) साथी होकर अधिक बल वाले राजाके ताईं (दूत को भेजता है)।४।

फैले हुए मातरिश्वा अर्थात् वायु ने जब वन में वृक्षों की रगड़ से अग्नि को मथन किया और आर्य्य मनुष्यों ने इस को अपने २ घरों में स्थापन किया तब इन की देवताओं के साथ इतनी पहुंच हो गई कि उन की राजसभा में अग्नि इन के दूत बनकर रहने लगे जिस से इन के अधिकार का संरक्षण कर सकें।

अग्निर्देवता त्रिष्टुछन्दः ।११।११।११।११

महेयत्पित्रईंरसंदिवेक रवत्स-

रत्पृशन्यश्चिकित्वान् । सृजद-

स्ताधृषतादिद्युमस्मै स्वायांदेवोदु-

हितरित्विषिंधात्। ५।

म॒हे	महते	महान के लिये
यत्	यदा	जब
पि॒त्रे	पित्रे	पिता के लिये
ई॒म्	(पूरणः)	—
रसम्	वीर्य्यम् (आ० को०)	वीर्य्य को
दि॒वे	द्योतमानाय	दीप्तिमानकेलिये
कः	अकरोत् (हृङिच्लेर्लुक्,अड-भावश्च)	किया
अव	अव +	—
त्सर॒त्	अव + त्सरत् अपचक्राम (त्सर छद्मगती)	चोरीसेनिकलगया
पृ॒श॒न्यः	स्प्रष्टेवाऽचरतीति (स्पृशतेः सलोपश्छा-न्दसः,तद्वदाऽऽचर-तीतिक्यच)	स्पर्श करने वाले की न्याईं आच-रण करने वाला

चिकित्वान्	जानन्	जानता हुआ
सृजत्	विसृष्टवान् (अडभावः)	छोड़ा
अस्ता	(इषूणाम्) क्षेप्ता धनुर्धरइत्यर्थः	धनुर्धारीने
धृषता	धृष्टतया	वेधडक होकर
दिद्युम्	प्रदीप्तमस्त्रम् (आ० को०)	प्रदीप्त अस्त्र को
अस्मै	अस्मै	इस के ताईं
स्वायाम्	स्वकीयायाम्	अपनी म
देवः	देवः	देवने
दुहितरि	दुहितरि	पुत्री में
त्विषिम्	दीप्तिम्	दीप्ति को
धात्	धारितवान् (अडभावः)	धारण किया

संस्कृतार्थः ।

यदा (अग्निः) महते द्योतमानाय,पित्रे वीर्य्यमकरोत् (तदा) स्प्रष्टेवाऽऽचरन् (अन्धकारः) जानन् (सन्)अपचक्राम धनुर्धरः (अग्निः)अस्मै (अपक्रमते) धृष्टतया प्रदीप्तमस्त्रं विसृष्टवान् देवः (च) स्वकीयायां दुहितरि दीप्तिं धारितवान् ।५।

भाषार्थः।

जब (अग्निने) महान दीप्ति वाले पिता के लिये वीर्य्य को संपादन किया (तब) स्पर्श करने वाला (अन्धकार) जानता हुआ चोरी से निकल गया धनुर्धारी(अग्नि)ने इस चलते हुए के ताईं वेधडक होकर प्रदीप्त अस्त्र को छोडा (और) (द्यु) देव ने अपनी पुत्री में तेज को धारण किया। ५।

जब अग्नि ने सूर्य्य रूप में पिता द्यो के ताईं तेज रूप वीर्य्य को दिया तब अन्धकार जो अत्यन्त गाढा होने से स्पर्श करता सा प्रतीत होता था चोर की न्याईं निकल गया, उस पर अग्नि ने सूर्य्य की किरण रूप अस्त्र को छोडा और पिता द्यौ ने तेज रूप वीर्य्य को अपनी पुत्री उषा में स्थापन किया। आशय यह है कि द्युलोक के तेज और उषा की दीप्ति का कारण अग्निदेव ही हैं॥

अग्निर्देवता त्रिष्टुप्छन्दः ।११।११ ११।११

स्वआयस्तुभ्यंदमआविभाति

नमोवादाशादुभतोअनुद्यून्। वर्धो
अग्नेवयोअस्यद्विबर्हा यासद्रायास-
रथंयंजुनासि।६।

स्वे	स्वकीये	अपने में
आ	(पूरणः)	—
यः	यः	जो
तुभ्यम्	त्वाम् (द्वितीयार्थे चतुर्थी)	तुझ को
दमे	गृहे	घर में
आ	आ +	—
विऽभाति	आ+विभाति प्रज्वलयति (अन्तर्भावितण्यर्थः)	प्रदीप्त करता है
नमः	(हवीरूपम्) अन्नम् (निघं २।७)	(हवि रूप) अन्न को

वा	वा	अथवा
दशात्	ददाति (लेटयाडागम.)	देता है
उशतः	कामयमानम् (कर्मणि षष्ठी)	कामना करने वाले को
अनु	अनु	–
द्यून्	अनु+द्यून्, अनु-दिनम्	प्रति दिन
वर्धा०	वर्धय (वर्ध, उदतिपादपूरणः, णेर्लोपः)	बढाओ
अग्ने	हे अग्ने !	हे अग्नि
वयः	बलम् (आ०को०)	बल को
अस्य	अस्य	इसके
द्विऽबर्हाः	द्विगुण बलयुक्तः (आ० को०)	दुगने बल वाला
यासत्	सङ्गच्छते (याप्रापणेलेटिसिपरौ)	संयुक्त होता हैं

१ राया	धनेन	धन से
सऽरथम्	रथेनसहितम्	रथवाले को
यम्	यम्	जिस को
जुनासि	प्रेरयसि (जु इतिगत्यर्थः सौत्रो धातुरस्माद्व्यत्ययेनश्ना)	प्रेरण करते हो

संस्कृतार्थः।

हे अग्ने ! यस्त्वां स्वकीये गृहे प्रज्वलयति, अथवा कामयमानाय(तुभ्यम्)प्रतिदिनम्(हवीरूपम्) अन्नं ददाति, द्विगुण बलयुक्तः (त्वम्) तस्य बलं वर्धय,(त्वम्)रथेन सहितं यम् (सङ्ग्रामे)प्रेरयसि(सः) धनेन सङ्गच्छते। ६।

भापार्थः।

हे अग्नि जो आप को अपने घर में प्रदीप्त करता है अथवा कामना करने वाले आपके ताईं (हवि रूप) अन्न को देता है द्विगुण बल वाले आप उस के बल को बढावें,आप जिस रथी को (युद्धमें) प्रेरण करते हो (वह),धन से युक्त होता है। ६।

धन से युक्त होता है, अर्थात शत्रु को जीत कर उसका धन हरण करता है।

अग्निर्देवता त्रिष्टुप्छन्दः ।११।११।११।११

अग्निंविश्वाअभिपृक्षः सचन्ते
समुद्रंनस्रवतःसप्तयह्वीः । नजामि-
भिर्विचिकितेवयोनो विदादेवेषप्रम-
तिंचिकित्वान् । ७ ।

अग्निम्	अग्निम्	अग्निको
विश्वाः	सर्वाः	सब
अभि	अभि +	–
पृक्षः	(हवीरूपाणि) अन्नानि (निघं० २।७)	(हविरूप) अन्न
सचन्ते	अभि+सचन्ते सर्वतःप्राप्नुवन्ति	सब ओरसे प्राप्त होते हैं

समुद्रम्	समुद्रम्	समुद्र को
न	इव	जैसे
स्रवतः	स्रवन्त्यः	बहने वाली
सप्त	सप्त	सात
यह्वीः	नद्यः (आ०को० (पूर्वसवर्णदीर्घः)	नदियां
न	न	नहीं
जामिऽभिः	बन्धुभिः	बंधुओंसे
वि	वि +	–
चिकिते	वि+चिकिते विज्ञायते	जाना जाता है
वयः	अन्नम् (निघं० २७)	अन्न
नः	अस्मदीयम्	हमारा
विदाः	प्रापय (अन्तर्भावितण्यर्थाद् विदेर्लेटिरूपम्)	प्राप्त कराओ
देवेषु	देवेषु	देवताओं में

प्रऽमतिम्	अनुग्रहकर्तारम् (ऋ० १।३१।९)	अनुग्रह करने वाले को
चिकित्वान्	विद्वान्	विद्वान्

संस्कृतार्थः ।

अग्निं सर्वाणि (हवीरूपाणि) अन्नानि स्रवन्त्यः सप्त नद्यः समुद्रमिव सर्वतः प्राप्नुवन्ति (हे अग्ने !) अस्मदीयमन्नं बन्धुभिर्न विज्ञायते विद्वान् (त्वम्) देवेषु (अस्माकम्) अनुग्रह कर्त्तारं प्रापय ॥ ७ ॥

भावार्थः ।

अग्नि को सम्पूर्ण (हवि रूप) अन्न प्राप्त होते हैं जैसे बहनेवाली सात नदियां समुद्रको (प्राप्त होती हैं) (हे अग्नि) हमारा अन्न सम्बन्धियों से नहीं जाना जाता, विद्वान् आप देवताओं में (हम पर) कृपा करने वाला प्राप्त करावें ॥ ७ ॥

(१) बहने वाली सात नदियां अर्थात् शतद्रु, विपाशा, परुष्णी असिक्नी, वितस्ता सिन्धु और सरस्वती।

(२) हमारा अन्न संबंधियों से नहीं जाना जाता अर्थात् इतना कम है कि हमारा अपना निर्वाह भी कठिनता से होता है, इस लिये प्रार्थना है कि अग्निदेव देवताओं में कोई हम पर कृपा करने वाला खड़ा करें जो हम को इतना पुष्कल अन्न और धन दे जिस में से हम अपने संबंधियों और दूसरे दीनों को भी दे सकें।

अग्निर्देवता त्रिष्टुप्छन्दः ।११।११।११।११॥

आयदिषेनृपतिंतेजआनट् शु-
चिरेतोनिषिक्तंद्यौरभीके । अग्निः
शर्धमनवद्यंयुवानं स्वाध्यंजनयत्सू-
दयच्च ॥ ८ ॥

आ	खलु (मा०को०)	सचमुच
यत्	यदा	जब
इषे	अन्नाय	अन्न के लिये
नृऽपतिम्	नराणांपतिम् (अग्निम्)	नरों के स्वामी (अग्नि) को
तेजः	तेजः	तेज
आनट्	व्याप्नोत् (अशूङ्व्याप्तौ,छन्दसि [illegible])	व्याप्त हुआ

शुचि	शुद्धम्	स्वच्छ
रेतः	वीर्य्यम्	वीर्य्य
निऽसिक्तम्	सिञ्चितम्	डाला गया
द्यौः	दिवि (सुपामितिविभक्तेःसुः)	द्यौ में
अभीके	अभिप्राप्ते	समीप प्राप्त में
अग्निः	अग्निः	अग्नि
शर्धम्	(मारुतम्) गणम्	(मरुद्) गण को
अनवद्यम्	अनिन्द्यम्	निन्दा रहित को
युवानम्	युवानम्	जवान को
सुऽआध्यम्	शोभनकर्म्माणम्	सुकर्म्मा को
जनयत्	उत्पादितवान् (लडयडभावः)	उत्पन्न किया
सूदयत्	प्रेरितवान् (लडयडभावः)	प्रेरण किया
च	च	और

संस्कृतार्थः।

यदा खलु नराणां पतिम् (अग्निम्) अन्नार्थं तेजो व्याप्नोत् (तदा तेन) आभप्राप्ते दिवि रेतः सिञ्चितम् (एवम्) अनिन्द्यं युवानं शोभन कर्म्माणम् (मारुतम्) गणमग्निरुत्पादितवान् (वृष्ट्यर्थम्) च प्रेरितवान् ॥ ८॥

भावार्थः।

सचमुच जब नरों के स्वामी (अग्नि) को अन्न के लिये तेज व्याप्त हुआ (तब उसने) समीप आई हुई द्यो में बीज को डाला (इस प्रकार) अग्नि ने निन्दा रहित, जवान, सुकर्म्मा (मरुत) गण को उत्पन्न किया और (वृष्टि के लिये) प्रेरण किया ॥ ८॥

जब अग्नि को मनुष्यों के लिये अन्न उत्पन्न करने की कामना होती है तब वह आकाश के गर्भ से मरुद्गण को उत्पन्न करते हैं और वह ही उनको समुद्र से बादलों को लाकर जल बरसाने के लिये प्रेरण करते हैं। रुद्र भी अग्नि का नामान्तर है जो मरुतों के पिता कहे जाते हैं।

अग्निर्देवता त्रिष्टुप्छन्दः ।११।११।११।११

मनो॒नयो॒ऽध्वनः॒सद्यए॑त्ये॒कः॒स-

चासूरो॒वस्व॑ईशे। राजा॑नामि॒त्राव-

विज्ञापन

यह ग्रन्थ स्वध्याय की प्रतिज्ञा करने वाले ब्राह्मणों को बिना मूल्य दिया जाता है।

मूल्य देनेवाले ग्राहकों के लिए १ से २६ अंक तक डाक व्यय सहित मूल्य ७॥)

वर्तमान साल के लिये जो आश्विन १९६६ से आरम्भ है।

अग्रिम मूल्यडाकव्यय सहित २)

पुस्तक मिलने का पता :—

मुन्शीजैराम मैनेजर

ऋग्वेदसंहिता

मुलतान

अंक ४१-४२] [माघ-फाल्गुन १९६६

ऋग्वेद संहिता

(वैदिकजीवनभाष्ययुता)

पदपाठ, शब्दार्थ, संस्कृत और भाषा अनुवाद, टिप्पणी और मन्त्रों के आशय पर व्याख्यान से युक्त

जिसको मुलतान निवासी पं॰ शङ्करदत्तशास्त्री की सहायता से शिवनाथ आहिताग्नि ने सम्पादन किया।

लाहौर

पञ्जाब एकानोमीकल यन्त्रालय में मिष्टर लाला सालमन के अधिकार से छपा।

---

१२ अंकों का अग्रिम मूल्य २)

पहले २४ अंकों का मूल्य ५॥),

ऋणासुप्राणी गोषुप्रियमृतंरक्ष-
माणा ॥९॥

मनः	मनः	मन
न	इव	की न्याईं
यः	यः	जो
अध्वनः	मार्गान्	रस्तों को
सद्यः	शीघ्रम्	शीघ्र
एति	गच्छति	चलता है
एकः	एकः	अकेला
सत्रा	सत्यम् (निघं० ३।१०)	सचमुच
सूरः	मेधावी	बुद्धिमान
वस्वः	धनम् (कर्मणि षष्ठी)	धन को
ईशे	ईष्टे	ईशन करता है

२ राजाना	राजानौ	दोनों राजा
२मित्रावरुणा	मित्रावरुणौ	मित्र (और) वरुण
ऽसुपाणी०	शोभन हस्तौ	सुन्दर हाथोंवाले
गोषु	नक्षत्रेषु (आ०को०)	नक्षत्रों में
प्रियम्	प्रियम्	प्रिय को
अमृतम्	मरण रहितम्	मरण रहित को
रक्षमाणा	रक्षन्तौ (विभक्तेरात्वम्)	रक्षित करते हुए

संस्कृतार्थः।

यो मन इव शीघ्रं मार्गान् गच्छति (सः) मेधावी सत्यमेव धनस्यैकाकी राजा (वर्तते), शोभनहस्तौ राजानौ मित्रावरुणौ नक्षत्रेषु मरणरहितं प्रियम् (सूर्य्यम्) रक्षन्तौ (विद्येते) ॥ ९ ॥

भाषार्थः।

जो मन की न्याईं शीघ्र यात्रा करता है (वह) बुद्धि-

मान सचमुच धन के अकेले राजा (हैं) सुन्दर हाथों वाले दोनों राजा मित्र (और) वरुण नक्षत्रों में मरण रहित प्रिय (सूर्य्य) की रक्षा करते (हैं)। ९।

(१) पृथिवी में सब धनका हेतु अग्नि वा सूर्य्य है जिसकी अत्यन्त शीघ्र गति है।

(२) राजा मित्र और वरुण नक्षत्रों के बीच सूर्य्य की निरन्तर रक्षा करते हैं, इसीलिये यह किसी दूसरे नक्षत्र से टकरा कर नष्ट नहीं होता॥

अग्निर्देवता त्रिष्टुप्छन्दः ।११।११।११।११

मानोअग्नेसख्यापित्र्याणि प्रमर्षिष्ठाअभिविदुष्कविःसन्। नभोनरूपंजरिमामिनाति पुरातस्याअभिशस्तेरधीहि ॥१०॥

मा	मा	मत
नः	अस्मभ्यम्	हमारे लिये

अग्ने	हे अग्ने !	हे अग्नि
सख्या	सख्यानि (शेर्लोपः)	मित्रताओं को
पित्र्याणि	पितृसम्बन्धीनि (यत्प्रत्ययः)	पितृसम्बन्धियोंको
प्र	प्र +	—
मर्षिष्ठाः	प्र+मर्षिष्ठाः, विस्मर (आ०को०) (लोडर्थेलुङयडभावः)	भूलो
अभि	अभितः	सब ओर से
विद्वुः	ज्ञाता (विदज्ञानेउसिःप्रत्ययः)	जाननेवाला
कविः	मेधावी	बुद्धिमान
सन्	सन्	हुआ २
नभः	कूहा (आ०को०)	कोहर
न	इव	की न्याईं

रूपम्	रूपम्	रूप को
जरिमा	जरा (भावे-इमनिच्प्रत्ययः	वुढापा
मिनाति	हिनस्ति क्षीणी-करोतीत्यर्थः (मीञ् हिंसायाम)	छिजाता है
पुरा	पूर्वम्	पहिले
तस्याः	तस्याः	उसके
अभिऽशस्तेः	हिंसाहेतुरूपायाः (शसुहिंसायाम्,अभि-शस्यते हिंस्यतेऽन-येति करणेक्तिन्)	हिंसा की कारण रूप के
अधि	अधि+	–
इहि	अधि+इहि, समीपप्राप्नुहि संस्कृतार्थः।	तू समीप प्राप्तहो

हे अग्ने ! मेधावीसन् सर्वतो ज्ञाता (त्वम्)अस्मभ्यं पितृसम्बन्धीनि सख्यानि मा विस्मर जरा कुहेव रूपं हिनस्ति (अतस्त्वम्) हिंसा हेतु रूपायास्तस्याः (आगमनात्) पूर्वम् (एव) समीपं प्राप्नुहि । १० ।

भावार्थः ।

हे अग्नि सब ओर से जानने वाले (और) बुद्धिमान होकर आप हमारे लिये पितृ सम्बन्धी मित्रताओं को न भूलें बुढ़ापा का हर की न्याईं रूप को छिजाता है, (इस लिये) उस हिंसा के हेतु के (आने से) पहिले (ही) आप समीप प्राप्त हों ॥१०॥

पितृ संबन्धी मित्रता जो हमारे पितर अंगिरा भृगु आदि के साथ अग्नि की थी उस को वह न भुलावें और बुढ़ापे की विपत्ति के आने से पहले हमारे हृदयमें प्राप्त होकर हमें भी अपनी मित्रता और भक्ति प्रदान करें ॥

इत्येक सप्ततितमं सूक्तम्

ऋ० मं० १ सू० ७२

पराशर ऋषिः ।

विनियोग-यह सूक्त प्रातरनुवाक के आग्नेय क्रतु में पढा जाता है (आ० श्रौ० सू० ४ । १३ । ७) और आश्विन शस्त्र में भी।

इस में अग्नि की परमात्मा से एकता और उसका मनुष्यों पर नाना प्रकार से उपकार दर्शाया है। अग्निदेव विधाताके कर्म विपाक नियम का अनादर करते हुए मनुष्यों के लिये हित कारी अर्थको ही संपादन करते हैं। यह सब रमणीय धनोंके रचने वाले और स्वामी हैं यद्यपि यह हमारे हृदय में रहते हैं परन्तु मन और इन्द्रिय आदि देवता उस को नहीं जानते, उस के जानने का उपाय अनेक प्रकार का श्रम और चिंतन है। मरुद्गण भी उस को नहीं जानते थे परन्तु जब उन्होंने तीन वर्ष तक समुद्र से जल ढोकर इस जल रूपी घृत से अग्नि का पूजन किया और अपने सार्प सार्प शब्द से अग्नि की

स्तुति करके द्यावापृथिवी को गुंजा दिया और पृथक पृथक गणरूप से अग्नि के जानने की उत्कंठा की तब उन्होंने आकाश के उच्चस्थान में सूर्य्य रूप से विराजमान अग्नि को पाया और मरण धर्म को छोड़ कर देवता बने। दूसरे देवता भी। पत्नियों सहित अग्नि का पूजन करते हैं और उसको प्रसन्न करने के लिये उसकी मनुष्य प्रजा के निमित्त अपने शरीरों को सुकाते हैं, यही मनुष्यों के लिये अग्नि में स्थापित २१ गूढ़ पदों द्वारा अमृत की रक्षा करते हैं जिन पदों द्वारा मनुष्य देवपदवी को भी प्राप्त होसकता है, उदार चित्त अग्नि मनुष्य और देवता दोनों की आवश्यकताओं को जानते हुए मनुष्यों के लिए अन्न और देवताओं के लिए हवि पहुंचाने का प्रबन्ध करतेहैं। हमारे पूर्व ऋषि जो शुभ चिंतन से युक्त और सृष्टि नियमको खूब समझते थे जानते थे कि अन्नादि धन का द्वार नदियों की न्याईं आकाश से गिरने वाली सात रंग की किरणें हैं इन्हीं को सरमाने देवता और ऋषियों की प्रेरणासे अन्धकार रूपी बल के गोष्ठमें से खोज कर निकाला था, वास्तवमें हमारे पूर्वऋषियों जैसे महानुभाव पुत्रों के द्वारा ही यह पृथिवी यश के साथ ठैरी हुई है ये लोग दूसरों के उपकार के लिये ही कर्म करते थे और उन्हीं के श्रम से हमारे लिये देवपदवी तक पहुंचने का शास्त्र रूप मार्ग बना हुआ है वे धन्य हैं और देवता धन्य हैं जिन्हों ने आकाश के यह दो नेत्र बनाकर स्थापन किए जो धारा की न्याईं दिन रात किरण रूपी धन को आकाश से गिराते रहते हैं॥

अग्निर्देवता त्रिष्टुप्छन्दः। ११।११।११।११

नि काव्या वेधसः शश्वतस्क र्ह-
स्ते दधानो नर्या पुरूणि। अग्निर्भुवद्र-

यिपतीरयीणां सचाचक्राणोअमृता-

निविश्वा। १।

नि	नि+	–
काव्या	ज्ञानम् (आ०को०)	ज्ञान को
वेधसः	विधातुः	विधाता के
शश्वतः	नित्यस्य	नित्य के
कः	नि+कः निकृतवान्, अवज्ञातवानित्यर्थः	निरादर किया
हस्ते	हस्ते	हाथ में
दधानः	धारयन्	धारण करताहुआ
नर्या	नृभ्योहितानि (नेर्यःपः)	मनुष्यों के लिये हित करनेवालोंको

पुरूणि	बहूनि	बहुतों को
अग्निः	अग्निः	अग्नि
भुवत्	अभवत्	हुआ है
रयिऽपतिः	धनानां पतिः	धनों का स्वामी
रयीणाम्	धनानाम्	धनों के
सचा	सत्यम (निघं० ३।१०)	सच मुच
चक्राणः	कुर्वन् (विकरणस्यश्लुश्छान्दसः)	बनाता हुआ
अमृतानि	रमणीयानि (आ०को०)	रमणीयों को
विश्वा	सर्वाणि (शेर्लोपः)	सब को

संस्कृतार्थः।

नृभ्योहितानि बहूनि (वस्तूनि) हस्ते धारयन्नग्निः शाश्वतस्य विधातुर्ज्ञानमवज्ञातवान् (सः)

सत्यमेवसर्वाणि (धनानि) रचयन् धनानां धनपतिरभवत् ॥ १ ॥

भाषार्थः ।

मनुष्यों के ताईं हितकरने वाले बहुत (वस्तुओं) को हाथ में धारण करते हुए अग्नि ने अनादि विधाता के ज्ञान का निरादर किया है, वह सचमुच सब रमणीय (धनों) को बनाते हुए धनों के धनपति बने हैं ॥ १ ॥

कर्म के अनुसार फल देने वाले विधाता ने जो किसी मनुष्य जाति वा व्यक्ति के लिये कर्म के फल का भोग भुगाना सोचा हुआ है अग्निदेव उसका अनादर कर हितअर्थों को ही संपादन करते हैं, तात्पर्य यह है कि परमात्मा मनुष्यों के अत्यन्त हितकारी हैं और पापो पर भी दया करते हैं, जो लोग पृथिवी पर दुःख देख कर परमात्मा को बुराते हैं वे विचार शील नहीं हैं, दुःख का शिक्षा रूपी दण्ड हमें सब अवस्थाओं को जीतने के योग्य बना कर अमर बनाने के लिये अत्यन्त आवश्यक है, कर्म के फल भोगने के क्रूर नियम को भी परमात्मा मनुष्यों के हित के लिये अत्यन्त दया के साथ बर्तते हैं जैसे माता बालक को कड़वी ओषधी बहुत प्यार के साथ बहुत कम दुःख देती हुई पिलाती है ॥

अग्निर्देवता त्रिष्टुप्छन्दः ।११।११।११।११॥

अस्मेवत्संपरिषन्तंनविन्दन्नि-

चक्षन्तोविश्वेअमृताअमूराः ।अस्म-
युवःपट्व्योधियंधा स्तस्थुःपदेपर-
मेचार्वग्नेः।२।

अस्मे०	अस्मासु (सुपामितिसप्तम्याशेआदेशः)	हम में
वत्सम्	प्रियम् (आ० को०)	प्यारे को
परि	परि+	–
सन्तम्	वर्त्तमानम्	वर्तमान को
न	न	नहीं
विन्दन्	परि+विन्दन् याथार्थ्येनज्ञातवन्तः (परिवेदोयथार्थज्ञानम्) (आ०को०) अडभावः	यथार्थ जाना

इ॒च्छन्त॑:	इच्छन्तः	इच्छा करते हुए
विश्वे॑	सर्वे	सब
अ॒मृता॑:	मरणरहिताः	मरण से रहित
अमू॑रा:	अमूढाः	मूर्खता से रहित
श्र॒म॒ऽयुव॑:	श्रान्ताः (श्रमेण यूयन्त इति, युमिश्रणे, श्रमपूर्वादस्मात् क्विप्)	थके हुए
प॒द॒ऽव्य॑:	पादैर्गच्छन्तः (पादैश्चरणैर्वियन्ति-गच्छन्तीति, वीगतौ क्विप् प्रत्ययः)	पैदल जाते हुए
धि॒यम्ऽधा॑:	ध्यानं धारयन्तः (द्वितीयायामलुक्)	ध्यान लगाए हुए
त॒स्थु॒:	स्थितवन्तः	ठहरे
प॒दे	पदे	पद में
प॒र॒मे	उत्तमे	उत्तम में

चारु	चारुणि (सुपामितिसप्तम्या लुक्)	सुन्दर में
अग्नेः	अग्नेः	अग्नि के

संस्कृतार्थः

अस्मासु वर्तमानं प्रियम्(अग्निम्)इच्छन्तोमरणरहिताअमूढाःसर्वे(देवाः)याथार्थ्येन न ज्ञातवन्तः(तदा) पादैर्गच्छन्तःश्रान्ता ध्यानंधारयन्तः(च ते) अग्नेरुत्तमे चारुणि पदे तस्थुः ॥ २ ॥

भाषार्थः ।

हम में रहने वाले प्यारे(अग्नि)को इच्छा करते हुए मरण(और)मूर्खता से रहित सब(देवताओं) ने यथार्थ न समझा (तब)पैरों से चलते हुए थके हुए (और) ध्यान लगाए हुए(वे सब) अग्नि के सुन्दर उत्तम पद में पहुंचे ॥ २ ॥

यहांपर अग्निसे परमात्मा के रूप का और देवताओं से इन्द्रिय और मन का वर्णन है,यद्यपि परमात्मा हमारे भीतर निवास करते हैं परन्तु इन्द्रियां और मन इन को नहीं जानते, मंत्र के उत्तरार्द्ध में परमात्मा की प्राप्ति का उपाय बतलाया है वह यह है कि जब इन्द्रिय और मन उस को जानने की इच्छा से अनेक प्रकार से श्रम कर के थक जाते हैं और निरन्तर उस में ध्यान लगाए रहते हैं तब उत्तम

पद अर्थात हृदयाकाश में परमात्मा का ज्ञान और दर्शन होता है। पैरों से चलना श्रम करने का उपलक्षण है ॥

अग्निर्देवता त्रिष्टुप्छन्दः ।११।११।११।११

तिस्रोयदग्नेशरदस्त्वामिच्छु-
चिंघतेनशुचयःसपर्यान्। नामानि-
चिद्दधिरेयज्ञियान्यसूदयन्ततन्वः
सुजाताः ।२।

तिस्रः	तिस्रः	तीन
यत्	यदा	जब
अग्ने	हे अग्ने !	हे अग्नि
शरदः	शरदुपलक्षितानि-वर्षाणि	वर्ष
त्वाम्	त्वाम्	तुझको

द्रुत्	(पूरणः)	—
शुचिम्	पवित्रम्	पवित्र को
घृतेन	घृतेन	घी से
शुचयः	शुद्धाः	पवित्रों ने
सपर्यन्	पूजितवन्तः (सपरपूजायां,लेट्या- (डागमः)	पूजन किया
नामानि	नामानि	नामों को
चित्	च (आ०को०)	और
दधिरे	धृतवन्तः	धारण किया
यज्ञियानि	यज्ञार्हाणि	यज्ञ में योग्यों को
असूदयन्त	त्यक्तवन्तः	छोड़ दिया
तन्वः	शरीराणि	शरीरों को

सुऽजाताः	उत्कर्षेणोत्पन्नाः	उच्चउत्पन्नहुए२

संस्कृतार्थः।

हे अग्ने! यदा शुद्धाः (मरुतः) पवित्रं त्वां वर्षत्रयपर्यन्तं घृतेन पूजितवन्तः(तदा ते) यज्ञार्हाणि नामानि धृतवन्तः, उत्कर्षेणोत्पन्नाः (सन्तश्च) (मर्त्यानि) शरीराणि त्यक्तवन्तः ॥ २ ॥

भाषार्थः।

हे अग्नि जब पवित्र (मरुतों)ने पवित्र आप को तीन वर्ष पर्यन्त घी से पूजा (तब उन्होंने) यज्ञ में योग्य नामों को धारण किया(और)उच्च (देवजातिमें) उत्पन्न होकर (मर्त्य)शरीरों को छोड़ दिया ॥ २ ॥

इस मंत्रसे यह प्रतीत होता है कि मरुतों की पूजा आदिकाल में आर्य्यजाति में नहीं थी आर्य्यों के प्राचीन निवास स्थान अर्थात उत्तर मेरु के समीप गरमी के अधिक न पड़नेसे (देखो पृ० ३८) घोर आंधियों का भी अभाव था, जब ऋषि लोग आर्य्यावर्त में आकर बसे तब उनको ये नए देवता सरीखे प्रतीत हुए,परन्तु गर्मीके चार महीने के पश्चात शान्त होजाने से वे मरणधर्मी समझे गए, जब लगातार तीनवर्ष तक प्रत्येक चौमासेमें मरुतों का दर्शन होने लगा तब ऋषियों ने निश्चय किया कि यह भी ऋतके अनुगामी मरण रहित देवता हैं और उनको यज्ञ में भाग देने लगे (देखो अगले मंत्र की व्याख्या)।

अग्निर्देवता त्रिष्टुप्छन्दः ।।११।११।११।११।।

आरोदसीबृहतीवेविदानाः प्ररु-
द्रियाजभ्रिरेयज्ञियासः । विदन्मर्तो
नेमधिताचिकित्वा नग्निंपदेपरमे-
तस्थिवांसम् ॥ ४ ॥

आ	आ+	–
१ रोदसी०	द्यावापृथिव्यौ	द्यौ(और) पृथ्वीको
१ बृहती०	महत्यौ	महान को
१ वेविदानाः	आ + वेविदानाः, अत्यर्थज्ञापयन्तः	अत्यन्त ज्ञान कराते हुए
प्र	प्र+	–
रुद्रिया	रुद्रोऽग्निस्तदर्हाणि (स्तोत्राणि) (रुद्रस्याऽग्नित्वं तै०सं०१।५।१ उक्तम्)	अग्नि के योग्य-(स्तोत्रों) को

जभ्रिरे	प्र + जभ्रिरे,प्रजह्रिरे,अर्पितवन्तः (आ०को०)	अर्पण किया
यज्ञियासः	यज्ञार्हाः (मरुतः) (जसोऽसुगागमः)	पूजा के योग्य (मरुतों) ने
विदत्	लब्धवान् (अडभावः)	प्राप्त किया
२ मर्तः	मरण धर्मा	मरण धर्माने
३ नेमऽधिता	विभक्तेन(गणेन) (आ०को०)	विभक्त (गण) के द्वारा
चिकित्वान्	इच्छन् (आ०को०)	इच्छा करते हुए ने
अग्निम्	अग्निम्	अग्नि को
पदे	पदे	पद में
परमे	उत्कृष्टे	उच्च में
तस्थिऽवांसम्	स्थितवन्तम्	ठैरे हुए को

संस्कृतार्थः ।

महत्यौद्यावा पृथिव्यावत्यर्थं ज्ञापयन्तो यज्ञार्हाः (मरुतः) अग्नेर्योग्यानि (स्तोत्राणि) अर्पितवन्तः(तदाऽयम्) मरणधर्मा विभक्तेन (गणेन) इच्छन् (सन्) उत्तमे पदे स्थितवन्तमग्निं लब्धवान् ।४।

भावार्थः ।

महान द्यौ (और) पृथिवी का अत्यन्तज्ञान कराते हुए पूजा के योग्य (मरुतों) ने अग्नि के योग्य (स्तोत्रों) को अर्पण किया (तब) विभक्त (गण) द्वारा इच्छा करते हुए (इस) मरण धर्मा ने उत्तम स्थान में ठैरे हुए अग्नि को प्राप्त किया ॥ ४ ॥

(१) अत्यन्त ज्ञान कराते हुए अर्थात द्यावापृथिवी को अग्नि के स्तोत्रों से गुंजाते हुए जैसे उन के सायं सायं शब्द से मनुष्य भी जानते हैं ।

(२) मरुद्गण मरण धर्मा इसलिये थे कि ग्रीष्म और वर्षा के चार महीने रहते थे फिर शरद में नष्ट होजाते थे ॥

(३) मरुतों ने गणरूप में विभक्त होकर अग्नि को जानने की इच्छा की, और उस को आकाश के उत्तम पद अर्थात सूर्य रूप में जानकर अमर होगए ॥

अग्निर्देवता त्रिष्टुप्छन्दः ।११।११।११।११

संजानानाउपसीदन्नभिज्ञु

पत्नीवन्तोनमस्यंनमस्यन्। रिरि-
क्वांसस्तन्वःकृण्वतस्वाः सखास-
ख्युर्निमिषिरक्षमाणाः ।५।

समऽजाना ना:	एकचित्ताः सन्तः (आ०को०)	एक चित्त हुए २
उप	समीपे	पास में
सीदन्	निषेदुः	बैठे
१ अभिऽज्ञु	अभिगतजानु-यथास्यात्तथा	जानु आगे करके
१पत्नीऽवन्तः	सपत्नीकाःसन्तः	पत्नियों से युक्त हुए २
नमस्यम्	पूज्यम्	पूजने योग्य को
१ नमस्यन्०	पूजितवन्तः (पूजार्थेक्यच्,अड-भावः)	पूजन किया

२रिरिक्वांसः	रिक्तानि शोषितानीत्यर्थः (रिचिर् विरेचने)	सुकाए हुए
तन्वः	शरीराणि	शरीरों को
२ कृण्वत	अकुर्वन् (अडभावः)	किया
स्वाः	स्वकीयानि	अपनों को
२ सखा	सखायः (सुपामिति जसः सुः)	मित्र
२ सख्युः	सख्युः	मित्र की
२ निऽमिषि	दृष्टौ (भावेक्विप्)	दृष्टि में
रक्षमाणाः	रक्षन्तः (व्यत्ययेनात्मनेपदम्)	रक्षा करते हुए

संस्कृतार्थः ।

एकचित्ताःसन्तः (देवाअग्नि-) समीपेऽभि-गतजानु निषेदुः,पूज्यम् (च तम्) सपत्नीकाःसन्तो-ऽपूजयन्(पुनः)सखायः(ते)सख्युः (तस्य)दृष्टौ स्वकीयानि शरीराणि रक्षन्तः(सन्तः) शोषितान्यकुर्वन् ।५।

भाषार्थः ।

(देवता) एकचित्त होकर (अग्नि के) समीप जानुके वल वैठे (और) पूजनीय (उस) को पत्नियों सहित पूजा (फिर) मित्रों ने (उस) मित्र की दृष्टि में अपने शरीरों को रक्षा करते हुए सुकाया ॥ ५ ॥

(१) सारी जड़सृष्टि जो पुरुष और स्त्रीके भेदसे विभाग की हुई है मौन होकर परमात्मा को पूज रही है।

(२) जैसे मनुष्य मित्र के लिये अपने शरीर से कष्ट उठाना और उसको सुकाना आनन्द का हेतु मानते हैं इसी प्रकार देवता सब के मित्र परमात्मा को प्रसन्न करने के लिये मनुष्यों के हितार्थ अपने शरीरों को सुका रहे हैं, सूर्य्य प्रतिदिन दुबले हो रहे हैं प्रकाश भी छीज रहा है, चन्द्रमा अपना सर्वस्व त्याग कर अत्यंत शुष्क होगए हैं, समुद्र के जल सूक रहे हैं और एक दिन यह पृथिवी चंद्र की न्याईं निर्जल और उष्णतासे रहित होजायगी, कोई २ देव सदृश मनुष्य भी दूसरों की रक्षा के लिये अपने शरीरों को कष्ट में डाल कर सुकाते हैं।

अग्निर्देवता त्रिष्टुप् छन्दः ।११।११।११।११।

त्रिः सप्त यद्गुह्यानि त्वे इत् पदाविदन्निहिता यज्ञियासः। तेभी रक्ष-

न्तेअमृतंसजोषाः पशूञ्चस्थातॄ-

ञ्चरथंचपाहि ॥ ६ ॥

त्रिः	त्रिः+	–
सप्त	त्रिः+सप्त, एकविंशति संख्याकानि	इक्कीसों को
यत्	यानि (विभक्तेर्लुक्)	जिन को
गुह्यानि	गूढानि	गूढों को
त्वे०	त्वयि	तुझ में
इत्	एव	ही
पदा	पदानि (शेर्लोपः)	पदों को
अविदन्	अलभन्त	प्राप्त किया
निऽहिता	निहितानि (शेर्लोपः)	स्थापन किए हुओं को

यज्ञियासः	यज्ञार्हाः	पूजनीयों ने
तेभिः	तैः	उन से
रक्षन्ते	रक्षन्ति (व्यत्ययेनात्मनेपदम्)	रक्षा करते हैं
अमृतम्	अमृतम्	अमृत को
सऽजोषाः	सङ्गताः (भा० को०)	इकट्ठे हुए २
पशून्	पशून्	पशुओं को
च	(पूरणः)	–
स्थातॄन्	स्थावराणि	स्थावरों को
चरथम्	जङ्गमम्	जंगम को
च	च	और
पाहि	पाहि	रक्षा करो

संस्कृतार्थः ।

(हे अग्ने !) त्वय्येवनिहितानि यान्येकविंशति-

संख्याकानि गूढानि पदानि यज्ञार्हाः (देवाः) अलभन्त, सङ्गताः (ते) तैरमृतं रक्षन्ति (हेअग्ने! त्वम्) पशून्स्थावराणि जङ्गमम् (प्राणिजातम्) च पाहि।६।

भावार्थः।

(हेअग्नि) आपमें स्थापन किए हुए जिन इक्कीस गूढ़ पदों को देवताओं ने प्राप्त किया है, इकट्ठे हुए २ (वे) उन से अमृत की रक्षा करते हैं (हेअग्नि) आप पशुओंकी स्थावरोंकी और चलने वाले(प्राणियों) की रक्षा करें ॥ ६ ॥

अग्नि के २१आधियज्ञिक पद (पैडो) जिन से मनुष्य अमृतत्व पर चढ़ता है ये हैं ॥

७ पाकयज्ञ	७ हविर्यज्ञ	७ सोमयज्ञ
१ औपासनहोम	१ अग्न्याधान	१ अग्निष्टोम
२ वैश्वदेव	२ अग्निहोत्र	२ अत्यग्निष्टोम
३ पाक्षिकस्थालीपाक	३ दर्शपौर्णमास	३ उक्थ्य
४ श्रवणाकर्म	४ पिण्डपितृयज्ञ	४ षोडशी
५ आश्वयुजी	५ आग्रयण	५ वाजपेय
६ आग्रहायणी	६ चातुर्मास्य	६ अतिरात्र
७ अष्टका	७ पशुबन्ध	७ अप्तोर्याम

इसी प्रकार २१ आधिदैविक पैडो बाह्य सृष्टि के नियमों का अन्वेषण और २१ आध्यात्मिक पैडो अध्यात्मिक विद्या का अन्वेषण हो सकता है, इनसे देवता मनुष्यों के लिये अमृत की (अर्थात मनुष्यों को अमर बनाने के उपाय को) रक्षा करते हैं ॥

अग्निर्देवता त्रिष्टुप्छन्दः ।११।११।११।११

विद्वाँअग्नेवयुनानिच्चितीनां व्यानुषक्शुरुधोजीवसेधाः।अन्तर्विद्वाँअध्वनोदेवयाना नतन्द्रोदूतोअभवोहविर्वाट्।७।

विद्वान्	जानन्	जानता हुआ
अग्ने	हे अग्ने!	हे अग्नि
वयुनानि	व्यवहारान् (आ० को०)	व्यवहारों को
च्चितीनाम्	मनुष्याणाम्	मनुष्यों के
वि	वि+	–
आनुषक्	सततम्	निरन्तर
शुरुधः	अन्नानि (सा०मा०)	अन्नों को

जीवसे	जीवनाय	जीवन के लिये
धाः	।व+धाः,स्थापित वानसि (अडभावः)	तूनेस्थापनकियाहै
अन्तःविद्वान्	अन्तरे जानन्	भीतर से जानता हुआ
२ अध्वनः	मार्गान्	रस्तों को
२देवऽयानान्	देवैर्गन्तव्यान्	देवताओंसे गमन कियेजानेवालोंको
अतन्द्रः	आलस्य रहितः	आलस्यसे रहित
दूतः	दूतः	दूत
अभवः	अभवः	तू हुआ है
हविःऽवाट्	हविर्षांवोढा	हवियोंको पहुंचा-ने वाला

संस्कृतार्थः।

हेअग्ने ! मनुष्याणां व्यवहारान् जानन् (त्वम्) सततं जीवनायाऽन्नानि स्थापितवानसि, देवैर्गन्तव्यान्मार्गान् (च) अन्तरे जानन् (त्वम्) आलस्य रहितोहविषां वोढा दूतोऽभवः ॥ ७ ॥

भापार्थः ।

हेअग्नि ! मनुष्यों के व्यवहारों को जानते हुए आपने निरन्तर जीवन के लिये अन्नों को स्थापन किया है (और) देवताओं के गमन करने के रस्तों को भीतर से जानतेहुए आप आलस्य से रहित हुए २ हवि को पहुंचाने वाले दूत बने हैं ॥७॥

अग्निदेव मनुष्य और देवता दोनों पर उपकार करने वाले हैं वह मनुष्यों के व्यवहार जानते हुए उन के लिये अन्न उत्पन्न करते हैं (अन्न सूर्य रश्मि रूप अग्नि और रश्मियों से उत्पादित वर्षा द्वारा उत्पन्न होता है) और देवताओं के नियमों को जानते हुए उन को हवि पहुंचाते हैं,आधिदैविक पक्ष में पृथिवी,वायु,सूर्य वनस्पति जल सब देवताओं के जीवन के हेतु अग्नि (Heat)हैं आध्यात्मिक पक्ष में भी इन्द्रिय और मन सब की स्थिति के हेतु प्राणरूप में अग्नि ही हैं ॥

अग्निर्देवता त्रिष्टुप्छन्दः ।११।११।११।११,

स्वाध्यो॑ दि॒व आ स॒प्त य॒ह्वी रा॒यो दुरो॒ व्यृ॑त॒ज्ञा अ॑जानन्। वि॒दद्गव्यं॑ स॒रमा॑ दृ॒ळ्हमू॒र्वं येना॒ नु कं॒ मानु॑षी॒ भोज॑ते॒ विट् ॥ ८ ॥

सुऽआध्यः	शोभनध्यानयुक्ताः	शुभचिन्तनसेयुक्त
दिवः	द्युलोकात्	द्युलोक से
आ	आगच्छन्तीः	आने वालियों को
१ सप्त	सप्त	सात को
१ यह्वीः	नदीः (आ० को०	नदीयों को
१ रायः	धनस्य	धन के
दुरः	द्वाराणि	द्वारों को
वि	वि+	–
ऋतऽज्ञाः	ऋतस्य ज्ञातारः	सृष्टि नियम के जाननेवालों ने
अजानन्	वि+अजानन्, विज्ञातवन्तः	भली प्रकार जाना
विदत्	लब्धवती (मडमायः)	ढूंढ लिया
२ गव्यम्	गोसम्बन्धिनम्	गो संबंधी को
सरमा	सरमा	सरमाने

२ दृळ्हम्	दृढम्	दृढ को
ऊर्वम्	गोष्ठम् (आ० को०)	गोष्ठ को
येन	येन	जिस से
नु	खलु (आ०को०	सच मुच
कम्	(पूरणः)	–
मानुषी	मानुषी	मनुष्यों की
भोजते	पुष्यति	पलती है
विट्	प्रजा	प्रजा

संस्कृतार्थः।

(हे अग्ने!) शोभनध्यानयुक्ता ऋतस्यज्ञातारः (पूर्वऋषयः) द्युलोकाद्यदागच्छन्तीःसप्तनदीर्धनस्यद्वार भूता विज्ञातवन्तः,सरमा(च) गो सम्बन्धिनंदृढंगोष्ठं लब्धवती येन खलु मानुषी प्रजा पुष्यति॥ ८॥

भावार्थः।

(हे अग्नि) सुन्दर ध्यान से युक्त सृष्टि नियम के जानने वाले (पूर्व ऋषियों ने)द्युलोक से आने वाली

सात नदियों को धन के द्वाररूप समझा (और) सरमाने गौओं के दृढ गोष्ठ को ढूंढ लिया जिससे सचमुच मनुष्यों की प्रजा पलती है ॥ ८ ॥

(१) यहां पर सात नदियां सूर्य्य के प्रकाश की धारा हैं, जो भिन्न २ सात रंग वाली होने पर भी पृथिवी पर मिश्रित होकर श्वेत धारा रूप से गिरती हैं। इन को पूर्व ऋषियों ने धन के द्वार जाना था। जैसे आजकल भी विद्वान् जानते हैं।

(२) गौओं का दृढ गोष्ठ तम है (तमआसीत् तमसागूढमग्रे) जो सौर ब्रह्माण्डों के बाहर अब भी राज्य करता है, और सूर्य्य की दृष्टि के सामने न होने पर पृथिवी को भी आच्छादन कर लेता है, इस तम रूपी गोष्ठ से किरण रूप गौओं को खोजकर सरमा ने इन्द्र को निवेदन किया था (देखो पृ० १५९३) इन्हीं किरणों से प्रजा का पालन होता है। यदि देवता मनुष्यों के हित के लिये उद्योग न करते तो यहां पर तम, शीत और मृत्यु का राज्य होता। पूर्व ऋषियों का भी आर्य जाति पर परम उपकार है जो उसको ऐसे देश में लाकर बसाया जहां प्रकाश की कमी नहीं है क्योंकि यह जानते थे कि यही धन है।

अग्निर्देवता त्रिष्टुप्छन्दः ।११।११।११।११

आयेविश्वास्वपत्यानितस्थुः

कृण्वानासोअमृतत्वायगातुम्। म-

क्रामह्ङ्गिःपृथिवीवितस्थे मातापुत्रै-

रदितिर्धायसेवे: । ९ ।

आ	आ+	–
ये	ये	जिन्हों ने
विश्वा	विश्वानि (शेर्लोपः)	सबको
सुऽअप्-त्यानि	शोभनानि अपतनहेतुभूतानि (कर्म्माणि)	उत्तम कर्म्मों को
तस्थुः	आ+तस्थुः,आचरितवन्तः (आ० को०)	आचरण किया
कृण्वानासः	कुर्वाणाः (व्यत्ययेनात्मनेपदम्, जसोऽसुगागमः)	करते हुए
अमृतऽत्वाय	अमरणत्वसिद्धये	अमरहोने के लिये

गातुम्	मार्गम्	रस्ते को
मह्ना	महिम्ना (वर्णलोपश्छान्दसः)	महिमा से
महत्ऽभिः	महानुभावैः	महानुभावोंके द्वारा
पृथिवी	पृथिवी	पृथिवी
वि	वि +	–
तस्थे	वि+तस्थे, स्थितवती	ठैरी है
माता	माता	माता
पुत्रैः	पुत्रैः	पुत्रों के साथ
अदितिः	अदितिः	अदिति
धायसे	धारणाय (दधातेर्भावेऽसुनि युगागमः)	धारणकरने के लिये
२ वेः०	पक्षिणः	पक्षि के

संस्कृतार्थः ।

(हे अग्ने!) अमृतत्वाय मार्गं कुर्वाणा ये सर्वाणि शोभनानि कर्म्माण्याचरितवन्तः (तैरेव) महानुभावैः

(इयम्) पृथिवी महिम्ना स्थितवती (यथा)पक्षिणो-धारणाय माताऽदितिः पुत्रैः (सह स्थितवती) ।९।

भाषार्थः ।

(हे अग्नि) अमर होने के मार्ग को बनाते हुए जिन्हों ने सम्पूर्ण उत्तम कर्म्मों का आचरण किया-है (उन्हीं) महानुभावों के द्वारा यह पृथिवी महिमा पूर्वक ठैरी हुई है,(जैसे) पक्षी के धारण करनेके लिये पुत्रों के साथ माता अदिति (ठैरी हुई है) ॥ ९ ॥

(१) हमारे पूर्वज ऋषि आने वाली प्रजा के अमर होने का रस्ता बनाने के लिये निष्काम होकर शुभ कर्म करते थे, इसी लिये यह पृथिवी ठहरी हुई है नहीं तो मर्य्यादा न रहने से मनुष्य स्वार्थ वश होकर एक दूसरे को मार,देते, और यह न जानते कि एक दूसरे की सहायता करना ही अमर होने का मार्ग है।

(२) पक्षी से यहां सूर्य्य का तात्पर्य है। जिस की रक्षा करने के लिये अदिति माता अपने दूसरे ब्रह्माण्ड रूपी पुत्रों के साथ ठैरी हुई है यदि अदिति धारणशक्ति को शिथिल करदे तो न जाने सूर्य्य भगवान परिवार सहित कहां टकरा कर नष्ट होजावें।

अग्निर्देवता त्रिष्टुप्छन्दः ।११।११।११।११।

अधिश्रियंनिदधुश्चारुमस्मिन्

दिवोयदक्षीअमृताअकृण्वन् । अ-

धक्षरन्तिसिन्धवोनसृष्टाः प्रनीची

रग्नेअरुषीरजानन् । १० ।

अधि	अधि +	–
श्रियम्	श्रियम्	शोभा को
नि	नि +	–
दधुः	अधि+नि+दधुः, स्थापितवन्तः	स्थापन किया
चारुम्	शोभनाम्	सुन्दर को
अस्मिन्	अस्मिन्	इस में
दिवः	द्युलोकस्य	द्युलोक की
यत्	यत्	जो
१ अक्षी०	चक्षुषी	दो नेत्रों को
अमृताः	मरणरहिताः	मरण रहितों ने

अक्रण्वन्	कृतवन्तः	किया
अध	अथ, अनन्तरम् (थस्य धत्वं छान्दसम्)	इस के अनन्तर
क्षरन्ति	क्षरन्ति	बहती हैं
सिन्धवः	नद्यः	नदियां
न	इव	जैसे
सृष्टाः	विसृष्टाः	छोड़ी हुईं
प्र	प्र+	–
नीचीः	नीचैरागच्छन्तीः	नीचे आती हुइयें को
अग्ने	हे अग्ने !	हे अग्नि
२ अरुषीः	उषसः (निघं० १।८)	उषाओं को
अजानन्	प्र+अजानन् प्रज्ञातवन्तः	भली प्रकार जाना

संस्कृतार्थः ।

अमृता अस्मिन् (लोके) शोभनांश्रियं स्थापितवन्तः

यद् द्युलोकस्य चक्षुषीकृतवन्तः हे अग्ने! (तद्·)अनन्तरम् (एव मनुष्याः)नीचैरागच्छन्तीरुषसः प्रज्ञानवन्तः (याः) विसृष्टा नद्य इव (द्युलोकात्) क्षरन्ति ॥ १० ॥

भावार्थः ।

देवताओं ने इस (लोक) में सुन्दर शोभा को स्थापन किया जो द्युलोक के दो नेत्रों को बनाया हे अग्नि(इस के)अनन्तर (ही मनुष्यों ने) नीचे आती हुई उषाओं को जाना जो छोडी हुई नदियों की न्याईं (आकाश से) गिरती हैं ॥ १० ॥

(१) द्युलोक के दो नेत्र सूर्य्य और चन्द्रमा हैं जो पृथिवी की शोभा हैं ।

(२) नीचे आती हुई उषाएं अर्थात सूर्य की प्रथम आने वाली किरणें जो छोड़ी हुई नदियों की न्याईं आकाशसे गिरती हैं।

इति द्विसप्ततितमं सूक्तम् ।

ऋ० मं० १ सू० ७३।

अग्निर्देवता पराशर ऋषिः

विनियोग—७२ सूक्त की न्याईं है।

इस सूक्त में अग्नि को घर में स्थापन करके उस को उपासना करने की आवश्यकता दिखलाई है, उस अग्नि का रूप केवल यही नहीं है जो कुण्ड में दीखता है परन्तु वह है जो सारे भुवन के साथ छाया की न्याईं रहता है और पृथिवी अन्तरिक्ष और द्यौ को भरे हुए है (देखो मंत्र० ८)। अग्निदेव पिता से पाए हुए धन की न्याईं अन्न आदि से पालन करने वाले, विद्वान के उपदेश की न्याईं अच्छे रस्ते चलाने वाले, सुखी अतिथि की न्याईं प्रीति करने वाले और ऋत्विज की न्याईं यजमान के घर की वृद्धि करने वाले हैं। वह सविता की न्याईं सत्य के चिन्तक और सब वीर्य सम्बन्धी कर्मों के रक्षक हैं, वह रूप की न्याईं सत्य, और आत्मा की न्याईं सुख रूप हैं इसलिये उन को घर में अवश्य स्थापन करना चाहिये। वह हितकारी मित्रों स घिरे हुए राजा की न्याईं पृथिवी पर निवास करते हैं, वह उपासक को घर में उपस्थित वीर पुत्रों की न्याईं सहायता देने वाले और पति से प्रीति की हुई निन्दा रहित नारी की न्याईं सुख के देने वाले हैं—जिस प्रकार थन भरी गौओं की न्याईं दूध देने की अत्यन्त कामना करने वाले बादल और पहाड़ के बीच से निकल कर बहने वाली नदियों ने सदा मनुष्यों के उपकार के लिये इच्छा की है इसी प्रकार देवताओं ने मनुष्यों के कल्याण की बुद्धि से अग्नि में यज्ञ को स्थापन किया है और दिन और रात्रि को अलग करके रात्रि की कालस में उषा की लाली को मिलाया है, ऐसे अग्निदेव हम को और हमारे धनवानों को धन के लिये प्रेरण करें। उन की रक्षा से युक्त होकर हम युद्ध में शत्रुओं को हनन करें हमारे स्तोता सौ वर्ष की आयु को भोगें और हम यज्ञ को धारण करते हुए अग्नि के धन से भरे हुए रथ को रोकने में समर्थ होवें।

अग्निर्देवता त्रिष्टुप्छन्दः ।११।११।११।११

रयिर्नयःपितृवित्तोवयोधाः सुप्रणीतिश्चिकितुषोनशासुः। स्योनशीरतिथिर्नप्रीणानो होतेवसद्मविधतोवितारीत्॥ १ ॥

रयिः	धनम्	धन
न	इव	की न्याईं
यः	यः	जो
पितृऽवित्तः	पितुःसकाशाल्लब्धम् (विद्लृलाभे)	पितासे पाया हुआ,
वयःऽधाः	अन्नस्यदाता (आ०को०)	अन्नके देने वाला
सुऽप्रनीतिः	सुष्ठुप्रणेता	अच्छेरस्ते ले जाने वाला
चिकितुषः	विदुषः	विद्वान के

न	इव	की न्याईं
शासुः	शासनम् (बाहुलकादुःप्रत्ययः)	शासन
स्योनऽशीः	सुखेनशयानः (स्योनमितिसुखनाम निघं॰ ३।६)	सुख के साथ शयन कराने वाला
अतिथिः	अतिथिः	अतिथि
न	इव	की न्याईं
प्रीणानः	प्रीतिंकुर्वाणः	प्रीति करने वाला
होताऽइव	होतेव	होता की न्याईं
सद्म	गृहम्	घर को
विधतः	कुर्वतः (यजमानस्य) (विधविधाने)	यजमान के
वि	वि+	—
तारीत्	वि+तारीत्, प्रवर्धयति (लडर्थेलुङ्)	बढाता है

संस्कृतार्थः ।

यः पितुः सकाशाल्लब्ध धनमिवाऽन्नस्यदाता विदुषः शासनमिव सुष्ठुप्रणेता सुखेन शयानोऽतिथिरिव प्रीतिकर्वाणः(चाऽस्ति, सोऽग्निः) होतेव यजमानस्य गृहं प्रवर्धयति ॥ १ ॥

भाषार्थः ।

जो पिता से पाए हुए धन की न्याई अन्न के देने वाले, विद्वान के शासन की न्याई अच्छे रस्ते लेजाने वाले (और)सुख से शयन करने वाले अतिथि की न्याई प्रीति करने वाले (हैं वह अग्नि) होता की न्याई यजमान के घर को बढ़ाते हैं ॥ १ ॥

(१) जैसे होता ऋत्विज यजमान के यज्ञ में देवताओं को बुला कर उसके घर को बढ़ाता है अर्थात ऐश्वर्य्य की वृद्धि करता है इसी प्रकार अग्नि यजमान के घर को बढ़ाते हैं ।

अग्निर्देवता त्रिष्टुपूछन्दः ।११।११।११।११

देवोनयःसवितासत्यमन्मा क्रत्वानिपातिवृजनानिविश्वा। पुरुप्रशस्तोअमतिर्नसत्य आत्मेवशेवोदिधिषाय्योभूत् ॥ २ ॥

देवः	देवः	देव
१ न	इव	की न्याईं
यः	यः	जो
१ सविता	सविता	सविता
सत्यऽमन्मा	सत्य चिन्तकः (मनिन् प्रत्ययः)	सत्य को चिंतन करनेवाला
क्रत्वा	बुद्धया (नामावाऽभावः)	बुद्धि से
निऽपाति	नितरां रक्षति	अत्यन्त रक्षा करता है
वृजनानि	पौंस्यानि (निघं०२९)	वीर्यसंबंधी(कर्म को
विश्वा	सर्वाणि	सब को
पुरुऽप्रशस्तः	बहुभिःप्रशस्तैः	बहुतों से प्रशंस किया हुआ
२ अमतिः	रूपम् (निघं० ३७)	रूप
न	इव	की न्याईं

सत्यः	सत्यः	सत्य
आत्माऽइव	आत्मेव	आत्मा की न्याईं
१ शेवः	सुख रूपः (शेवमितिसुखनाम निघं० ३।६)	सुख रूप
४दिधिषाय्यः	स्थापनीयः (दृधातेःसाय्यप्रत्ययः)	स्थापनकरने योग्य
भूत्	भवति (लडर्थेलुङडभावः)	है

संस्कृतार्थः ।

यः सवितृदेवइवसत्यचिन्तकः (सन्) बुद्ध्या सर्वाणि पौंस्यानि नितरां रक्षति(सः)बहुभिः प्रशस्तः रूपमिव सत्यः, आत्मेवसुख रूपः (चाऽग्निसंनुष्यैः) स्थापनीयो भवति ॥ २ ॥

भावार्थः ।

सवितादेव की न्याईं सत्यको चिन्तन करनेवाले जो बुद्धिद्वारा सम्पूर्ण वीर्य संबंधी कर्मों की अत्यन्त रक्षा करते हैं, बहुतों से प्रशंसा किये हुए रूप की न्याईं सत्य, (और) आत्मा की न्याईं सुख रूप (वह अग्नि मनुष्यों से) स्थापन करने योग्य हैं ॥ २॥

(१) अग्नि,सविता अर्थात परमात्मा की प्रेरक शक्ति की न्याईं सत्य चिन्तक हैं, कभी असत्य को मन में नहीं आने देते, इसी लिये वह संपूर्ण यज्ञ के कर्मों की रक्षा करने में समर्थ हैं यदि मनुष्य भी परमात्मा की प्रेरणा मांग कर केवल सत्य का चिंतक होजावे तो उस के लिये कोई भी कठिन कर्म दुष्कर नहीं है।

(२) रूप की न्याईं सत्य अर्थात जैसे जगत में मनुष्य, पशु, वृक्ष,आदि अनेक रूप प्रत्यक्ष में सत्य हैं उन के सत्य होने में किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं, ऐसे ही अग्निदेव भी सत्य हैं।

(३) आत्मा सुख रूप इस लिये है कि जो सुख मनुष्य को होता है वह आत्मा से ही होता है, बाह्य पदार्थ अर्थात धन आदि सुख के निमित्त मात्र हैं, अग्नि भी आत्मा की न्याईं सुख रूप हैं धन आदि की न्याईं नहीं।

(४) ऐसे गुणा से युक्त अग्नि को स्थापन करके अवश्य ही अपना इष्ट देव बनाना चाहिये ॥

अग्निर्देवता त्रिष्टुप्छन्दः ।११।११।११।११

दे॒वो न यः पृ॑थि॒वीं वि॒श्वधा॑या उप॒-
क्षेति॑ हि॒तमि॑त्रो॒ न राजा॑। पु॒रः॒सदः॑-
शर्म॒सदो॒ न वी॒रा अ॑नव॒द्या पति॑जुष्टे॒-
व॒ नारी॑ ॥ ३ ॥

देवः	देवः	देव
न	इव	की न्याईं
यः	यः	जो
पृथिवीम्	पृथिव्याम् (सप्तम्यर्थे द्वितीया)	पृथिवी में
विश्वऽधायाः	सर्वस्य धारकः (डुधातेरसुन्प्रत्ययो-युगागमश्च)	सब के धारण करने वाला
उपऽक्षेति	निवसति	निवास करता है
हितऽमित्रः	हितानिमित्राणि-यस्य सः	हितकारी मित्रों वाला
न	इव	जैसे
राजा	राजा	राजा
पुरःऽसदः	पुरस्तादुपविशन्तः	आगे बैठते हुए
शर्म्मऽसदः	शर्म्मणि गृहे वर्तमानाः (शर्म्मेति गृहनाम-	घर में रहने वाले

न	इव	जैसे
वीराः	पुत्राः (सा० मा०)	पुत्र
१ अनवद्या	अनिन्दिता	निन्दा से रहित
१ पतिजुष्टा ऽइव	पतिना प्रीतेव	पति से प्रीति की हुई की न्याईं
१ नारी	नारी	स्त्री

संस्कृतार्थः ।

(सूर्य्य) देव इव सर्वस्य धारको यः (अग्निः) हित मित्रो राजेव पृथिव्यां निवसति (सः)पुरस्तादुपविशन्तो गृहे वर्त्तमानाः पुत्राइव पतिना प्रीता अनिन्दिता नारीव (चाऽस्ति) ॥ ३ ॥

भावार्थः

(सूर्य्य) देव की न्याईं सब को धारण करनेवाले जो (अग्नि)हितकारी मित्रों से युक्त राजा की न्याईं पृथिवी में निवास करते हैं (वह) आगे बैठते हुए घर में रहनेवाले पुत्रों की न्याईं (और) पति से प्रीति की हुई निन्दा रहित स्त्री की न्याईं हैं ॥ ३ ॥

(१) जैसे राजा को राज्य का हित चाहने वाले मित्र चारों ओर घेरे रहते हैं तभी उस का राज्य निर्विघ्न चलता है, इसी प्रकार अग्नि इस पृथिवी पर हितकारी देवाताओं से घिरे हुए राजा बन कर निवास करते हैं।

(२) जैसे अपने घर में रहने वाले वीर पुत्र पिता के सामने बैठते हैं तब उस को अनेक प्रकार की सहायता मिलती है इसी प्रकार अग्नि के स्थापन करने से प्रत्येक काम में दैवी सहायता मिलती है।

३) जैसे पति से प्रीति की हुई निन्दा रहित स्त्री पति को सुख देती है इसी प्रकार स्थापित किये हुए अग्निदेव मनुष्य को सुख देते हैं॥

अग्निर्देवता त्रिष्टुप्छन्दः ।११।११।११।११।

तं त्वा नरो दम आ नित्यमिद्धमग्ने सचन्त क्षितिषु ध्रुवासु। अधि द्युम्नं नि दधुर्भूर्यस्मिन् भवा विश्वायुर्धरुणो रयीणाम्॥४॥

तम्	तम्	उस को
त्वा	त्वाम्	तुझ को
नरः	मनुष्याः	मनुष्य
दमे	दमे+आ,गृहे	घर में
आ	आ+	–
नित्यम्	नित्यम्	सदा
इद्धम्	प्रदीप्तम्	प्रदीप्त को
अग्ने	हे अग्ने !	हे अग्नि
सचन्त	सेवन्ते (लडर्थेलङ्यडभावः)	सेवा करते हैं
क्षितिषु	क्षितिषु +	–
ध्रुवासु	ध्रुवासु+क्षितिषु निरुपद्रवेषुनगरेषु (सा०भा०)	उपद्रव रहित नगरों में
अधि	अधि+	–

द्युम्नम्	तेजः	तेज को
नि	नि+	–
द॒धुः	अधि+नि+दधुः स्थापितवन्तः	स्थापन किया है
भूरि	प्रभूतम्	बहुत को
अस्मिन्	अस्मिन्	इस में
भव	भव	तू हो
विश्वऽआयुः	सर्वस्यजीवनरूपः	सबकाजीवनरूप
धरुणः	धारकः	धारण करनेवाला
रयीणाम्	धनानाम्	धनों के

संस्कृतार्थः।

हे अग्ने! मनुष्या निरुपद्रवेषु नगरेषु गृहे दीप्तं तं त्वां नित्यं सेवन्ते, अस्मिन् (त्वयिदेवाः) प्रभूतं तेजः स्थापितवन्तः (अतः) सर्वस्य जीवन रूपः (त्वमस्मभ्यम्) धनानां धारको भव ॥ ४ ॥

भावार्थः ।

हेअग्नि! मनुष्य उपद्रव रहित नगरों में घर में प्रदीप्त उस आपकी नित्य सेवा करते हैं इस (आप) में (देवताओंने) बहुत तेज को स्थापन किया (इसलिये) सब के जीवन रूप आप (हमारे लिये) धनों के धारण करने वाले होवें ॥ ४ ॥

अग्निर्देवता त्रिष्टुप्छन्दः ।११।११।११।११।

विपृक्षोअग्नेमघवानोअश्यु विसू-
रयोददतोविश्वमायुः । सनेमवाजं-
समिथेष्वर्यो भागंदेवेषुश्रवसेद-
धानाः ॥ ५ ॥

वि	वि +	–
पृक्षः	अन्नम् (निघं०२।१२ सुपामिति द्वितीयायाःसुः	अन्न को
अग्ने	हे अग्ने !	हे अग्नि

मघऽवानः	धनवन्तः (मघमिति धन नाम॰ निघ०२।१०)	धनवान
व्यश्युः	वि + अश्युः, भुञ्जताम् (व्यत्ययेनपरस्मैपदम् विकरणस्य लुक्च)	भोगें
वि	वि + (अश्युः) भुञ्जताम्	भोगें
सूरयः	स्तोतारः (निघं० ३।१६)	स्तोता
ददतः	दातारः	देने वाले
विश्वम्	सर्वम्	सम्पूर्ण
आयुः	आयुः	आयुको
सनेम	सम्भजेमहि	हम भोगें
वाजम्	अन्नम्	अन्न को
समऽइथेषु	संग्रामेषु (निघ० २।१७)	युद्धोंमें

अर्य:	अरेः (गुणाभावेयणादेशः)	शत्रु के
भागम्	(हविः–)भागम्	(हवि के) भाग को
देवेषु	देवेषु	देवताओं में
श्रवसे	यशसे	यश के लिये
दधानाः	स्थापयन्तः	स्थापनकरतेहुए

संस्कृतार्थः ।

हे अग्ने ! (अस्माकम्) धनवन्तोऽन्नंभुञ्जताम् (हविषः) दातारः स्तोतारः (च) सर्वमायुर्भुञ्जताम् यशसे देवेषु (हविषः) भागंस्थापयन्तः (वयम्) संग्रामेषु शत्रोरन्नं सम्भजेमहि ॥ ५ ॥

भाषार्थः ।

हे अग्नि (हमारे) धनवान अन्नको भोगें (हवि के) देने वाले (और) स्तोता सम्पूर्ण आयु को भोगें (और) हम यशके लिये देवताओं में (हविके) भाग को स्थापन करते हुए युद्धों में शत्रु के अन्न को भोगें ॥ ५ ॥

(१) देश के धनवान उस की उन्नति और रक्षा के हेतु हैं-इस लिये वे कभी निर्धन न हों यहां पर अन्न सब धनों का उपलक्षण है।

(२) जो स्तुति शील हैं और जो देवभक्त हैं वे पूर्ण आयु को प्राप्त करें, जिस से सदा हमारी जाति में धर्म की स्थिति रहे।

(३) जो निन्दा शील, स्वार्थी अराति (न देने वाले) हमारे शत्रु हैं अर्थात हम से द्वेष रखते हैं उनके धन को देवताओं में भाग देते हुए हम भोगें।

अग्निर्देवता त्रिष्टुप्छन्दः ११।११।११।११

ऋतस्यहिधेनवोवावशाना स्मदू-
ध्नीःपीपयन्तद्युभक्ताः। परावतः-
सुमतिंभिक्षमाणा विसिन्धवःसम-
यासस्रुरद्रिम् ॥ ६ ॥

१ ऋतस्य	ऋतस्य	ऋत की
हि	खलु	सचमुच
१ धेनवः	धेनवः	गौएं
वावशानाः	पुनःपुनःकामयमानाः (यङन्ताच्छानच्)	बार२कामना करती हुईं

स्मत्ऽऊध्नीः	स्मत्नित्यमूधांसि स्तनायासांताः (सा०भा०)	सदा थनों वाली
पीपयन्त	स्फीतवत्यः (अडभावः)	भरी हैं
द्युऽभक्ताः	दिवाभक्ताः	द्यौ से बांटी हुई
पराऽवतः	दूरदेशात्	दूरदेशसे
२ सुऽमतिम्	कल्याणात्मिकां बुद्धिम्	कल्याण वाली बुद्धि को
२ भिक्षमाणाः	याचमानाः	मांगती हुई
वि	वि+	–
सिन्धवः	नद्यः (निघं०)	नदियां
समया	समया	–
सस्रुः	वि+सस्रुःप्रावहन्	बही हैं
अद्रिम्	अद्रिम् + समया पर्वतमध्यात्	पर्वत के बीच में से

संस्कृतार्थः ।

नित्यंस्तनैर्युक्ताः पुनःपुनः कामयमाना दिवा भक्ताऋतस्य खलुधेनवः (पयसा) स्फीतवत्यः, कल्याणात्मिकां बुद्धिं याचमाना नद्यः (च) पर्वतमध्यात् प्रावहन् ॥ ६ ॥

भावार्थः ।

नित्य थनों वालीं बार बार कामना करती हुईंद्यौ से बांटीहुई सचमुच ऋत की गौएं (दूधसे) भरी हैं (और) कल्याण की बुद्धि मांगती हुईं नदियां पर्वत के बीच से बह निकली हैं ।६।

(१) ऋत की गौए बादल हैं जिन के थन जल रूपी दूध से मोटे हुए २ हैं ।

(२) नदियां दूसरों के कल्याण की इच्छा करती हुई पर्वतों के बीच से बह निकली हैं इस में कुछ उनका अपना प्रयोजन नहीं सिद्ध होता,मनुष्य भी नदियों की न्याईं कल्याण वाली बुद्धि के लिये प्रार्थना करने से ही देवसदृश होसकता है ।

अग्निर्देवता त्रिष्टुप्छन्दः ।।१।१।१।१।१।१।१।

त्वे अ॒ग्ने सु॑म॒तिं भिक्ष॑माणा दि॒वि-

श्र॑वो दधिरे य॒ज्ञिया॑सः । नक्ता॑ च च॒-

क्रृषसाविरूपे क्रृष्णांचवर्णमरुणां-
चसन्धुः ॥ ७ ॥

त्वे०	त्वाय (सुपामितिसप्तम्याः शेभादेशः)	तुझ में
अग्ने	हे अग्ने !	हेअग्नि
सऽमतिम्	कल्याणात्मिकां बुद्धिम्	कल्याणकी बुद्धि को
भिक्षमाणाः	याचमानाः	मांगते हुए
दिवि	द्योतमाने	दीप्तिमान में
श्रवः	यशः	यश को
१ दधिरे	स्थापितवन्तः	स्थापन किया है
१ यज्ञियासः	यज्ञार्हाः(देवाः)	पूजनीय (देवताओं)ने
नक्ता	रात्रिम् (द्वितीयायाडादेशः)	रात्रिको

च	च	और
चक्रुः	चक्रुः	वनाया
उषसा	उषसम् (द्वितीयायाराऽत्वम्)	उषा को
विऽरूपे०	भिन्नरूपे	भिन्नरूपवालियों को
कृष्णाम्	कृष्णम्	कालेको
च	च	और
वर्णम्	वर्णम्	रंग को
अरुणम्	रक्तम्	लाल को
च	च	और
सम्	सम्+	—
धुः०	सम्+धुः, एकत्रकृतवन्तः	इकट्ठा किया है

संस्कृतार्थः।

हेअग्ने ! कल्याणात्सिकां वुद्धियाचमाना यज्ञार्हाः

(देवाः) द्योतमाने त्वयि यशः स्थापितवन्तः,रात्र्युषसौ (च)विरूपेकृतवन्तःकृष्णंरक्तञ्चवर्णमेकत्रकृतवन्तः।७।

भावार्थ।

हे अग्नि कल्याण की बुद्धि को मांगते हुए पूजनीय (देवताओं)ने दीप्तिमानआपमें यश को स्थापन किया है रात्रि(और)उषाको भिन्नरूपवालेबनाया है (और) काले (और)लाल रंग को इकट्ठा किया है।७।

(१) केवल नदियां ही नहीं किन्तु सब देवता प्राणियों के कल्याण की बुद्धि को मांगते हैं इस लिये उन्हों ने मनुष्यों में रहने वाले देवताअग्नि को यशस्वी बनाया जिससे मनुष्यों का पूर्ण रूप से उपकार हो, दिन और रात्रि को भिन्न किया जिससे प्राणी दिन में काम करके रात्रि में विश्राम कर सकें।

(२) रात्रिके काले रंग और उषाके लाल रंग को एकत्र किया॥

आग्नदेवता निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः १०।११।११।११

यान्रायेमर्तान्त्सुषूदोअग्ने तेस्याममघवानोवयंच। छायेवविश्वंभुवनंसिसक्ष्या ऽऽपप्रिवान्रोदसीअन्तरिक्षम्॥ ८॥

यान्	यान्	जिन को
राये	धनार्थम्	धन के लिये
मर्तान्	मनुष्यान्	मनुष्यों को
सुसूदः	प्रेरयसि (पुदप्रेरणे लेटयडागमः, शपः श्लुश्छान्दसः)	प्रेरण करते हो
अग्ने	हे अग्ने!	हे अग्नि
ते	ते	वे
स्याम	स्याम	होवें
मघऽवानः	धनिनः	धनी
वयम्	वयम्	हम
च	च	और
छायाऽइव	छायेव	छाया की न्याई
विश्वम्	सर्वम्	सम्पूर्ण को

भुवनम्	भुवनम्	भुवन को
सिसक्षि	समवैषि (पचसमवायेशपःश्लुश्छान्दसः)	तू साथ२ रहता है
आपप्रिवान्	आपूरितवान्	चारों ओर से पूर्ण किया है
रोदसी०	द्यावापृथिव्यौ	द्यौ (और) पृथिवी को
अन्तरिक्षम्	अन्तरिक्षम्	अन्तरिक्ष को

संस्कृतार्थः।

हे अग्ने! (त्वम्) यान् मनुष्यान् धनार्थं प्रेरयसि ते वयं स्याम (अस्माकम्) धनिनः (च स्युः) (त्वम्) सर्वं भुवनं छायेव समवैषि द्यावापृथिव्यावन्तरिक्षम् (च त्वमेव) आपूरितवान् (असि) ॥ ८ ॥

भाषार्थः।

हे अग्नि आप जिन मनुष्यों को धन के लिये प्रेरणा करते हो वे हम हों (और) हमारे धनिक (होवें) आप छाया की न्याईं सारे भुवन के साथ२ रहते हो (और आपने) द्यौ पृथिवी (और) अन्तरिक्ष को चारों ओर से पूर्ण किया हुआ है॥ ८॥

(१) अग्निदेव हमको और हमारे देश के धनियों को धन के लिये प्रेरण करें, जिस से हमारे शत्रु दबे रहें।

(२) यदि अग्निदेव सारे संसार के साथ सदैव छाया की न्याईं न रहें तो इस का तुरन्त ही अन्त हो जावे॥

अग्निर्देवता त्रिष्टुप्छन्दः ।११।११।११।११।

अर्वद्भिरग्ने अर्वतो नृभिर्नॄन् वीरै-
र्वीरान्वनुयामा त्वोताः। ईशानासः
पितृवित्तस्य रायो विसूरयः शतहि-
मानो अश्युः ॥९॥

अर्वत्ऽभिः	अश्वैः	घोड़ों से
अग्ने	हे अग्ने !	हे अग्नि
अर्वतः	अश्वान्	घोड़ों को
नृऽभिः	नरैः	नरों से
नॄन्	नरान्	नरों को

वीरैः	वीरैः	वीरों से
वीरान्	वीरान्	वीरों को
वनुयाम	निराकरवाम (वनुष्यतिर्व्युदासे निघं०४।२)	हम हटावें
त्वाऽऊताः	त्वयारक्षिताः	तुझसेरक्षाकियेहुए
ईशानासः	स्वामिनः (सन्तः) (असुगागमः)	स्वामी हुए २
पितऽवित्तस्य	पितुःसकाशाल्लब्धस्य	पितासेपाएहुएके
रायः	धनस्य	धन के
वि	वि+	–
सूरयः	स्तोतारः (निघं३।१६)	स्तोता
शतऽहिमाः	शतसँवत्सरान्	सौ वर्ष पर्य्यन्त
नः	अस्मदीयाः	हमारे
अश्युः	वि+अश्युः,भुञ्जताम्	भोगें

संस्कृतार्थः ।

हे अग्ने ! त्वया रक्षिता वयं पितृसकाशाल्लब्धस्य धनस्यस्वामिनः(सन्तोनिज-)अश्वैः(शत्रूणाम्)अश्वान् नरैर्नरान् वीरैर्वीरान् निराकरवाम, अस्मदीयाः स्तोतारः(च) शत सँवत्सरात्मकम्(आयुः) भुञ्जताम्॥९॥

भावार्थः ।

हे अग्नि आप से रक्षा किये हुए हम पिता से पाए हुए धन के स्वामी (हुए २) (अपने) घोड़ों से (शत्रुओंके) घोड़ों को नरों से नरोंको (और) वीरों से वीरों को हटावें (और) हमारे स्तोता सौ वर्ष की (आयु) को भोगें ॥ ९ ॥

(१) जैसे जाति की उन्नति और रक्षा के लिये धनियों की आवश्यकता है इसी प्रकार स्तुति करने वाले ऋषि तुल्य धर्मात्मा विप्रों की आवश्यकता भी है इसलिये प्रार्थना है कि वे सौ वर्ष की आयु को भोगें ॥

अग्निर्देवता त्रिष्टुप्छन्दः ।११।११।११॥

एतातेअग्नउचथानिवेधोजुष्टा-

निसन्तुमनसेहृदेच । शकेमरायः-

सुधुरोयमंते ऽधिश्रवोदेवभक्तांदधाना: ॥ १० ॥

एता	एतानि (शेर्लोपः)	ये
ते	तव	तेरे
अग्ने	हे अग्ने !	हे अग्नि
उचथानि	स्तोत्राणि	स्तोत्र
वेधः	हेमेधाविन् ! (निघं० ३।१५)	हे बुद्धिमान
जुष्टानि	प्रियाणि	प्रीतिवाले
सन्तु	सन्तु	हों
मनसे	मनसे	मनकेताईं
हृदे	हृदयाय	हृदय के ताईं
च	च	और
शकेम	शक्ताभवेम	हम समर्थ होवें

१ राय:	धनस्य	धनके
१ सुऽधुर:	शोभनधूर्युक्तस्य- (रथस्य)	सुन्दर धुरे वाले- (रथ) के
१ यमं	नियमनम्(कर्त्तुम्)	रोकने को
ते	तव	तेरे
अधि	अधि +	–
श्रव:	यशः	यश को
देवऽभक्तम्	देवैर्भक्तम्	देवताओंसे बांटे- हुए को
दधाना:	अधि + दधानाः, धारयन्तः	धारणकरतेहुए

संस्कृतार्थः ।

हेमेधाविन्नग्ने! एतानि स्तोत्राणि तवमनसे हृदयाय च प्रियाणि सन्तु देवैर्भक्तंयशोधारयन्तः (च वयम्) तवधनसम्बधिनः शोभनधूर्युक्तस्य (रथस्य) नियमने शक्ताभवेम ॥ १० ॥

भाषार्थः ।

हे बुद्धिमान अग्नि! ये स्तोत्र आप के मन और

हृदय के ताईं प्रिय होवें (और) देवताओं से बांटे हुए यश को धारण करते हुए हम आप के धन संबंधी सुन्दर धुरे वाले (रथ) को रोकने में समर्थ होवें ॥१०॥

(१) जिस से यह धन हमारे घर या जाति में रहे शत्रुओं की ओर धन का रथ न जावे ॥

इति त्रिसप्ततितमंसूक्तम्।

ऋ० मं० १ सू० ७४

अग्निर्देवता, रहूगणस्य पुत्रो गोतम ऋषिः।

विनियोग—(१) यह और अगला सूक्त दोनों प्रातरनुवाक के आग्नेय क्रतु में पढ़े जाते हैं—(आ० सू० ४। १३। ७) और आश्विन शस्त्र में भी पढ़े जाते हैं।

(२) पृष्ठय पडह के प्रथम दिन में यह सूक्त आज्य शस्त्र है (आ० सू० ७।१०।३)

(३) "उपप्रयन्तः—" यह पहला मंत्र अग्निहोत्र संबंधी सायकाल के उपस्थान में पढ़ा जाता है (यजु० ३।११)

(४) "उतब्रुवन्तु—" यह तीसरा मंत्र वैश्वदेवादि चातुर्मास्य में अग्नि मन्थन कर्म में जब अध्वर्यु "आतायानुब्रूहि" ऐसा प्रैष देता है तब पढ़ा जाता है (आ० सू० २।१६।७)

(५) साकमेध में क्रीळी मरुतों की इष्टि में यही तीसरा मंत्र प्रथम आज्यभाग की अनुवाक्या है (आ०सू०२।१८।१५)

जो दूर से भी हम को सुनते हैं उस स्थापन किये हुए अग्नि के समीप जाते हुए हम मंत्र को उच्चारण करें, जिस ने प्रजा में उपद्रव के समय यजमान के घर की रक्षा की है उस अग्नि की मथन

करके सब बोलें कि शत्रु के नाश करने वाले और प्रत्येक युद्धमें धनों के जीतने वाले उत्पन्न होगए हैं—यह अग्नि जिस यजमान के दूत बनते हैं उस के यज्ञ को देवताओं से कामना करने योग्य बना देते हैं और उसी मनुष्य को लोग सुहव्य सुदेव और सुबर्हि कहते हैं, जब अग्निदेव दूत कर्म के लिये जाते हैं तब न तो उन के घोड़ों का और न रथ का शब्द सुनाई देता है—जो अग्नि का हवि से पूजन करता है वह बलवान और साहसी होकर पिछले यजमानों से भी बढ़ जाता है और अग्निदेव उस के लिये तेज से युक्त महान बल को देवताओं से लाकर पहुंचाते हैं।

अग्निर्देवता गायत्रीछन्दः ८।८।८

उपप्रयन्तो अध्वरं मन्त्रंवोचेमा-
ऽग्नये। आरेअस्मेचशृण्वते ॥१॥

उपप्रयन्तः	समीपेप्राप्नुवन्तः	समीप प्राप्त होते हुए
अध्वरम्	यज्ञम्	यज्ञ को
मन्त्रम्	मन्त्रम्	मंत्र को
वोचेम	उच्चारयेम	हम उच्चारण करें
अग्नये	अग्नये	अग्नि के लिये

आरे	दूरे	दूर में
अस्मे०	अस्मान् (विभक्तेश्शेआदेशः)	हम को
च	अपि (सा०भा०)	भी
शृण्वते	शृण्वते	सुनने वाले के लिये

संस्कृतार्थः ।

यज्ञसमीपे प्राप्नुवन्तः (वयम्) दूरेऽप्यस्मान् शृण्वतेऽग्नये मन्त्रमुच्चारयेम ॥ १ ॥

भावार्थः ।

हम यज्ञ के समीप प्राप्त होते हुए दूर से भी हम को सुनने वाले अग्नि के लिये मन्त्र को उच्चारण करें ॥१ ॥

अग्निर्देवता गायत्रीछन्दः ८।८।८।

यः स्नीहितीषु पूर्व्यः संजग्मानासु कृष्टिषु । अरक्षद्दाशुषे गयम् ।२।

यः	यः	जिसने
स्नीहितीषु	हननकारिणीषु (स्नेह्यतहिंस्यते-आभिः । स्नह्यतिर्हिंसाकर्म्मा निघं०२।१९)	हनन करने वालियों में
पूर्व्यः	पुरातनः	प्राचीन ने
सम्ऽज्मानासु	सङ्गतासु	इकट्ठीहुइयों में
क्षितिषु	प्रजासु	प्रजाओं में
अरक्षत्	अरक्षत्	रक्षा की है
दाशुषे	दत्तवते	देने वाले के ताईं
गयम्	गृहम् (निघं०३।४)	घर को

संस्कृतार्थः ।

पुरातनो यो दत्तवते (यजमानाय)हननकारिणीषु प्रजासुसङ्गतासु (तस्य) गृहं रक्षितवान् ॥ २ ॥

भाषार्थः।

जिस प्राचीनने देने वाले (यजमान) के ताईं हनन करने वाली प्रजाओं के इकट्ठे होने पर (उसके) घर की रक्षा की है ॥ २ ॥

जब देश में कोई उपद्रव होजाता है और प्रजा राजा के हनन के लिये इकट्ठी होकर लूटमार करने लगती हैं तब अग्निदेव हवि देने वाले यजमान के घर की रक्षा करते हैं, ऐसा पूर्व काल में भी हुआ है।

अग्निर्देवता गायत्रीछन्दः।८।८।८

उतब्रुवन्तुजन्तव उदग्निर्वृत्र-

हाजनि। धनञ्जयोरणेरणे।३।

उत	अपिच	और
ब्रुवन्तु	ब्रुवन्तु	बोलें
जन्तवः	मनुष्याः	मनुष्य
उत्	उत्+	–
अग्निः	अग्निः	अग्नि

वृत्रऽहा	वृत्रस्य हन्ता	वृत्रके मारनेवाला
अजनि	उत्+अजनि, प्रादुरभूत्	प्रकट हुआ, है,
धनम्ऽजयः	धनानांजेता	धनों के, जीतने वाला
रणेऽरणे	युद्धे युद्धे	प्रत्येक युद्ध में

संस्कृतार्थः।

अपिच, मनुष्याब्रुवन्तु (यत्) वृत्रस्य हन्ता युद्धे-युद्धे धनस्यजेता ऽग्निः प्रादुरभूत् ॥ ३ ॥

भाषार्थः।

और मनुष्य बोलें (कि) वृत्र को मारने वाले प्रत्येक युद्ध में धन को जीतने वाले अग्निदेव प्रकट होगए हैं ॥ ३ ॥

अग्निर्देवता गायत्रीछन्दः ।८।८।८।

यस्यदूतोअसिक्षये वेषिहव्या-

निवीतये । दस्मत्कृणोष्यध्वरम् ।४।

यस्य	यस्य	जिस का
दूतः	दूतः	दूत
असि	असि	तू है
क्षये	गृहे	घर में
वेषि	प्रापयसि (वीगतौ, अन्तर्भावित ण्यर्थः)	पहुंचाता है
हव्यानि	हवींषि	हवियों को
वीतये	भक्षणार्थम्	भक्षणकरनेकेलिये
दस्मत्	काम्यम् ? (औ०को०)	कामना के योग्य को
कृणोषि	करोषि	तू करता है
अध्वरम्	यज्ञम्	यज्ञ को

संस्कृतार्थः ॥

(हेअग्ने ! त्वम्) यस्य गृहे दूतोभवसि (देवानाम्) भक्षणार्थं हवींषि (च) प्रापयसि (तस्य) यज्ञं काम्यं करोषि ॥ ४ ॥

भावार्थः ।

(हे अग्नि)आप जिसके घरमें दूत बनते हो (और देवताओं के) भक्षण करनेके लिये हवियों को पहुंचाते हो (उसके) यज्ञ को कामना के योग्य करते हो ॥४॥

अग्निर्देवता गायत्रीछन्दः।८।८।८

तमित्सुहव्यमङ्गिरः सुदेवंसह-

सोयह्वो। जनाआहुःसुबर्हिषम्।५।

तम्	तम्	उस को
इत्	एव	ही
सुऽहव्यम्	शोभन हविष्कम्	सुन्दरहविवालेको
अङ्गिरः	हे अङ्गिरः !	हेअङ्गिरानामवाले
सुऽदेवम्	शोभनदेवतम्	सुन्दर देवता वाले को
सहसः	सहसः	बल के
यह्वो०	सूनो ! (निघं०२।२)	हे पुत्र
जनाः	मनुष्याः	मनुष्य

आहुः	आहुः	कहते हैं
२सुऽबर्हिषम्	शोभन बर्हिषम्	सुन्दरबर्हिवाले२

संस्कृतार्थः।

हे अङ्गिरः! हे वलस्य पुत्र! तमेव (यजमानम्) जनाः शोभन हविष्कं शोभनदेवतं शोभनबर्हिषम् (च) आहुः॥ ५॥

भाषार्थः।

हे अङ्गिरा! हे बल के पुत्र! उसी (यजमान) को मनुष्य सुन्दर हवि वाला सुन्दर देवता वाला (और) सुन्दर बर्हि वाला कहते हैं॥ ५॥

(१) अङ्गिरा के लिये देखो पृ० ४६।

(२) "बर्हि" काटी हुई कुशा जो वेदी में बिछाई जाती है और जिस पर घृत और हवि रक्खी जाती हैं॥

अग्निर्देवता गायत्रीछन्दः।८।८।८

आ च वहासि ताँ इह देवाँ उप प्रशस्तये। हव्या सुश्चन्द्र वीतये॥ ६॥

आ	आ +	—
च	(पूरण.)	—
वहासि	आ+वहासि,आवह (लेट्याडागमः)	लेआओ
तान्	तान्	उनको
इह	इह	यहां
देवान्	देवान्	देवताओंको
उप	समीपे	समीप
प्रऽशस्तये	प्रकर्षेणशंसनाय	खूबस्तुति के लिये
हव्या	हव्यानाम् (षिमके रात्यम्)	हवियों के
सुऽचन्द्र	हे अत्यन्ताऽऽह्लादक !	हे अत्यन्तआनन्द देने वाले
वीतये	भक्षणाय	भक्षण करने के लिये

संस्कृतार्थः।

हे अत्यन्ताऽऽह्लादक! (त्वम्) तान् देवान् प्रकर्षेण शंसनाय हविषांभक्षणाय (च) इह समीपमावह ॥६॥

भाषार्थः।

हे अत्यन्त आनन्द देने वाले आप उन देवताओं को खूब स्तुति के लिये (और) हवियों के भक्षण करने के निमित्त यहां पास लेआओ॥ ६॥

·अग्निर्देवता गायत्रीछन्दः ।८।८।८

नयो॑रु॒पब्दि॒रश्व्यः॑ शृ॒ण्वे रथ॑स्य॒ कच्च॒न। यद॑ग्ने॒ यासि॑ दू॒त्यम्॥७॥

न	न	नहीं
योः	गच्छतः (याप्रापणे,औणादिकः कुप्रत्ययः)	चलते हुए का
उपब्दिः	शब्दः (निघ०१।११)	शब्द
अश्व्यः	अश्वैरुत्पादितः	घोड़ों से उत्पन्न हुआ २
शृण्वे	श्रूयते (कर्म्मणिलट्टिव्यत्ययेन-श्नु शृभावश्च)	सुना जाता है
रथस्य	रथस्य	रथका

कत्	कदा	कभी
चन	अपि	भी
यत्	यदा	जब
अग्ने	हे अग्ने !	हे अग्नि
यासि	गच्छसि	जाते हो
दूत्यम्	दूत्यार्थम्	दूत कर्म के लिये

संस्कृतार्थः।

हेअग्ने ! यदा (त्वम्) दूत्यार्थं गच्छसि (तदा) गच्छतः(तव) अश्वैरुत्पादितः शब्दो रथस्य[शब्दश्च] कदापि न श्रूयते ॥७॥

भाषार्थः।

हे अग्नि ! जब आप दूत कर्म के लिये जाते हैं [तब] चलते हुए [आपके] घोड़ों का शब्द (और) रथ का [शब्द] कभी नहीं सुनाई देता ॥ ७ ॥

अग्निर्देवता गायत्रीछन्दः।८।८।८

त्वोतोवाज्यह्रयो ऽभिपूर्वस्माद-

परः। प्रदाश्वाँअग्नेअस्थात् ॥ ८॥

त्वाऽऊतः	त्वयारक्षितः	तुझसेरक्षाकिया-हुआ
वाजी	बलवान्	बलवान्
अक्रयः	साहसिकः (आ॰को)	साहसकरनेवाला
अभि	अभि+	–
पूर्वस्मात्	पूर्वस्मात्	पहले से
अपरः	अपरः	पिछला
प्र	प्र+	–
दाश्वान्	दाता	देने वाला
अग्ने	हे अग्ने !	हे अग्नि
अस्थात्	प्र + अस्थात् अग्रेतिष्ठति, उत्कृष्टोभवतीत्यर्थः (लङर्थेलुङ्)	बढ़ जाता है

संस्कृतार्थः ।

हे अग्ने ! (हविषः) दाताऽपरः (यजमानः) त्वया रक्षितः(सन्) बलवान्साहसिकः (च भूत्वा) पूर्वस्मादुत्कृष्टो भवति ॥ ८॥

भाषार्थः ।

हे अग्नि (हविके)देने वाला पिछला (यजमान) आपसे रक्षा किया हुआ बलवान (और) साहसी होकर पहले से बढ़ जाता है ॥८॥

अग्निर्देवता गायत्रीछन्दः ।८।८।८

उतद्युमत्सवीर्य्यं बृहदग्नेविवा-
ससि। देवेभ्योदेवदाशुषे ॥ ९॥

उत	अपिच	और भी
द्युऽमत्	दीप्तियुक्तम्	दीप्ति वाले को
सुऽवीर्य्यम्	शोभनंबलम्	सुन्दर बल को
बृहत्	महत्	महान को
अग्ने	हे अग्ने!	हे अग्नि

विवाससि	प्रापयसि (वीगतौ-अन्तर्भावित ण्यर्थः)	पहुंचाते हो
देवेभ्यः	देवेभ्यः	देवताओं से
देव	हे देव !	हे देव
दाशुषे	दत्तवते	देने वालेकेताईं

संस्कृतार्थः ।

हे अग्ने ! हे देव ! अपिच(हविः)दत्तवते(यजमानाय) दीप्तियुक्तं शोभनं महद्बलं देवेभ्यः (आहृत्य) प्रापयसि ॥ ९ ॥

भाषार्थः ।

हे अग्नि! हे देव ! और आप (हवि) देने वाले (यजमान) के ताईं तेज युक्तसुन्दर महान बल को देवताओं से (लाकर) पहुंचाते हो ॥ ९ ॥

इति चतुःसप्ततितमं सूक्तम् ।

ऋ० मं० १ सू० ७५

अग्निर्देवता—गोतम ऋषिः ।

विनियोग—पिछले सूक्त को न्याईं प्रातरनुवाक में और आश्विन शस्त्र में।

जिस अग्नि में हम हवि देते हैं और जिस की स्तुति में मन्त्र उच्चारण करते हैं—वह वास्तव में कौन है और किस पर आश्रित है ?—मनुष्यों में कौन महानुभाव उस को बन्धु की न्याईं प्यार करता है और कौन उसके अनुरूप पूजा देता है ? अग्नि देव सब के बन्धु और प्रीति करने वाले रक्षक हैं, जो उस में मित्र भाव रखते हैं उन के वह सखा है। ऐसे अग्नि हमारे लिये मित्र और वरुण को पूजें, देवताओं को पूजें और महान ऋत को जो अग्नि का निज निवास स्थान है पूजें।

अग्निर्देवता गायत्रीछन्दः ।८।८।८

जुषस्वसप्रथस्तमं वचोदेवप्सर-
स्तमम् । हव्याजुह्वानआसनि ॥१॥

जुषस्व	अङ्गीकुरु	अङ्गीकार करो
सप्रथःऽतमम्	अतिशयेनप्रख्यातम् (आ० फो०)	बहुत प्रसिद्ध को

वचः	वचः	वचन को
देवप्सरःऽतमम्	अतिशयेन देवानांप्रीणयितारम् देवान्तिस्पृणोतिप्रीणयति स्पृप्रीतौ,सकारपकारयोस्थानविपर्ययः)	देवताओं के अत्यन्त प्रसन्न करने वाले को
हव्या	हव्यानि (शेर्लोपः)	हवियों को
जुह्वानः	अर्पयन् (जुहोतेर्व्यत्ययेनशानच्)	अर्पणकरताहुआ
आसनि	आस्ये ("पदन्नस्"-इत्यादिनाऽऽस्यशब्दस्याऽऽसन्नादेशः)	मुख में

संस्कृतार्थः ।

(हे अग्ने ! निज–) आस्ये हव्यान्यर्पयन् (त्वम्) देवानामतिप्रीणयितारमतिशयेन प्रख्यातम् (अस्मद्-) वचनमङ्गीकुरु । १ ।

भाषार्थः ।

(हे अग्निअपने) मुख में हवियों को अर्पण करते हुए आप देवताओं के अत्यन्त प्रसन्न करने वाले वहुत प्रसिद्ध (हमारे) वचन को अङ्गीकार करें । १ ।

वहुत प्रसिद्ध इसलिये कि वेद मंत्र परमात्मा से प्रेरित और सब मनुष्यों के लिये हैं, केवल मंत्र द्रष्टा ऋषियों के लिये नहीं।

अग्निर्देवता गायत्रीछन्दः ।८।८।८

अथातेअङ्गिरस्तमाऽग्नेवेधस्तम

प्रियम्। वोचेमब्रह्मसानसि।२।

अथ	अनन्तरम्	अनन्तर
ते	तुभ्यम्	तेरे लिये
अङ्गिरःऽतम	हेअङ्गिरसांवरिष्ठ!	हेअंगराओंमें श्रेष्ठ
अग्ने	हे अग्ने !	हे अग्नि
वेधःऽतम	हेअतिमेधाविन्!	हेअत्यन्त वुद्धिमान
प्रियम्	प्रियम्	प्रीति वाले को
वोचेम	कथयाम	हम उच्चारणकर
ब्रह्म	मन्त्ररूपंस्तोत्रम्	मंत्ररूपस्तोत्र को
सानसि	आदरणीयम् (सा०को० असिच् प्रत्ययान्तो निपात्यते	आदर करने-योग्य को

संस्कृतार्थः।

हे अङ्गिरसांवरिष्ठ! अतिमेधाविन्! अग्ने! अनन्तरं तुभ्यं प्रियमादरणीयम् (च) मन्त्ररूपंस्तोत्रं कथयाम। २।

भाषार्थः।

हे अङ्गिराओं में श्रेष्ठ अत्यन्त बुद्धिमान अग्नि! (इसके) अनन्तर हम आपके लिये प्रीतियुक्त (और) आदर करने योग्य मंत्ररूप स्तोत्र को उच्चारण करें। २।

अग्निर्देवता निचृद्गायत्रीछन्दः।७।८।८

कस्ते॑ जा॒मिर्जना॑ना॒ मग्ने॒ को दा॒श्व॑ध्वरः। को ह॒ कस्मि॑न्नसि श्रि॒तः ॥३॥

१ कः	कः	कौन
१ ते	तव	तेरा
१ जामिः	बन्धुः	बंधु

जनानाम्	मनुष्याणाम् (मध्ये)	मनुष्योंके(वीचमें)
अग्ने	हे अग्ने!	हे अग्नि
कः	कः	कौन
दाशुऽअध्वरः	दाशुर्दत्तो ऽध्वरो-यज्ञो येन सः,	पूजा देने वाला
२ कः	कः	कौन
ह	खलु	सचमुच
२ कस्मिन्	कस्मिन्	किस में
असि	असि	तू है
२ श्रितः	श्रितः	आश्रित

संस्कृतार्थः।

हे अग्ने! मनुष्याणाम् (मध्ये) कस्तवबन्धुः कः (तवाऽनुरूपः) यष्टा (अस्ति) (त्वम्) कः (असि) कस्मिन् खल्वाश्रितोऽसि। ३।

भाषार्थः।

हे अग्नि मनुष्यों के (वीचमें) कौन आप का

बंधु (है) कौन (आप के योग्य) पूजा देने वाला (है) सचमुच आप कौन (हैं और) किस पर आश्रित हैं। ३।

(१) अग्निदेव तो सब के बन्धु हैं (देखो अगला मंत्र), परन्तु अग्नि के बन्धु अर्थात् जो बन्धु की न्याईं अग्नि को प्यार करते हैं बहुत कम हैं, इसलिये उपासक का प्रश्न है।

(२) अग्नि वास्तव में क्या हैं यह तो पदार्थ विद्या के विद्वान वैज्ञानिक भी नहीं बता सकते और न यह बता सकते हैं कि वह किस पर आश्रित हैं।

अग्निर्देवता निचृद्गायत्रीछन्दः ।८।८।८

त्वंजामिर्जनाना मग्नेमित्रोअसि-

प्रियः। सखासखिभ्यईड्यः ॥४॥

त्वम्	त्वम्	तू
जामिः	बन्धुः	बन्धु
जनानाम्	मनुष्याणाम्	मनुष्यों का
अग्ने	हे अग्ने !	हे अग्नि

मित्रः	त्रायकः (यास्कः)	रक्षा करने वाला
असि	असि	तू है
प्रियः	प्रियः	प्रीति करने वाला
सखा	सखा	मित्र
सखिऽभ्यः	सखिभ्यः	मित्रों के ताईं
ईड्यः	स्तुत्यः	स्तुति के योग्य

संस्कृतार्थः।

हे अग्ने ! त्वं मनुष्याणां बन्धुः प्रियस्त्रायकः (चाऽसि) स्तुत्यः (त्वम्) सखिभ्यः सखाऽसि। ४।

भावार्थः।

हे अग्नि आप मनुष्यों के बंधु (और) प्रीति करने वाले रक्षक (हैं) स्तुति के योग्य आप मित्रों के ताईं मित्र हैं। ४।

वैसे तो अग्नि मनुष्य मात्र के मित्र हैं जैसे परोपकारी सत्पुरुष होते हैं, परन्तु उन की मित्रता का सुख वे ही भोगते हैं जो उन को अपना मित्र जानते हैं।

अग्निर्देवता, गायत्रीछन्दः ।८।८।८

यजानोमित्रावरुणा यजादेवाँऋ-
तंबृहत् । अग्नेयक्षिस्वंदमम् ॥ ५ ॥

यज	पूजय	पूजो
नः	अस्मभ्यम्	हमारेलिये
[1]मित्रावरुणा	मित्रावरुणौ	मित्र(और)वरुण-को
यज	पूजय	पूजो
देवान्	देवान्	देवताओं को
[2] ऋतम्	ऋतम्	सृष्टिनियम को
बृहत्	महत्	महान को
अग्ने	हे अग्ने !	हे अग्नि
यक्षि	पूजय (शपोलुक्)	पूजो

२ स्वम्	स्वकीयम्	अपने
२ दमम्	गृहम्	घर को.

संस्कृतार्थः ।

हे अग्ने ! (त्वम्) अस्मदर्थं मित्रावरुणौ पूजय देवान् पूजय महद्ऋतरूपं गृहम् (च) पूजय ॥ ५ ॥

भाषार्थः ।

हे अग्नि आप हमारे लिये मित्र (और) वरुण को पूजो देवताओं को पूजो (और) अपने महान ऋत रूप घर को पूजो । ५ ।

(१) मित्र और वरुण परमात्मा की सर्वाच्छादक और दया पूर्वक नियंत्रित करने वाली शक्तिके अभिमानी(Personification)होनेसे सबसे पहिलेपूजने योग्य हैं क्योंकि सृष्टि नियम के स्तम्भक यही हैं, और विना नियमके सृष्टि और देवता कोई भी नहीं ठैर सकते।

(२) महान "ऋत" या नियम जिस से यह सब सृष्टि, उत्पन्न और स्थित होती है-यही अग्नि का घर है इसी में इस की स्थिति है, अग्नि देव इस ऋत को भी मनुष्य और देवताओं के निमित्त पूजें-जिस से दोनों को परोपकार के लिये शक्ति मिले ।

ऋ० मं० १ सू० ७६

अग्निर्देवता गोतम ऋषिः

विनियोग–यह और अगला सूक्त दोनों प्रातरनुवाक के आग्नेय क्रतु में पढ़े जाते हैं (आ० श्रौ० सू० ४।१३।७)

और आश्विन शस्त्र में भी।

हम किस प्रकार अग्निरूप परमात्मा के पास जावें, कौन सी स्तुति करें और हवि से पूजन करते हुए किस संकल्प, को मन में रखें, ये सब हम नहीं जानते अग्निदेव ही हमें बतलावें, मनुष्यों में तो अग्नि के बल के अनुरूप पूजा करने में कोई भी समर्थ नहीं है। अग्निदेव ही यज्ञ में हमारे होता बन कर बैठें और प्रत्येक कर्म में हमारे अगवेया बनें, तभी, देवताओं का प्रसाद हम पर हो सकता है। अग्निदेव ही राक्षस आदि हमारे शत्रुओं को जलाकर हमें निर्विघ्नता से देवपूजन करने में समर्थ करते हैं, वही इन्द्र जैसे दानी को हमारा अतिथि बनाते हैं। हम अपने मुख से और अपनी सन्तान की वाणी से अग्नि को बुलाते हैं, जिससे धन के उत्पन्न करने वाले और धन के देने वाले वह हमें जानें। जिस प्रकार अग्नि ने पूर्व समय में ऋषियों के साथ बैठ कर हमारे आदि पिता मनु की हवियों से देवताओं का पूजन किया था उसी प्रकार हमारे लिये भी हर्ष देने वाली जुहू से देवताओं को पूजें।

अग्निर्देवता निचृत् त्रिष्टुप्छन्दः ।११।११।११।१०

का॒त॒ उप॑ति॒र्मन॑सो॒ वरा॑य॒ भुव॑दग्ने॒-

शन्त॑मा॒ का म॑नी॒षा। कोवा॑य॒ज्ञैः परि॒-

दर्तांतश्राप केनवातेमनसादाशमा।१।

का	कीदृशी	कैसी
ते	तव	तेरे
उपऽइतिः	उपगति (इणगतउपोपूर्वाद-स्माद्द भावेक्तिन्)	समीप प्राप्ति
मनसः	मनसः	मनके
वराय	वरणार्थम्	वरने के लिये
भुवत्	भवेत् (लेटघडागमः)	हो
अग्ने	हे अग्ने !	हे अग्नि
शम्ऽतमा	अतिसुख करी	अत्यन्त सुख देने वाला
का	कीदृशी	कैसी
मनीषा	स्तुतिः (आ०फो०)	स्तुति
कः	कः	क न

वा	(समुच्चये)	और
यज्ञैः	यज्ञैः	यज्ञों से
परि	परि +	—
२ दक्षम्	बलम् (निघं०२।९)	बल को
ते	तव	तेरे
आप	परि + आप अनुरूपोऽभवत्	योग्य हुआ है
३ केन	केन	किस से
वा	(समुच्चये)	और
ते	तुभ्यम्	तेरेताई
३ मनसा	मनसा	मनसे
दाशेम	(हवि) प्रयच्छाम (दाशृदाने)	(हवि) दें

संस्कृतार्थः।

हे अग्ने ! तवमनसो वरणार्थं कीदृश्युपगतिः (भवेत्) कीदृशी स्तुतिः (तव)अतिसुखकारी (अस्ति)

कश्च यज्ञस्तवबलानुरूपोऽभवत् (वयम्) च केन म-
नसा तुभ्यम् (हविः) प्रयच्छाम। १।

भावार्थः।

हे अग्नि! आपके मन को वरने के लिये किस प्रकार (हम आप के) समीप आवें कौन सी स्तुति (आप को) अत्यन्त सुखदेनेवाली (है) और किस ने आप के बल के योग्य यज्ञ किये हैं और हम किस मन से आप के ताईं (हवि को) देवें। १।

(१) यद्यपि हम यज्ञ आदि कर्म करते हैं परन्तु अग्नि का मन हमारी ओर नहीं है, इसलिये प्रश्न है कि हम अग्नि के मन को वरने के लिये किस प्रकार उस की उपासना करें, और कौन सी स्तुति करें जिस से वह हम पर प्रसन्न हों।

(२) जैसे अग्निदेव का बल और महत्त्व है उसके अनुरूप कौन यज्ञ कर सकता है? अर्थात कोई नहीं। केवल अग्नि, की दया से ही उसकी प्राप्ति हो सकती है।

(३) हमको यह भी ज्ञान नहीं है कि हमारा कल्याण किस में है, इसलिये प्रश्न है कि हम किस संकल्प से अग्नि को हवि देवें यह भी हम को आत्मा द्वारा अग्निदेव ही बतलावें।

अग्निर्देवता त्रिष्टुप्छदः ।।१।।१।।१।।१

एह्यग्नइहहोतानिषीदाऽदब्धः-

सुपुरएताभवानः । अवतांत्वारोद-
सीविश्वमिन्वे यजामहेसौमनसा-
यदेवान्॥ २॥

आ	आ +	–
इहि	आ+इहि, एहि	आओ
अग्ने	हे अग्ने !	हे अग्नि
इह	इह	यहां
होता	होता	होता
नि	नि+	–
सीद	नि+सीद,उपविश	बैठो
१ अदब्धः	अहिंस्यः	पीडित न होने वाला
सु	सुष्ठु	सुन्दर

पुरःऽएता	पुरतोगन्ता (विसर्गलोपः?)	अगवैया
भव	भव	तू हो
नः	अस्माकम्	हमारा
अवताम्	रक्षताम्	दोनों रक्षा करें
त्वा	त्वाम्	तुझ को
रोदसी०	द्यावा पृथिव्यौ	द्यौ(और)पृथिवी
विश्वम्ऽइन्वे०	सर्वव्याप्नुवन्त्यौ	सबको व्याप्त करती हुईं
यज	पूजय	पूजो
महे	महते	महान के लिये
सौमनसाय	सौमनस्याय	प्रसाद के लिये
देवान्	देवान्	देवताओं को

संस्कृतार्थः।

हे अग्ने ! एहि, इह(यज्ञे) होता (सन्) उपविश,

विज्ञापन

मिती चैत्र वदी १ संवत् १९६६ से ऋग्वेद संहिता का दफ्तर भिवानी में खोला गया है—इस लिये अब से पत्र व्यवहार इस पते पर करें॥

पुस्तक मिलने का पता :—

मुन्शीजैराम मैनेजर

ऋग्वेदसंहिता

भिवानी जिला हिसार

पंजाब देश।

अंक ४३-४४]　　[चैत्र-वैशाख १९६७

ऋग्वेद संहिता

(वैदिकजीवनभाष्ययुता)

पदपाठ, शब्दार्थ, संस्कृत और भाषा अनुवाद टिप्पणी और मन्त्रों के आशय पर व्याख्यान से युक्त

जिसको मुलतान निवासी पं० शङ्करदत्तशास्त्री की सहायता से शिवनाथ आहिताग्नि ने सम्पादन किया।

लाहौर

पञ्जाब एकानोमीकल यन्त्रालय में प्रिंटर लाला [illegible] के अधिकार से छपा।

---

१२ अंकों का अग्रिम मूल्य २)

पहले २४ अंकों का मूल्य ५॥)

ऋ०सं० ३९,४० अङ्कयोः शुद्धयशुद्धि पत्रम् ।

पृ०	पं०	अशुद्धम्	शुद्धम्
१६८७	६	यमोष	यमौष
१७०५	१०	स्व छा	सुवच्छ
१७०७	१५	दन	दन्
१७०९		नृम्णा	नृम्णा
१७११	६	पृथिवाम्	पृथिवीम्
१७१२	१२	(स्वच्छा	(सुवस्का
१७१२	१७	वारुपे	रुपे
१७१३	४	जसे	जैसे
१७१३	२२	गहा	गुहा
१७१६	२२	वियोधी	वियोधी
१७२०	१३	(श्रीज	(श्रीण्
१७२३	७	विश्वे	विश्वे
१७२५	१३	जाते	जोते
१७३१	८	बभुवु	बभूवुः
१७३१	२१	सुपुत्री	सुपुत्री
१७३२	४	तुराषः	तुराषः
१७३३	७	घटि-	घाटि-
१७४१	१५	गीळा	गीळा
१७४२	१६	देवों की	देवों को
१७४६	१८	सखैः	सखैः
१७५०	२	ममा	मूमा
१७५०	१६	ष	षु
१७५१	८	पावरन	पावरन्

पृ०	पं०	अशुद्धम्	शुद्धम्
१७६३	१०	भत्वम्	मत्वम-
१७६४	८	पितः	पितुः
१७६४	१८	त्वम)	त्वम्)
१७६५	१५	गच्नु	गुच्नु
१७६८	१५	त्रिष्टप्	त्रिष्टुप्
१७६८	१७	स्वसारः	स्वसारः
१७६८	१८	मुच्छन्ती	मुच्छन्ती
१७७०	५	सेवन्त	सेवन्ते
१७७०	२१	मवसम्	मुवसम्
१७७१	१८	रद्धि	रद्धिं
१७७२	२	बसना, मनि	बसनाम.नि
१७७३	१०	उरा:	उस्राः
१७७४	१४	न्नूतं	न्नूतं
१७७५	२१	दाषा	दोषा
१७७६	१६	दैवता	दैवता
१७७९	८	दूस्यम्	दूत्यम्
१७८१	१८	वषष)	वषष्)
१७८४	४	पुनाति	पुनाति
१७८४	८	दर्श	दर्श
१७८५	२	दयात्	दामात्
१७८७	४	सप्त	सप्त
१७८७	५	देवेष	देवेषु
१७८८	१८	दुवेष	देवेषु
१७९२	४	पाम	पामि

यज्ञानामभिशस्तिपावा। अथावह-
सोमपतिंहरिभ्या मातिथ्यमस्मैच-
कृमासुदाव्ने ॥ ३ ॥

प्र	प्र+	—
सु	सु+	—
१ विश्वान्	सर्वान्	सब को
१ रक्षसः	राक्षसान्	राक्षसों को,
धक्षि	प्र+सु+धक्षि,प्रकर्षेण दह (दहतेःशपोलुक्)	खूब जलाओ
अग्ने	हे अग्ने !	हे अग्नि
भव	भव	तू हो
यज्ञानाम्	यज्ञानाम्	यज्ञों का

अभिशस्ति ऽपावा	अभिशस्तिहिंसा-तस्याःसकाशात् पावा रक्षिता (शसुहिंसायाम,अभि पूर्वादस्मात क्तिन् पा-रक्षणे-अस्माद्वनिप्)	हिंसा से बचाने वाला
अथ	अनन्तरम्	अनंतर
आ	आ+	–
वह	आ+वह	लाओ
सोमऽपतिम्	सोमस्यस्वामिनम्	सोमके स्वामी को
हरिऽभ्याम्	अश्वाभ्याम्	दोनों घोडों से
२ आतिथ्यम्	अतिथ्यर्हम (सत्कारम्)	अतिथि के योग्य-(सत्कार) को
अस्मै	तस्मै (तलोपश्छान्दसः)	उस के लिये
चकृम	करवाम (लोडर्थेलिट्)	हम करें
सुऽदाव्ने	अतिदानिने	अत्यन्त दानी के लिये

संस्कृतार्थः ।

हे अग्ने! (त्वम्) सर्वान् राक्षसान् प्रकर्षेणदह हिंसाया यज्ञानां रक्षिता (च) भव, अनन्तरं सोमस्यपतिम् (इन्द्रं तदीय-) अश्वाभ्याम् (अत्र) आवह (यद्वयम्) अतिदानिने तस्मा आतिथ्यं करवाम । ३ ।

भावार्थ- ।

हे अग्नि आप सब राक्षसों को खूब जलाओ (और) हिंसा से यज्ञों का रक्षा करो, (इसके-) अनन्तर सोम के स्वामी (इन्द्र) को (उसके) दोनों घोड़ों से (यहां) लाओ, (जो)हम उस अत्यन्त दानी का आतिथ्य करें । ३ ।

(१) अग्नि राक्षसों के सच्चे नाशक हैं–रोग आदि को उत्पन्न करने वाले जीवों के नाशक तो प्रत्यक्ष ही हैं-परन्तु स्तुति और चिन्तन किये जाने से पाप की ओर लेजाने वाली मानसिक शक्तियों और हमारे शत्रुओं के भी नाशक हैं ।

(२) अग्निदेव इन्द्र जैसे अतिथि को हमारे घर पर लाते हैं इतने बड़े दानी से सम्बन्ध होने पर मनुष्य की कौनसी कामना अपूर्ण रह सकती है ।

अग्निर्देवता त्रिष्टुप्छन्दः ।११।११।११।११।

प्र॒जाव॑ता॒वच॑सा॒वह्नि॑रा॒सा ऽऽच-

ह्वेनिचसत्सीदद्वैः। वेषिह्योत्तम-
तपोत्तंयजत्र बोधिप्रयन्तर्जनितर्व-
सूनाम् ॥ ४ ॥

प्रजाऽवता	प्रजायुक्तेन	प्रजायुक्त से
वचसा	वचसा	वचन से
वह्निः	नेतारम् (सुपामितिविभक्तेःसुः)	अगवैये को
आसा	आस्येन ("पद्न्नस्-"इत्यादिनाऽऽसन्नादेशेकृते-सुपामितितृतीयाया-डादेशः)	मुख से
आ	आ+	—
च	(पूरणः)	—
हुवे	आ+हुवे, आह्वयामि	बुलाता हूं

नि	नि+	–
च	(पूरणः)	–
सत्सि	नि+सत्सि, निषीद (लोडर्थेलट्)	बैठो
इह ।	इह	यहां
देवैः	देवैः	देवताओं के साथ
वेषि	गच्छसि	तू जाता है
२होत्रम्	होतृकर्मार्थम्	होताकेकर्मकेलिये
उत	च	और
२ पोत्रम्	पोतृकर्मार्थम्	पोताकेकर्मकेलिये
यजत्र	हे यजनीय !	हे पूजनकरनेयोग्य
२ बोधि	बुध्यस्व	जानो
प्रऽयन्तः	हे दातः !	हे देने वाले
जनितः	हे जनयितः !	हे उत्पन्न करने वाले

वसूनाम्	धनानाम्	धनों के

संस्कृतार्थः।

नेतारम् (त्वाम्) प्रजा युक्तेन वचसा (स्वकीयेन) आस्येन (च) आह्वयामि (त्वम्) देवैः सहेह निषीद, हे यजनीय (त्वम्) होतुःपोतुश्च कर्मार्थं गच्छसि हे धनानां जनयितः! हे (धनानाम्) दातः! (माम्) बुद्धयस्व। ४।

भाषार्थः।

आप नेता को प्रजा युक्त वचन से (और) अपने मुख से मैं बुलाता हूं आप देवताओं के साथ यहां बैठें, हे पूजनीय आप होता और पोता के कर्म के लिये जाते हैं, हे धनों को उत्पन्न करने वाले (और धनों के) देने वाले (आप मुझे) जानें। ४।

(१) प्रजायुक्त वचन से अर्थात ऐसी वाणी से जो मेरी और मेरी सन्तान दोनों की ओर से है।

(२) अग्निदेव होता इसलिये हैं कि देवताओं को बुलाते हैं-और पोता इस लिये कि सब के पवित्र करने वाले हैं, यज्ञ में पोता ब्रह्मा का द्वितीय सहायक है और सात होता ऋत्विजों में भी पोता एक है।

(३) जानें-जिससे मैं भी धन के दान का भागी बनूं।

अग्निर्देवता त्रिष्टुप्छन्दः ।११।११।११।११।

यथाविप्रस्यमनुषोहविर्भिर्देवाँ-
अयजःकविभिःकविःसन्। एवाहो-
तःसत्यतरत्वमद्या ऽग्नेमन्द्रयाजु-
ह्वायजस्व ॥ ५ ॥

यथा	यथा	जैसे
विप्रस्य	मेधाविनः	बुद्धिमान के
१ मनुषः	मनोः	मनुके
हविःऽभिः	हविर्भिः	हवियों से
देवान्	देवान्	देवताओं को
अयजः	पूजितवानसि	तूने पूजन किया
कविऽभिः	ऋषिभिः	ऋषियों के साथ

कविः	ऋषिः	ऋषि
सन्	सन्	होकर
एव	एवम्	वैसे ही
होतः०	हे होतः !	हे होता
सत्यऽतर	हेअतिसत्यात्मन्!	हे अत्यन्त सच्चे
त्वम्	त्वम्	तू
अद्य	अद्य	आज
अग्ने	हे अग्ने !	हे अग्नि
२ मन्द्रया	हर्षयित्र्या	हर्ष देने वाली से
२ जुह्वा	जुह्वा	जहू से
यजस्व	यजस्व	यजन करो

संस्कृतार्थः ।

हे अतिसत्यात्मन् ! होतः! अग्ने ! यथा त्वम् ऋषिभिः(सह) ऋषिर्भूत्वा मेधाविनो मनोः हविर्भिर्दे-

वान् पूजितवान तथाऽद्य (अपि) हर्षयित्र्या जुह्वा यजस्व । ५ ।

भाषार्थः ।

हे अत्यन्त सच्चे होता अग्नि ! जैसे आपने ऋषियों के साथ ऋषि बन कर बुद्धिमान मनु की हवियों से देवताओं का पूजन किया था वैसे ही आज (भी) हर्ष देने वाली जुहू से यजन करो । ५।

(१) अग्निहोत्र और अग्नि द्वारा परमात्मपूजन आदि पिता मनु के साथ हमारा सम्बन्ध कराते हैं ।

(२) जुहू वह पात्र है, कि जिससे यज्ञमें आहुति दी जाती है । यह हर्ष दिलाने वाली इसलिये है कि इस को उठाते देखकर देवताओंको हर्ष होताहै—जैसे भोजनके थालको देख कर मनुष्य को ॥

इति षट् सप्ततितमं सूक्तम ।

ऋ०मं०१ सू० ७७

अग्निर्देवता राहूगणो गोतम ऋषिः

विनियोग पिछल सूक्त की न्याई है।

देवताओं के लिये यज्ञ करने वाले और मरणधर्मी मनुष्यों में मरण रहित अग्नि के लिये हम किस प्रकार हवि देवें और कौन सी स्तुति करें जो देवताओं को प्रिय हो। जो अग्नि देवताओं के समीप जाते हैं उन को जानते हैं और मन से उन का पूजन करते हैं जो यज्ञ में अत्यन्त सुख के देने वाले हैं और ऋत के अनुकूल चलने वाले हैं उन को हम नमस्कारों से अपने सम्मुख करें। जो अग्नि यज्ञ रूप हैं जो यजमान रूप हैं जो कार्यसाधक हैं जो मित्र की न्याईं अद्भुत धनों के देने वाले हैं उन को देवभक्त आर्यलोग सब से पहले बुलाते हैं। यह शत्रुओं को नाश करनेवाले नरोत्तम अग्नि उत्कण्ठा के साथ हमारी स्तुति और भक्ति की कामना करें और हमारे धनवान अपने धन को देवताओं की स्तुति के श्रवण करने में लगावें। इस प्रकार गोतम कुल वाले ऋषि उत्पन्न भाग को जानने वाले अग्नि को स्तुति करते थे और इसी कारण उन की कीर्ति धन और पुष्टि बढ़े हुए थे॥

अग्निर्देवता त्रिष्टुप्छन्दः ।११।११।११।११

कथादाशेमाऽग्नयेकाऽस्मै देव-

जुंष्टोच्यतेभामिनेगीः। योमर्त्येष्व-

ऋतऋतावा होतायजिष्ठइत्कृणो-

तिदेवान्।१।

कथा	कथम्	किस प्रकार
दाशेम	ददाम	हम देवें
अग्नये	अग्नये	अग्नि के ताईं
का	का	कौन
अस्मै	अस्मै	इस के ताईं
देवऽजुष्टा	देवानांप्रिया	देवताओं को प्रिय
उच्यते	उच्यते	कही जाए
भामिने	दीप्तिमते (भादीप्तौ-मनिप्रत्ययेसतिमत्वर्थीयइनि.)	दीप्तिमानके ताईं

गीः	स्तुतिः	स्तुति
यः	यः	जो
मर्त्येषु	मर्त्येषु	मरणधर्मियों में
अमृतः	मरण रहितः	मरण से रहित
ऋतऽवा	ऋतवान् (मत्वर्थीयोवनिप्)	ऋत से युक्त
होता	होता	होता
यजिष्ठः	अतिशयेनयष्टा	अत्यन्त पूजन करने वाला
इत्	(पूरणः)	–
कृणोति	करोति	करता है
देवान्	देवानामर्थम् (चतुर्थ्यर्थे द्वितीया	देवताओं के लिये

संस्कृतार्थः।

(वयम्) अग्नये कथम् (हविः) ददाम, अस्मै दीप्तिमते देवप्रिया का स्तुतिरुच्यते यो मर्त्येषु मरण रहितो

होता ऋतेनयुक्तोऽअतिशयेन यष्टा देवानामर्थम् (यज्ञम्) करोति ॥ १ ॥

भावार्थः ।

हम अग्नि के ताईं किस प्रकार से (हवि) देवें इस दीप्ति मान के ताईं देवताओं को प्रिय कौनसी स्तुति कही जाए जो मरण धर्मियों में मरण रहित होता ऋत से युक्त सब से उत्तम यजन करने वाले (और) देवताओं के लिये (यज्ञ) करते हैं ॥ १ ॥

अग्नि के लिये क्या हवि दीजाए या कौन स्तोत्र उन की स्तुति में पढे जांय इस प्रकार ऋषियों की उत्कंठा पूर्वक प्रार्थना करने से अग्निदेव ने ही यज्ञ की विधि उन के हृदय में प्रकट की है ॥

अग्निर्देवता विराट्त्रिष्टुप्छन्दः ।११।११।५।११

योअध्वरेषुशन्तमऋतावा हो-

तातमूनमोभिराकृणुध्वम् । अग्नि-

र्यद्वेर्मर्तायदेवान् त्सचाबोधातिम-

नसायजाति। २ ।

यः	यः	जो
अध्वरेषु	यज्ञेषु	यज्ञों में
शम्ऽतमः	अतिसुखप्रदः	अत्यन्त सुख के देने वाला
ऋतऽवा	ऋतवान्	ऋत से युक्त
होता	होता	होता
तम्	तम्	उस को
ऊम्०	(पूरणः)	–
नमःऽभिः	नमस्कारैः	नमस्कारों से
आ	आ +	–
कृणुध्वम्	आ + कृणुध्वम्, अभिमुखीकुरुत	सामने करो
अग्निः	अग्निः	अग्नि
यत्	यत्	जो

वेः	वेतिगच्छतीत्यर्थः (वीगतौ,लडर्थेलङ्-पुरुषव्यत्ययः)	जाता है
मर्ताय	मनुष्याय	मनुष्यकेलिये
देवान्	देवान्	देवताओं को
सः	सः	वह
च	खलु (आ०को०)	सच मुच
बोधाति	जानाति (लेटयाडागमः)	जानता है
मनसा	मनसा	मन से
यजाति	पूजयति (लेटयाडागमः)	पूजन करता है

संस्कृतार्थः ।

(हे सखायः!) योयज्ञेष्वतिसुखप्रद ऋतवान् होता (अस्ति) तं नमस्कारै रभिमुखंकुरुत,अग्निर्यन्मनुष्याय देवान् (प्रति) गच्छति सः खलु (तान्) जानाति मनसा (च) पूजयति ॥ २ ॥

भाषार्थः ।

(हे मित्रो!) जो यज्ञों में अत्यन्त सुख देने वाले

ऋत से युक्त होता (है) उस को नमस्कारों से सामने करो, अग्नि जो मनुष्य के लिये देवताओं के पास जाते हैं सचमुच वह (उनको) जानते हैं (और मन से (उनका) पूजन करते हैं ॥ २॥

देवताओं से मित्रता करने के लिये यह अत्यन्त आवश्यक है कि हम उन के पास जाने वाले उन को जानने वाले और उन को मन से (अर्थात दिल से) पूजने वाले अग्नि को वारवार नमस्कार द्वारा अपने सम्मुख करें ॥

अग्निर्देवता निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः ।१०।११।११।११

स हि क्रतुः स मर्यः स साधुर्मित्रो न भूदद्भुतस्य रथीः । तं मेधेषु प्रथमं देवयन्तीर्विश उप ब्रुवते दस्ममारीः ॥३॥

सः	सः	वह
हि	एव	ही
क्रतुः	यज्ञः	यज्ञ

सः	सः	वह
मर्त्यः	मनुष्यः,यजमान इत्यर्थः	यजमान
सः	सः	वह
साधुः	(पर कार्यणाम्) साधकः	(दूसरोंके काम)-सिद्धकरनेवाला
मित्रः	मित्रम् लिङ्गव्यत्ययश्छान्दसः)	मित्र
न	इव	कीन्याई
भूत्	अभूत् (अडभावः)	हुआ है
अद्भुतस्य	अद्भुतस्य(धनस्य)	अद्भुत(धन) के
रथीः	प्रापयिता	प्राप्तकरानेवाला
तम्	तम्	उसको
मेधेषु	यज्ञेषु	यज्ञों में
प्रथमम्	पूर्वम्	पहिले

दे॒व॒ऽयन्ती॑:	देवानात्मनइच्छन्त्यः (पूर्वसवर्णदीर्घः)	देवताओंकीकामना करती हुई
वि॒श॑:	+ विशः	–
उप॑	उप +	–
ब्रु॒व॒ते॒	उप+ब्रुवते सम्बोधयन्ति	बुलाते हैं
द॒स्मम्	अद्भुतम्	आश्चर्य्यरूप को
आरी॑:	आरीः + विशः आर्य्यप्रजाः	आर्य्यप्रजाएं

संस्कृतार्थः ।

सः (अग्निः) एव यज्ञः स यजमानः सोऽद्भुतस्य (धनस्य) प्रापयिता सुहृदिव (परार्थानाम्) साधकः (चाऽस्ति, अतः) देवान्कामयमाना आर्य्य प्रजा यज्ञेषु तमद्भुतरूपं पूर्वं सम्बोधयन्ति ॥ ३ ॥

भाषार्थ ।

वह (अग्नि) ही यज्ञ (हैं) वही यजमान (हैं) वह अद्भुत (धन) के प्राप्त कराने वाले (और) मित्र

की न्याईं (दूसरों के काम) सिद्ध करने वाले (हैं इस लिये) देवताओं की कामना करने वाले आर्य्य लोग यज्ञों में उस आश्चर्य्यरूप को पहिले बुलाते हैं ॥३॥

यज्ञ रूप प्रजापति (परमात्मा) अग्नि है और यजमानरूप जीवात्मा भी अग्नि है धन के देने वाले और सब के मित्र अग्नि हैं इसी लिये आर्यलोग यज्ञों में पहिले अग्नि की स्तुति करते हैं।

अग्निर्देवता निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः १०।११।११।११।

स नो॑ नृ॒णां नृत॑मो रि॒शादा॑ अ॒ग्निर्गिरोऽव॑सा वेतु धी॒तिम्। तना॑ च॒ ये म॒घवा॑नः॒ शवि॑ष्ठा॒ वाज॑प्रसूता इ॒षय॑न्त॒ मन्म॑ ।४।

सः	सः	वह
नः	अस्माकम्	हमारी
नृणाम्	नराणाम् (मध्ये)	नरों के (बीच)

नृऽतमः	नरोत्तमः	नरोत्तम
रिशादाः	रिशाःशत्रवस्तेषा-मत्ता	शत्रुओं को भक्षण करने वाला
अग्निः	अग्निः	अग्नि
गिरः	स्तुतीः	स्तुतियों को
अवसा	स्पृहया (आ॰को॰)	इच्छा के साथ
१ वेत	कामयताम्	१कामना करे
धीतिम्	भक्तिम् (आ॰को)	भक्ति को
तना	धनेन (निघं॰२।१०)विभक्तेराल्वम्	धन से
च	च	और
ये	ये	जो
मघऽवानः	धनवन्तः	धनवान
शविष्ठाः	प्रबलाः	प्रबल

२ वाजऽप्र सूताः	धनेन प्रेरिताः	धन से प्रेरितहुए२
इषयन्त	इच्छन्तु (इषइच्छायांलोट्-थैलङ्लघूपध गुणा-भावश्च)	इच्छा करें
मन्म	स्तोत्रम् (भा॰फो॰)	स्तोत्र को

संस्कृतार्थः ।

नराणाम् (मध्ये) नरोत्तमः शत्रूणामत्ता (च) सोऽग्निरस्मत्कृताः स्तुतीर्भक्तिम् (च) स्पृहया कामयताम्, ये च धनेन प्रबला धनवन्तः (सन्ति ते) धनेन प्रेरिताः (सन्तः) स्तोत्रमिच्छन्तु ॥ ४ ॥

भाषार्थः ।

नरों में नरोत्तम (और) शत्रुओं के भक्षण करने वाले वह अग्नि हमारी स्तुतियों को (और) भक्ति को इच्छा के साथ कामना करें, और जो धन के द्वारा प्रबल हुए धनवान (हैं वे) धन से प्रेरित होकर स्तोत्र की इच्छा करें॥४॥

(१) अग्नि से हमारी गाढ प्रीति तभी हो सकती है कि जिस प्रकार हम उन को मित्रता की कामना करते हैं वह भी उत्कंठा पूर्वक हमारी स्तुति और भक्ति को कामना करें।

(२) हमारी जाति के धनवानों को उनका धन अग्नि के स्तोत्र सुनने के लिये प्रेरणा करे दुर्व्यसनों की ओर प्रेरण न करे।

अग्निर्देवता निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः।१।१।१०।११।११

एवाऽग्निर्गोतमेभिर्ऋतावा वि-
प्रेभिरस्तोष्टजातवेदाः। सएषुद्यु-
म्नंपीपयत्सवाजं सपुष्टिंयातिजो-
षमाचिकित्वान्। ५।

एव ¹ ₈	एवम्	इस प्रकार
अग्निः	अग्निः	अग्नि
गोतमेभिः	गोतमवंशीयैः	गोतमवंशियों से

ऋतऽवा	ऋतवान्	ऋत से युक्त
विप्रेभिः	ऋषिभिः	ऋषियों से
अस्तोष्ट	स्तुतोऽभूत् (कर्मणिलुङ्)	स्तुतिकिया गया
जातऽवेदाः	जातानांवेदिता	उत्पन्न हुओंको-जाननवाला
सः	सः	उसने
एषु	एषु	इन में
द्युम्नम्	यशः (निघं० ४।२)	यश को
पीपयत्	वर्धितवान् (अडभावः)	बढ़ाया
सः	सः	उसने
वाजम्	धनम् (ओ०को)	धन को
सः	सः	उसने
पुष्टिम्	पुष्टिम्	पुष्टि को

१ याति	प्राप्नोति	प्राप्त होता है
१ जोषम्	प्रीतिम्	प्रीति को
आ	समन्तात्	चारों ओर से
चिकित्वान्	जानन्	जानता हुआ

संस्कृतार्थः ।

एवमृतवानग्निर्गोतमवंशीयैर्ऋषिभिः स्तुतोऽभूत,जातानांवेदिता सएषु यशः सधनंस (एव) पुष्टिं वर्धितवान्(सः)समन्ताज्जानन्(सन्)प्रीतिंप्राप्नोति।५।

भावार्थः ।

इस प्रकार ऋत से युक्त अग्नि गोतम वंशी ऋषियों से स्तुति किये गए हैं उत्पन्न हुओं के जानने वाले उसने इनमें कीर्ति को उस ने धन को (और) उसी ने पुष्टि को बढाया है (वह) सब ओर से जानते हुए प्रीति को प्राप्त होते हैं ॥ ५ ॥

(१) मनुष्यों के मन की वृत्तियों को जानने वाले अग्निदेव भक्त को जानते हैं और उस से प्रीति को प्राप्त होते हैं ।

इति सप्त सप्ततितमं सूक्तम् ।

ऋ० मं० १ सू० ७८

अग्निर्देवता राहूगणो गोतम ऋषिः

विनियोग लैङ्गिक।

जिस अग्नि को गोतम कुल वाले वाणी द्वारा सन्मुख करते थे, धन की कामना वाला गोतम ऋषि वाणी से जिसको पूजा करता था जिस बहुत अन्न देने वाले को अङ्गिरा कुल के ऋषि बुलाते थे जिस वृत्र के अत्यन्त हनन करने वाले और आर्य शत्रुओं के कंपाने वाले के ताईं रहूगणवंशी मीठा वचन उच्चारण करते थे उस अग्नि की हम भी प्रकाश देने वाले मंत्रों द्वारा बार बार अत्यन्त स्तुति करें।

अग्निर्देवता गायत्रीछन्दः । ८ । ८ । ८

अभित्वागोतमागिरा जातवेदो

विचर्षणे । द्युम्नैरभिप्रणोनुमः । १ ।

अभि	अभिमुखम्	सामने
त्वा	त्वाम्	तुझ को
गोतमाः	गोतमाः	गोतम कुलवाले
गिरा	वाचा	वाणी से

जातऽवेदः	हे जातानांवेदितः!	हे उत्पन्न हुओं के जानने वाले
विऽचर्षणे	हे विशेष दृष्टि-युक्त!	हे विशेष दृष्टि वाले
द्युम्नैः	द्योतमानैः(मन्त्रैः) (सा॰भा॰)	प्रकाश युक्तः मंत्र से
अभि	अत्यन्तम् (भा॰को॰)	अत्यन्त
प्र	प्र+	—
नोनुमः	प्र+नोनुमः, पुनः पुनः स्तुमः	हम वार २ स्तुति करते हैं

संस्कृतार्थः ।

हे जातानां वेदितः! हे विशेष दृष्टि युक्त! (वयम्) गोतमास्त्वांवाचाऽभिमुखम् (कुर्मः) द्योतमानैः (मन्त्रैश्च) पुनः पुनरत्यन्तं स्तुमः । १ ।

भाषार्थः ।

हे उत्पन्न हुओंके जाननेवाले! हे विशेष दृष्टिवाले! गोतम कुल वाले हम आप को वाणी द्वारा सामने (करते हैं और) प्रकाश युक्त (मंत्रों) द्वारा वार २ अत्यन्त स्तुति करते हैं । १ ।

(१) प्रकाश युक्त मंत्र अर्थात जिन से हृदय में प्रकाश उत्पन्न हो और भ्रमका और अविद्या रूपी अंधकार दूर हो।

अग्निर्देवता गायत्रीछन्दः ८।८।८।

तमु त्वा गोतमो गिरा रायस्कामो दुवस्यति। द्युम्नैरभि प्र णोनुमः।२।

तम्	तम्	उसको
ऊम्०	खलु	सचमुच
त्वा	त्वाम्	तुझ को
गोतमः	गोतमः	गोतम
गिरा	वाचा	वाणी से
रायःऽकामः	धनकामः	धन की कामना वाला
दुवस्यति	परिचरति	पूजता है
द्युम्नैः	द्योतमानैः (मन्त्रैः)	प्रकाश युक्त (मन्त्रों) से

अभि	अत्यन्तम्	अत्यन्त
प्र	प्र+	—
नोनुमः	प्र+नोनुमः,पुनः पुनः स्तुमः	हम वार २ स्तुति करते हैं

संस्कृतार्थः ।

तं त्वां धनकामो गोतमः वाचा खलु परिचरति (वयमपि) द्योतमानैः (मन्त्रैः) पुनःपुनरत्यन्तं स्तुमः।२।

भावार्थः ।

उस आप को धन की कामना वाला गोतम सच मुच वाणी से पूजता है (और) हम(भी) प्रकाश युक्त (मंत्रों) से वार २ अत्यन्त स्तुति करते हैं । २ ।

अग्निर्देवता गायत्रीछन्दः ।८।८।८

तमु॑त्वावाज॒सात॑म मङ्गि॒र॒स्व

द्ध॑वामहे । द्यु॒म्नैर॒भिप्र णो॑नुमः । ३ ।

तम्	तम्	उस को
उम्०	खलु	सच मुच

त्वा	त्वाम्	तुझ को
वाजऽसा-तमम्	अतिशयेनाऽन्नस्य दातारम्	अत्यन्त अन्न के देने वाले को
अङ्गिरस्वत्	अङ्गिरस इव	अंगिराओं की न्याईं
हवामहे	आह्वयामः	हम बुलाते हैं
द्युम्नैः	द्योतमानैः (मन्त्रैः)	प्रकाश युक्त (मन्त्रों) से
अभि	अत्यन्तम्	अत्यन्त
प्र	प्र+	–
नोनुमः	प्र + नोनुमः पुनः पुनः स्तुमः	हम बार २ स्तुति करते हैं

संस्कृतार्थः।

अतिशयेनाऽन्नस्यदातारं तंत्वामङ्गिरस इव (वयम्) खल्वाऽऽह्वयामः, द्योतमानैः (मन्त्रैश्च) पुनः पुनरत्यन्तं स्मतुः ।३।

भावार्थः।

अत्यन्त अन्न के देने वाले उस आप को सच मुच हम अंगिराओं की न्याईं बुलाते हैं (और) प्रकाश युक्त (मंत्रों) से बार २ अत्यन्त स्तुति करते हैं। ३।

अग्निर्देवता गायत्रीछन्दः ८।८।८।

तमुत्वावृत्रहन्तमं योदस्यूँरव-
धूनषे। द्युम्नैरभिप्रणोनुमः ।४।

तम्	तम्	उसको
ऊम्०	खलु	सचमुच
त्वा	त्वाम्	तुझ को
वृत्रहन्ऽ तमम्	वृत्रस्याऽतिशयेन हन्तारम्	वृत्र के खूब मारने वाले को
यः	यः	जो
दस्यून्	आर्य्यशत्रून्	आर्य्यों के शत्रुओं को

अव॒ऽधू॒नु॒षे	कम्पयसि	कंपाते हो
द्यु॒म्नैः	द्योतमानैः(मन्त्रैः	प्रकाश युक्त (मन्त्रों) से
अ॒भि	अत्यन्तम्	अत्यन्त
प्र	प्र+	–
नो॒नु॒मः	प्र+नोनुमः,पुनः पुनः स्तुमः	हम वार२ स्तुति करते हैं

संस्कृतार्थः।

यः (त्वम्) आर्य्यशत्रून् कम्पयसि वृत्रस्याऽतिशयेन हन्तारं तं त्वां खलु द्योतमानैः(मन्त्रैः) पुनः पुनरत्यन्तं स्तुमः। ४।

भावार्थः।

जो आप आर्य्यों के शत्रुओं को कंपाते हो वृत्र क अत्यन्त नाश करने वाले उस आप की हम सचमुच वार २ अत्यन्त स्तुति करते हैं। ४।

अग्निर्देवता गायत्रीछन्दः ।८।८।८

अवो॑चाम॒ रहू॑गणा अ॒ग्नये॒ मधु॑म-

त्वचः । द्युम्नैरभिप्रणोनुमः ।५।

अवोचाम	अवादिष्म	हमने कहा है
रहूगणाः	रहूगण वंशीयाः	रहूगणवंशियों ने
अग्नये	अग्नये	अग्नि के ताईं
मधुऽमत्	माधुर्य्योपेतम्	मिठास वाले को
वचः	वचः	वचन को
द्युम्नैः	द्योतमानैः(मन्त्रैः)	प्रकाश युक्त (मन्त्रों) से
अभि	अत्यन्तम्	अत्यन्त
प्र	प्र+	—
नोनुमः	प्र+नोनुमः,पुनः पुनः स्तुमः	हम बार २ स्तुति करते हैं

संस्कृतार्थः ।

रहूगण वंशीयाः (वयम्) अग्नये माधुर्य्योपेतं

वचोऽवादिष्म तं (वयम्) द्योतमानैः (मन्त्रैः) पुनः पुनरत्यन्तं स्तुमः । ५ ।

भावार्थः ।

रहूगणवंशी हमने अग्नि के ताईं मिठास वाले वचन को कहा है (उस की हम) प्रकाश युक्त(मंत्रों) से बार २ अत्यन्त स्तुति करते हैं। ५ ।

इत्यष्ट सप्ततितमं सूक्तम्।

ऋ०मं० १ सू० ७९ ।

राहूगणो गौतम ऋषिः ।

विनियोग—पहले तीन मंत्र प्रातरनुवाक में आग्नेय क्रतु के त्रिष्टप्छन्द में पढ़े जाते हैं (आ०श्रौ० सू० ४।१३।७) और आश्विन शास्त्र में भी।

पहले दो मंत्र वर्षा की इच्छा से की हुई कारीरी इष्टि की याज्यानुवाक्या भी हैं (आ०श्रौ० सू०२।१३।७)

चौथा पांचवां और छठा मन्त्र आग्नेय क्रतु के उष्णिक्छन्द में पढ़े जाते हैं (आ०श्रौ० सू०४।१३।७ और आश्विन शास्त्र में भी।

सातवें से बारवें मंत्र तक आग्नेय क्रतु के गायत्रीछन्द में पढ़े जाते हैं (आ०श्रौ० सू०४।१३।७) और आश्विन शास्त्र में भी।

इस सूक्त के पहिले तीन मंत्रों में यह उपदेश है कि विद्युत जिस के द्वारा वर्षा होती है अग्नि का ही रूपान्तर है और वह द्वारा वर्षा के उत्पन्न होने में विद्युत की स्तुति,वर्षा के क्रम का

ऋत्विजों द्वारा चिन्तन (जैसे दूसरे मन्त्र में है) और देवताओं को प्रसन्नता ये तीनों कारण हैं। अगले मन्त्रों में धन, यश, पाप की शक्तियों और शत्रुओं के नाश, रक्षा, युद्ध में विजय, सुख, दीर्घायु स्तुतिशीलता, आक्रमण करने वाले के पतन और विघ्न के निवारण के लिये प्रार्थना है।

मध्यमस्थानोवैद्युतोऽग्निर्देवता निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः ११।११।१०।११।

हिरण्यकेशोरजसोविसारे ऽहि-र्धुनिर्वातइवध्रजीमान्। शुचिभ्राजा उषसोनवेदा यशस्वतीरपस्युवोन-सत्याः। १।

हिरण्यऽ-केशः	हिरण्यकेशः	सुनहरी बालों वाला
रजसः	आकाशस्य	आकाश के
विऽसारे	विस्तारे (आ०को०)	विस्तारमें

अहिः	सर्पः	सर्प
धुनिः	कम्पन युक्तः	कांपने वाला
वातःऽइव	वायुरिव	वायु की न्याईं
ध्रजीमान्	अतिशीघ्रगति-युक्तः (ध्रजगतौ भावइनि सतिमतुप्)	अत्यन्त शीघ्र चलने वाला
शुचिऽ-भ्राजाः	शुद्धदीप्ति युक्तः	स्वच्छ प्रकाश वाला
उषसः	उषसः	उषा के
२ नवेदाः	मेधावी,ज्ञातेत्यर्थः (निघं०३।१५)	जानने वाला
यशस्वतीः	यशस्वत्यः (पूर्वसवर्ण दीर्घः)	यश वालीं
अपस्युवः	कर्मोत्सुकाः	कर्मको प्रेम करने वाला
न	इव	जैसे

सत्याः	सत्ययुक्ताः	सच्चीं

संस्कृतार्थः ।

(अग्निः) आकाशस्य विस्तारे हिरण्यकेशयुक्तः कम्पनयुक्तः सर्परूपो वायुरिवाऽतिशीघ्रगतियुक्तः (चाऽस्ति) शुद्ध दीप्तियुक्त उषसो ज्ञाता (सः) कर्मो-त्सुका यशस्वत्यः सत्ययुक्ताः(स्त्रियः)इव (अस्ति) ।१।

भाषार्थः ।

(अग्नि) आकाश के विस्तार में सुनहरी बालों वाले कांपने वाले ; सर्परूप (और) वायु की न्याईं अति शीघ्र चलने वाले (हैं वह) स्वच्छ प्रकाश वाले उषा के जानने वाले (और)कर्म को प्रेम करने वालीं यश वाली सच्ची (स्त्रियों) की न्याईं (हैं)।

आकाश के विस्तार में विद्युत रूप अग्नि है, जिस के सुनहरी बाल हैं जिस का रूप कांपते हुए सर्प की न्याईं है और जो वायु के वेग वाले हैं, यह वही अग्नि है जो उषःकालमें अग्निहोत्र के लिये प्रदीप्त किये जाने से उषा को जानने वाले कहे जाते हैं और जो घर के कामों में प्रयुक्त किये जाने से ऐसी स्त्रियों से उपमा दिये जाते हैं जो पतिव्रत को पालन करती हुई, प्रेम के साथ घर का काम करती हैं ।

मध्यमस्थानोवैद्युतऽग्निर्देवतात्रिष्टुप्छन्दः
११।११।११।११॥

आतेसुपर्णाअमिनन्तँएवैः कृष्णो

नोनावद्वृषभोयदीदम्। शिवाभिर्न-

स्मयमानाभिरागा त्पतन्तिमिहः

स्तनयन्त्यभ्रा।२।

आ	आ +	–
ते	तव	तरे
सुऽपर्णाः	सुपक्षाः (क्षण-प्रभाः)	सुन्दर पांखों वाली (दमक)
अमिनन्त	आ+अमिनन्त,ति राऽभूवन्(आ०को०)	छिप गई हैं
एवैः	गमनैः	चलने से
कृष्णाः	कृष्णवर्णाः	काले रंग वाले नं

नोनाव	भृशं जगर्ज	अत्यन्त गर्जा
वृषभः	वृषभः	बैल
यदि	यदा (सा०भा०)	जब
इदम्	अयम् (सोलुक्)	यह
शिवाभिः	कल्याण रूपाभिः	कल्याण रूप वालियों के साथ
न	इव	की न्याईं
स्मयमानाभिः	ईषद्धसन्तीभिः	मुस्कराती हुइयों के साथ
आ	आ+	–
अगात्	आ+अगात्, आगतवान्	आया है
पतन्ति	पतन्ति	गिरती हैं
मिहः	बिन्दवः (मिहसेचनेभावेक्विप्)	बूंदें

स्तनयन्ति	गर्जन्ति	गर्जते हैं
अभ्रा	अभ्राणि (शेर्लोपः)	मेघ

संस्कृतार्थः।

(हे विद्युद्रूपाऽग्ने!)यदाऽयं कृष्णवर्णः(मेघरूपः) वृषभःभृशं जगर्ज (तदा)त्वत्सुपक्षाः (क्षणप्रभाः)गमनैस्तिरोऽभूवन्(पुनः) कल्याणरूपाभिः स्मयमानाभिरिव(कणिकाभिर्वृष्टिः) आगतवती(इदानीम्)बिन्दवः पतन्ति, अभ्राणि (च) गर्जन्ति॥ २ ॥

भावार्थः।

(हे विद्युत रूप अग्नि) जब यह काले रंग का (बादल रूप) बैल अत्यन्त गर्जा (तब) सुन्दर पांखों वाली आपकी (दमक) चल कर अन्तर्धान होगई (फिर)कल्याण देनेवाली मुस्कराती सरीखी (कणिओं) के साथ (वृष्टि) आ पहुंची (अब) बूंदें गिरती हैं (और) बादल गर्ज रहे हैं ॥ २ ॥

जब बादल गरजता है उस समय बिजली की दमक शान्त होजाती है, इस का कारण यह है कि प्रकाश की गति शब्द की गति से अधिक है, पृथिवी पर विद्युत का प्रकाश पहिले पहुंचता है और गरज पीछे।

बादल की गरज के पीछे धीमी २ कणियां पड़ती हैं फिर बूंदें गिरती हैं और बादल गरज कर मूसलाधार वर्षा होती है।

मध्यमस्थानोवैद्युतोग्निर्देवता त्रिष्टुप्छन्दः

११।११।११।११

यदीमृतस्यपयसापियानो नयन्नृतस्यपथिभीरजिष्ठैः । अर्यमामित्रोवरुणःपरिज्मा त्वचंपृञ्चन्त्युपरस्ययोनौ । २ ।

यत्	यदा	जब
ईम्	(पूरणः)	–
ऋतस्य	यज्ञस्य	यज्ञ के
पयसा	(हवीरूपेण) अन्नेन (निघं०२।७)	(हविरूप) अन्नसे

पियानः	वर्धमानः (ओप्यायीवृद्धीव्यत्ययेन पीभावः)	बढता हुआ
नयन्	प्रापयन्	ले जाता हुआ
ऋतस्य	ऋतस्य	ऋत के
पथिऽभिः	मार्गैः	मार्गों से
रजिष्ठैः	ऋजुतमैः (इष्ठनिसति "विभाषर्जोश्छन्दसि" इति ऋकारस्य रत्वं टेर्लोपश्च)	अत्यन्त सीधों से
अर्य्यमा	अर्य्यमा	अर्य्यमा
मित्रः	मित्रः	मित्र
वरुणः	वरुणः	वरुण
परिऽज्मा	परितोगन्ता (मरुद्गणः)	मरुतगण

त्वचम्	अजिनम्	चर्म को
पृञ्चन्ति	संयोजयन्ति	संयुक्त करते हैं
उपरस्य	दिशः (आ०को०)	दिशा के
योनौ	स्थाने (आ०को०)	स्थान में

संस्कृतार्थः ।

यदा यज्ञस्य (हवीरूपेण) अन्नेन वर्धमानः (अयमग्निः) ऋतस्यर्जुतमैर्मार्गैः (देवानामर्थयज्ञम्) प्रापयन् (वर्त्तते तदा) अर्य्यमा मित्रो वरुणो मरुतः (च) दिशः स्थाने(अभ्ररूपम्)अजिनं संयोजयन्ति॥३॥

भावार्थः ।

जब यज्ञ के (हवीरूप) अन्न से बढते हुए (यह अग्नि) ऋत के अत्यन्त सीधे मार्गों से (देवताओं के लिये यज्ञ को) पहुंचाते हैं (तब) अर्य्यमा, मित्र, वरुण (और) मरुत दिशा के स्थान में (बादल रूपी) चर्म को संयुक्त करते हैं ॥ ३ ॥

जब मनुष्यों से दी हुई हवि देवताओं को पहुंचती है तब वे भी चर्म बिछा कर यज्ञ की तैय्यारी करते हैं जो समाप्त होने पर वर्षा रूप में मनुष्यों को पहुंचता है।

अग्निर्देवता, उष्णिक् छन्दः ।८।८।१२।।

अग्नेवाजस्यगोमत ईशानःस-
हसोयहो। अस्मेधेहिजातवेदोमहि
श्रः ।४।

अग्ने	हे अग्ने !	हे अग्नि
वाजस्य	अन्नस्य	अन्नका
गोऽमतः	गोभिर्युक्तस्य	गौओं से युक्त का
ईशानः	स्वामी	स्वामी
सहसः	बलस्य	बल का
यहो०	हे पुत्र !	हे पुत्र
अस्मे०	अस्मासु ः (सप्तम्याःशेआदेशः)	हम में

धेहि	स्थापय	स्थापन करो
जातऽवेदः	हेजातानां वेदितः	हे उत्पन्न हुओंके जानने वाले
महि	महत्	महान्
श्रवः	यशः	यश को

संस्कृतार्थः।

हे बलस्य पुत्र ! जातानांवेदितः ! अग्ने ! गोभिर्युक्तस्याऽन्नस्यस्वामी (त्वम्) अस्मासु महद्यशः स्थापय ॥ ४ ॥

भावार्थः।

हे बल के पुत्र ! उत्पन्न हुओं के जानने वाले अग्नि ! गौओं से युक्त अन्न के स्वामी आप हम में महान यश को स्थापन करें ॥ ४ ॥

(१) अग्नि बल के पुत्र इसलिये हैं कि अरणियों में से मथन द्वारा मनुष्य के बल से उत्पन्न होते हैं।

आग्नर्देवता उष्णिक् छन्दः ८।८। १२

सद्द्यानोवसुष्कवि रग्निरीळे-

न्यो॑ गि॒रा । रे॒वद॒स्मभ्यं॑ पुर्वणीक दीदिहि ॥ ५ ॥

सः	सः	वह
इ॒धा॒नः	दीपनशीलः	चमकने वाला
व॒सुः	धनरूपः	धन रूप
क॒विः	मेधावी	बुद्धिमान
अ॒ग्निः	अग्निः	अग्नि
ई॒ळेन्यः	स्तोतव्यः (ईडस्तुती, औणादिक-एन्यप्रत्ययः)	स्तुति करने के योग्य
गि॒रा	वाचा	वाणी से
रे॒वत्	धनयुक्तं यथास्यात्तथा (रयिर्धनमस्यास्तीति, मतुपि सति सम्प्रसारणादिच्छान्दसम्	धनसे युक्त होकर

अस्मभ्यम्	अस्मभ्यम्	हमारे लिये
पुरुऽअनीक	हे बहुमुख !	हे बहुतमुखोंवाले
दीदिहि	दीप्यस्व	प्रकाश युक्त हो

संस्कृतार्थः ।

सदीपनशीलोधनरूपोमेधाव्यग्निर्वाचास्तोतव्यः (अग्नि) हे बहुमुख ! (त्वम्) अस्मभ्यं धनयुक्तं यथा स्यात्तथादीप्यस्व ॥ ५ ॥

भावार्थः ।

वह चमकने वाले, धन के स्वामी, बुद्धिमान अग्नि,वाणी से स्तुति करने के योग्य (हैं;) हे बहुत मुखों वाले ! आप हमारे लिये धन से युक्त होकर प्रकाशित होवें ॥ ५ ॥

(१) अग्नि की ज्वालाएं उस के अनेक मुख हैं ।

अग्निर्देवता उष्णिक्छन्दः ८।८।१२

क्षपोराजन्नुतत्मना ऽग्नेवस्तो-

रुतोषसः । सतिग्मजम्भरक्षसोदह-

प्रति ॥ ६ ॥

क्षपः	रात्रीः (अत्यन्तसंयोगे द्वितीया)	रात्रियों में
राजन्	द्योतमानः	प्रकाशित होकर
उत्	अपिच	और भी
त्मना	आत्मना (मन्त्रेष्वित्याकारलोपः)	अपने से
अग्ने	हे अग्ने !	हे अग्नि
वस्तोः	अहानि	दिनों में
उत	अपिच	और
उषसः	उषसः (अत्यन्तसंयोगेद्वितीया)	उषाकाल में
सः	सः	वह
तिग्मजम्भ	हे तीक्ष्णदन्त !	हे तीखे दांतों वाले
रक्षसः	राक्षसान्	राक्षसों को

दह	प्रात+दह	खूब जलाओ
प्रति	प्रति+	–

संस्कृतार्थः

हे तीक्ष्णवन्त ! अग्ने ! सः (त्वम्) आत्मना द्योतमानः (सन्) रात्रिषु, दिनेषु च, उषःस्वपि राक्षसान् सम्यग्दह ॥ ६ ॥

भावार्थः।

हे तीखे दांतों वाले अग्नि ! वह आप स्वयं प्रकाशित होकर रात्रियों में दिनों में और उषा कालों में भी राक्षसों को खूब जलावें । ६ ।

हमारे आस पास में रहने वाले राक्षसों के जल कर नष्ट होने से ही हम रोग पाप और भय से बच सकते हैं।

'अग्निर्देवता गायत्रीछन्दः ।८।८।८

अवानोअग्नऊतिभि र्गायत्रस्य-

प्रभर्मणि। विश्वासुधीषुवन्द्य ।७।

अव	रक्ष	रक्षा करो

नः	अस्मान्	हम को
अग्ने	हे अग्ने !	हे अग्नि
ऊतिऽभिः	रक्षाभिः	रक्षाओं के द्वारा
गायत्रस्य	स्तोत्रस्य (धा०को०)	स्तोत्र के
प्रऽभर्म्मणि	निवेदने (ऋ०१।५७।१)	अर्पण करने पर
विश्वासु	सवपु	सब में
धीषु	कर्म्मसु	कर्म्मों में
वन्द्य	हे स्तुत्य !	हे स्तुति करनेके योग्य

संस्कृतार्थः।

हे सवपु कर्म्मसु स्तुत्य! अग्ने! (त्वम्) स्तोत्रस्य निवेदने (सति) अस्मान् (निज) रक्षाभो रक्ष।७।

भावार्थः

हे सम्पूर्ण कर्म्मों में स्तुति करने योग्य अग्नि

आप स्तोत्र के अर्पण करने पर हमको (अपनी) रक्षा-ओं के द्वारा रक्षित करो । ७ ।

अग्निर्देवता गायत्रीछन्दः ।८।८।८

आनोऽअग्नेरयिंभर सत्रासाहं-

वरेण्यम् । विश्वासुपृत्सुदुष्टरम् ।८।

आ	आ+	—
नः	अस्मभ्यम्	हमारे लिये
अग्ने	हे अग्ने !	हे अग्नि
रयिम्	धनम्	धन को
भर	आ+भर,आहर (ह्रस्यभत्वम्)	लाओ
सत्राऽसहम्	सर्वदाजयशीलम्	सदा जीतने वाले को
वरेण्यम्	वरणीयम्	वरने योग्य को

विश्वासु	सर्वेषु	सब में
पृत्सु	सङ्ग्रामेषु (पृतनाशब्दस्यपृद् भावः)	युद्धों में
दुस्तरम्	तरीतुमशक्यम्,	न जीते जाने वाले को

संस्कृतार्थः ।

हे अग्ने ! (त्वम्) अस्मभ्यं सर्वदा जयशीलं सर्वेषु सङ्ग्रामेषु तरीतुमशक्यं वरणीय धनमाहर ।८।

भावार्थः ।

हे अग्नि! आप हमारे लिये सदा जय शील सब युद्धों में न जीते जाने वाले वरने योग्य धन को लाओ । ८ ।

ऐसा धन जो किसी युद्ध में हम को न हारने दे और जिसके द्वारा हम सदा जय को प्राप्त होवें ।

अग्निर्देवता गायत्रीछन्दः ।८।८।८

आनोअग्नेसुचेतुना रयिंविश्वा-

युपोषसम्।मार्डीकंधेहिजीवसे । ९ ।

आ	आ+	–
नः	अस्माकम्	हमारे
अग्ने	अग्ने !	हे अग्नि
सुऽचेतुना	सुष्ठुध्यानेन	खूब ध्यान से
रयिम्	धनम्	धन को
विश्वायुऽपोषसम्	सर्वस्मिन्नायुषिपोषकम् (सकारलोपश्छान्दसः)	संपूर्ण आयु में पालने वाले को
मार्डीकम्	मृडीकं सुखं तद्धेतुभूतम्, सुखप्रदमित्यर्थः	सुखकेदेने वाले को
धेहि	आ+धेहि स्थापय	स्थापन करो
जीवसे	जीवनाय	जीवन के लिये

संस्कृतार्थः।

हे अग्ने! (त्वम्) अस्माकं जीवनाय सुखप्रदं सर्व-

ास्मन्नायुषि पोषकम् (च) धनं सुष्ठुध्यानेन स्था-
ापय। ९।

भाषार्थः।

हे अग्नि! आप हमारे जीवन के लिये सुख के देने वाले (और) सारी आयु में पालने वाले धन को खूब ध्यान से स्थापन करें। ९।

अग्निर्देवता गायत्रीछन्दः ।८।८।८

प्रपतास्तिग्मशोचिषे वाचोगो-

तमाऽग्नये। भरस्वसुम्नयुर्गिरः ।१०।

प्र	प्र+	—
पूताः	पूताः	पवित्रों को
तिग्मऽ-शोचिषे	तीक्ष्णज्वालाय	तीखी लाटों वाले के लिये
वाचः	वाचः	वाणियों को
गोतम	हे गोतम !	हे गोतम

अग्नये	अग्नये	अग्नि के लिये
भरस्व	प्र+भरस्व, निवेदय	अर्पण कर
सुम्नऽयुः	सुम्नं सुखं तदात्मनइच्छन् (सुम्नमितिसुखनाम निघं०३।६)	सुख की इच्छा करता हुआ
गिरः	स्तुतिरूपाः	स्तुति रूपों को

संस्कृतार्थः

हे गोतम ! आत्मनः सुखमिच्छन् (त्वम्) तीक्ष्ण ज्वालायाऽग्नयेस्तुतिरूपा पूतावाचो निवेदय ।१०।

भापार्थः ।

हे गोतम! सुख की इच्छा करते हुए तुम तीखी-लाटों वाले अग्नि के लिये स्तुतिरूप पवित्र वाणियों को अर्पण करो । १० ।

आग्नर्देवता गायत्रीछन्दः ।८।८।८

योनोअग्नेभिदासत्य न्तिदूरे-

पदीष्टसः। अस्माकमिद्वृधेभव ।११।

यः	यः	जो
नः	अस्मान्	हम को
अग्ने	हे अग्ने !	हे अग्नि
अभिऽदासति	आक्रमति	दबाता है
अन्ति	अन्तिके	समीप
दूरे	दूरे	दूर
पदीष्ट	पततु	गिरे
सः	सः	वह
अस्माकम्	अस्माकम्	हमारी
इत्	(पूरणः)	—
वृधे	वृद्धयै	वृद्धि के लिये

भव	भव	तू हो

संस्कृतार्थः

हे अग्ने ! अन्तिके दूरे (चाऽवस्थितः) योऽस्मानाक्रमति सपततु (त्वञ्च) अस्माकंवृद्धयै भव ।११।

भावार्थः।

हे अग्नि पास में (और) दूर में (ठैरा हुआ) जो हम को दबाता है वह गिरे (और) आप हमारी वृद्धि के लिये होवें । ११ ।

अग्निर्देवता गायत्रीछन्दः ।८।८।८

सहस्राक्षोविचर्षणि रग्नीरक्षांसिसेधति। होतागृणीतउक्थ्यः ।१२

सहस्रऽ-अक्षः	सहस्रनेत्रः	हजारों नेत्रोंवाला
विऽचर्षणिः	विशेषदृष्टियुक्तः	विशेष दृष्टिवाला
अग्निः	अग्निः	अग्नि

रक्षांसि	राक्षसान्	राक्षसों को
सेधति	अपसारयति (आ०को०)	हटाता है
होता	होता	होता
गृणीते	स्तौति	स्तुति करता है
उक्थ्यः	प्रशस्यः (निघं०३।२)	प्रशंसा के योग्य

संस्कृतार्थः ।

सहस्रनेत्रः प्रशस्यो होता विशेष दृष्टि युक्तः (च)अग्नीराक्षसानपसारयति (देवाँश्च) स्तौति ॥१२॥

भावार्थः ।

हजारों नेत्रों वाले प्रशंसा के योग्य होता (अ र) विशेष दृष्टि वाले अग्नि राक्षसों को हटाते हैं (अ र देवताओं की) स्तुति करते हैं। १२।

- अग्निदेव हमारे अहित को करने वाले राक्षसों को जलाते हैं और हित को करने वाले देवताओं की स्तुति करते हैं जैसा जलते समय अग्नि के शब्द से प्रतीत होता है ।

इत्येकोनाऽशीतितमं सूक्तम् ।

ऋ० मं० १ सू० ८०

इन्द्रोदेवता गौतमऋषिः।

विनियोग—पृष्ठ्यपडह के पांचव दिन मरुत्वतीय शस्त्र में यह सूक्त पढा जाता है (आ० ७।१२।९)

पहला मंत्र माध्यन्दिन सवन में अच्छावाक के लिये स्तोत्रियानुरूप है (आ०७।४।४)।

इस सूक्त में कई प्रकार से इन्द्र के वृत्र वध रूपी कर्मको वर्णन किया है ९वें, मंत्र में बहुत उपासकों को इकट्ठा मिल कर स्तुति करने का उपदेश है यह सूक्त मन को बडे कामों के लिये विशेष कर शत्रुवध के लिये उत्तेजित करने वाला और इन्द्र के राज्य में निर्भयता पूर्वक रहने के लिये प्रेरणा करने वाला है॥

इन्द्रोदेवता पङ्क्तिश्छन्दः।८।८।८।८।८।

इत्था हि सोम इन्मदे ब्रह्माचकार वर्धनम्। शविष्ठवज्रिन्नोजसा पृथिव्या निः शशा अहि मर्चन्ननु स्वराज्यम्॥१॥

१ इत्था	इत्थम्	इस प्रकार
हि	खलु	सच मुच
सोमे	सोमे (पीतेसति)	सोम के (पीने)पर
इत्	(पूरणः)	—
मदे	मदे	मद में
ब्रह्मा	स्तोता (सा०भा०)	स्तोता ने
चकार	चकार	किया
वर्धनम्	वर्धनम्	बड़ाई को
शविष्ठ	हे बलवत्तम् !	हे सब से अधिक बलवान
वज्रिन्	हे वज्रिन् !	हे वज्रधारी
ओजसा	बलेन	बल से
पृथिव्याः	पृथिव्याः	पृथिवी से

निः	निः+	–
शशाः	निः+शशाःशासनं कृत्वानिरगमयः (शासु अनुशिष्टौ लङिशपोलुकिप्राप्ते श्लुः,अडभावश्च)	तूने दण्ड देकर निकाल दिया
अहिम्	वृत्रम्	वृत्र को
२ अर्चन्	अनु+अर्चन्, प्रकाशयन् (आ०को०)	प्रकाशित करता हुआ
अनु	+अनु	–
२स्वऽराज्यम्	स्वराज्यम्	अपने राज्य को

संस्कृतार्थ।

हे बलवत्तम (इन्द्र!) इत्थं खलु सोमे (पीते) मदे (सति) स्तोता (तव) वर्धनं चकार हे वज्रिन्! (त्वम्) शासनंकृत्वा वृत्रं बलेन निरगमयः (त्वम्) स्वराज्यं प्रकाशयन् (वर्तसे) ॥१॥

भाषार्थः ।

हे सब से अधिक बलवान (इन्द्र) सचमुच इस प्रकार सोम पीकर मदमें स्तोताने (आप की) बडाई की है, हे वज्रधारी! आपने वृत्र को दण्ड देकर बल से निकाल दिया (आप) अपने राज्यको प्रकाशित करते हुए(विराजमान हैं) ।१।

१ इस प्रकार अर्थात जिस प्रकार इस सूक्त में आपकी बडाई की जाती है उसी तरह पूर्वकाल में सोम के मद में ऋषियों ने आप की बडाई की थी ॥

२ अपने राज्य को प्रकाशित करते हुए अर्थात इन बल के कर्मो से अपनी महिमा और अखण्ड राज्य को सब पर प्रकट करते हुए विराजते हैं ।

इन्द्रोदेवता पङ्क्तिश्छन्दः ।८।८।८।८।८

सत्वामदद्वृषामदः सोमःश्ये-
नाभृतःसुतः । येनावृत्रंनिरद्भ्यो
जघन्थवज्रिन्नोजसा ऽर्चन्ननुस्व-
राज्यम् । २

सः	सः	उसने
त्वा	त्वाम्	तुझ को
अमदत्	मदयुक्तंकृतवान्	मदसे युक्त किया है
वृषा	वीर्य्यवान्	वीर्य से युक्त
मदः	मदरूपः	मद रूप
सोमः	सोमः	सोम ने
१ श्येनऽ-आभृतः	श्येनेनाऽऽहृतः (ह्रस्वमत्वम्)	श्येनसे लायाहुआ
सुतः	निष्पीडितः	निचोड़ा हुआ
येन	येन	जिससे
वृत्रम्	वृत्रम्	वृत्र को
निः	निः +	–

अ॒त्ऽभ्यः	अद्भ्यः	जलों के लिये
ज॒घन्थ	निः+जघन्थ, नितरां हतवानसि	खूब मारा
व॒ज्रि॒न्	हे वज्रिन् !	हे वज्रधारी
ओज॑सा	बलेन	बल से
अर्च॑न्	अनु + अर्चन् प्रकाशयन्	प्रकाशित करता हुआ
अनु॑	+ अनु	–
स्व॒ऽराज्य॑म्	स्वराज्यम्	अपने राज्य को

संस्कृतार्थः।

हे वज्रिन् ! श्येनेनाऽऽहृतोनिष्पीडितः (च) वीर्ययुक्तो मदरूपः स सोमस्त्वां मदयुक्तंकृतवान् येन (त्वम्) वृत्रं बलेन जलेभ्यः (पृथक्कृत्वा) नितरांहतवानसि (त्वम्) स्वराज्यं प्रकाशयन् (वर्तसे)

भाषार्थः।

२ हे वज्रधारी! श्येन से लाए हुए (और) निचोड़े हुए वीर्ययुक्त उस मद रूप सोमने आपको मद से

युक्त किया है जिस से आपने बल द्वारा वृत्र को जलों से (अलग करके) खूब मारा, आप अपने राज्य को प्रकाशित करते हुए (विराजमान हैं) ॥ २ ॥

१ श्येन (अर्थात बाज) विद्युत है जो कभी कभी पृथिवी पर इस प्रकार गिरती हुई देखी जाती है जैसे श्येन पक्षी पर । सोम वह प्रकाश या अग्नि है जो वर्षा के जलों के साथ मिल कर पृथिवी पर गिरता है विद्युत रूपी श्येन वर्षा का हेतु होने से सोम के हरण का भी हेतु है, जब प्रकाश या अग्निरूपी सोम वर्षा द्वारा पर्वत पर गिरता है तब लताओं में प्रवेश करके उस के रस में मद को और उन गुणों को जो सोमरस में पाए जाते हैं स्थापन करता है ॥

इन्द्रोदेवता पङ्क्तिश्छन्दः।८।८।८।८।८

प्रेह्यभीहिधृष्णुहि नतेवज्रोनि-
यंसते । इन्द्रनृम्णंहितेशवोहनोवृ-
त्रंजयाअपो ऽर्चन्ननुस्वराज्यम् ॥३॥

प्र	अग्रे	आगे
इहि	गच्छ	जाओ

अभि	सम्मुखम्	सामने
इहि	गच्छ	जाओ
धृष्णुहि	धृष्णुर्भव	निडर हो
न	न	नहीं
ते	तव	तेरा
वज्रः	वज्रः	वज्र
नि	नि+	—
सते	नि + यंसत, नियम्यते (यमेःकर्म्मणिलेटिसिपि सत्यडागमः)	रोका जासकता
इन्द्र	हे इन्द्र !	हे इन्द्र
नृम्णम्	पुंस्त्वम्	नरपन
हि	एव	ही

ते	तव	तेरा
शवः	बलम्	बल
हनः	हतवानसि (लङ अडभावःशपो-लुक् च)	तूने हनन किया है
वृत्रम्	वृत्रम्	वृत्र को
जयाः	जितवानसि (लङ्यडभावः)	तूने जीता
अपः	अपः	जलों को
अर्चन्	अनु+अर्चन्, प्रकाशयन्	प्रकाशित करता हुआ
अनु	+अनु	—
स्वऽराज्यम्	स्वराज्यम्	अपने राज्य को

संस्कृतार्थः ।

हे इन्द्र ! अघेगच्छ (शत्रु-) सम्मुखं प्राप्नुहि

धृष्णुर्भव तव वज्रो न (केनाऽपि)नियम्यते, (हे इन्द्र!) पुंस्त्वमेव तव बलम् (अस्ति, (त्वम्) वृत्रं हतवान् जलानि (च) जितवान् (त्वम्) स्वराज्य प्रकाशयन् (वर्तसे) ॥३॥

भावार्थः ।

हे इन्द्र ! आगे बढ़ो (शत्रु के) सामने जाओ निडरहो आपका वज्र(कोई भी) नहीं रोक सकता (हे इन्द्र)पुंस्त्व ही आप का बल (है) आपने वृत्र को हनन किया (और) जलों को जीता (आप) अपने राज्य को प्रकाशित करते हुए (विराजमानहैं) ।३।

जब अपने उपासकों के लिये कोई बड़ा काम करने के निमित्त इन्द्र को भी प्रोत्साहन की आवश्यकता है, तो विचारे, निर्बल मनुष्य को कैसे न हो।

इन्द्रोदेवता पङ्क्तिश्छन्दः ।८।८।८।८।८

निरिन्द्रभूम्या अधि वृत्रंजघन्थ-

निर्दिवः । सृजामरुत्वतीरव जीवध-

न्या इमा अपोऽर्चन्ननुस्वराज्यम् ।४।

निः	निः +	–
इन्द्र	हे इन्द्र !	हे इन्द्र
भूम्याः	भूम्याः+अधि, पृथिवीसकाशात्	पृथिवी से
अधि	+अधि	–
वृत्रम्	वृत्रम्	वृत्र को
जघन्थ	निः+जघन्थ,निःसार्य हतवानसि	निकाल कर हनन किया
निः	निःसार्य (हतवानसि)	निकाल कर(हनन किया)
दिवः	दिवः	द्यौ से
सृज	अव+सृज,पातय	गिराओ
मरुत्वतीः	मरुद्भिः संयुक्ताः	मरुतों से युक्त हुओं को
अव	अव+	–

जीवऽधन्याः	जीवाःप्राणिनो धन्याःकृतार्था यांभिस्ताः, जीव रक्षकाइत्यर्थः	जीवों की रक्षा क-रने वालों को
इमाः	इमाः	इन को
अपः	अपः	जलों को
अर्चन्	अनु+अर्चन् प्रकाशयन्	प्रकाशित करता हुआ
अनु	+अनु	–
स्वऽराज्यम्	स्वराज्यम्	अपने राज्य को

संस्कृतार्थः ।

हे इन्द्र ! (त्वम्) वृत्र पृथिवीसकाशान्निःसार्य्य हतवानसि दिवः (सकाशात्) निःसार्य्य(हतवानसि) (हेइन्द्र!) मरुद्भिः संयुक्ता जीवरक्षका इमा अपः पातय (त्वम्) स्वराज्यंप्रकाशयन् (वर्तसे) ॥ ४ ॥

भाषार्थः ।

हे इन्द्र ! आपने वृत्र को पृथिवी से निकाल कर हनन किया है (और)द्यौ से निकाल कर(हनन किया-

है, हे इन्द्र) आप जीव की रक्षा करने वाले और मरुतों से युक्त जलों को गिराओ आप अपने राज्य को प्रकाशित करते हुए (विराजमान हैं)॥ ४॥

इन्द्रोदेवता पङ्क्तिश्छन्दः ।८।८।८।८।८

इन्द्रो॑ वृ॒त्रस्य॒ दोध॑तः॒ सानुं॒ वज्रे॑ण हीळि॒तः । अ॒भि॒क्रम्याव॑ जिघ्नते॒ऽपः सर्मा॑य चो॒दय॒न्नर्च॒न्ननु॑ स्व॒राज्य॑म् ॥ ५ ॥

इन्द्रः	इन्द्रः	इन्द्र
वृत्रस्य	वृत्रस्य	वृत्र के
दोधतः	भृशंकम्पमानस्य (धूञ् कम्पने)	अत्यन्तकांपतेहुए के
सानुम्	हनुप्रदेशम् (सा०भा०)	जबड़े को
वज्रेण	वज्रेण	वज्र से

हीळितः	क्रुद्धः (हेळ इति क्रोध नाम० निघ० २।१३ एकारस्येत्वं छान्दसम्)	क्रोधसेयुक्तहुआ२
अभिऽक्रम्य	आभिमुख्येनगत्वा	सामने जाकर
अव	अव	—
जिघ्नते	अव+जिघ्नते, प्रहरति (व्यत्ययेनाऽऽत्मनेपदं बहुवचनञ्च)	प्रहार करता है
अपः	अपः	जलों को
सर्माय	सरणाय	बहने के लिये
चोदयन्	प्रेरयन्	प्रेरणकरताहुआ
अर्चन्	अनु + अर्चन् प्रकाशयन्	प्रकाशित करता हुआ
अनु	+ अनु	—
स्वऽराज्यम्	स्वराज्यम्	अपने राज्य को

संस्कृतार्थः

क्रुद्धइन्द्रआभिमुख्येनगत्वा भृशंकम्पमानस्य वृत्रस्यहनुप्रदेशे वज्रेण प्रहरति (सः) सरणायाऽपःप्रेरयन् (सन्) स्वराज्यं प्रकाशयन् (वर्तते ॥ ५ ॥

भावार्थः ।

क्रुद्ध हुए२ इन्द्र सामने जाकर अत्यन्त कांपते हुए वृत्रके जबडे पर वज्र से प्रहार करते हैं,(वह)बहने के लिये जलों को प्रेरण करते हुए अपने राज्य को प्रकाशित करते हुए (विराजमान हैं) ।५।

इन्द्रोदेवता पङ्क्तिश्छन्दः ।८।८।८।८।८

अधिसानौनिजिघ्नते वज्रेण-
शतपर्वणा । मन्दानइन्द्रोअन्धसः
सखिभ्योगातुमिच्छत्य र्चन्ननुस्व-
राज्यम् ॥ ६ ॥

अधि	अधि +	–

सानौ	अधि+सानौ हनुप्रदेशे	जबड़े पर
नि	नि+	—
जिघ्नते	नि+जिघ्नते प्रहरति	प्रहार करता है
वज्रेण	वज्रेण	वज्र से
शतऽपर्वणा	शतपर्वणा	सौ गांठों वालेसे
मन्दानः	हृष्यन्	हर्ष करता हुआ
इन्द्रः	इन्द्रः	इन्द्र
अन्धसः	सोमरसेन (तृतीयार्थेषष्ठी)	सोमरससे
सखिऽभ्यः	मित्रेभ्यः	मित्रोंकेलिये
गातुम्	ऐश्वर्य्यम् (मा०को०)	ऐश्वर्य को
इच्छति	इच्छति	इच्छा करता है

अर्चन्	अनु+अर्चन्, प्रकाशयन्	प्रकाशित करता हुआ
अनु	+अनु	–
स्वऽराज्यम्	स्वराज्यम्	अपने राज्य को

संस्कृतार्थः।

इन्द्रः सोमरसेन हृष्यन् (सन् वृत्रस्य) हनु प्रदेशे शतपर्वणावज्रेणं प्रहरति,सः मित्रेभ्य ऐश्वर्यं-मिच्छति स्वराज्यं प्रकाशयन् (च वर्तते) ॥ ६ ॥

भाषार्थः।

सोम रस से हर्षित होते हुए इन्द्र(वृत्र के) जबड़े पर सौ गांठों वाले वज्र से प्रहार करते हैं (वह) मित्रों के लिये ऐश्वर्य की इच्छा करते हैं (और) अपने राज्य को प्रकाशित करते हुए (विराजमान हैं)॥ ६॥

१ मित्रों के लिये अर्थात अपने आर्य्य उपासकों के लिये।

इन्द्रोदेवता पङ्क्तिश्छन्दः ।८।८।८।८।८।

इन्द्रतुभ्यमिदद्रिवोऽनुत्तंवज्रिन्-वीर्य्यम् ।यद्धत्यंमायिनम्मृगं तमुत्वं-

मायया॑व॒धी र्च॒न्ननु॑स्व॒राज्य॑म् ।७।

इन्द्र॑	हे इन्द्र !	हे इन्द्र
तुभ्य॑म्	तुभ्यम्	तेरेलिये
इत्	एव	ही
अद्रि॒ऽवः	हे अशनि युक्त !	हे वज्रयुक्त
अनु॑त्तम्	अतिरस्कृतम् (सा०भा०)	न तिरस्कार किये जाने वाला,
वज्रि॒न्	हे वज्रिन् !	हे वज्र धारी
वी॒र्य॑म्	वीर्य्यम्	वीर्य्य
यत्	येन (विभक्तेर्लुक)	जिस से
ह॒	खलु	सच मुच
त्यम्	तत्प्रसिद्धमित्यर्थः	प्रसिद्ध को
मा॒यिन॑म्	मायाविनम्	मायावी को
मृ॒गम्	पशुरूपम्	पशु रूप को

तम्	तम्	उस को
ऊम्०	(पूरणः)	–
त्वम्	त्वम्	तू ने
मायया	मायया	माया से
अवधीः	हतवानसि	हनन किया है
अर्चन्	अनु+अर्चन् प्रकाशयन्	प्रकाशित करता हुआ
अनु	+अनु	–
स्वऽराज्यम्	स्वराज्यम्	अपने राज्य को

संस्कृतार्थः ।

हे अशनियुक्त ! वज्रिन् ! इन्द्र ! तवार्थमेवाऽतिरस्कृतं वीर्यम् (विद्यते) येन तंप्रसिद्धं मायाविनं पशुरूपम् (वृत्रम्) मायया हतवानसि (त्वम्) स्वराज्यंप्रकाशयन् (वर्तसे) ॥ ७ ॥

भाषार्थः ।

हे वज्र युक्त वज्रधारी इन्द्र ! आप के लिये ही न तिरस्कार किये जाने वाला वीर्य्य (है) जिस से

सचमुच आपने उस प्रसिद्ध मायावी पशुरूप (वृत्र) का माया से हनन किया (आप) अपने राज्य को प्रकाशित करते हुए (विराजमान हैं) ॥ ७ ॥

इन्द्रोदेवता पङ्क्तिश्छन्दः ।८।८।८।८।८।

वि॒ते॒वज्रा॑सो॒अस्थि॑र॒न्नव॒तिन्ना॒-
व्या॑३॒अनु॑। म॒हत्त॑इन्द्र॒वी॒र्य॑ बा॒ह्वो-
स्ते॒बलं॑हि॒त म॒र्च॑न्न॒नुस्व॒रा॒ज्य॑म् ।८

वि	वि +	—
ते	तव	तेरे
वज्रा॑सः	वज्राः (असोऽसुगागमः)	वज्र
अस्थिरन्	वि + अस्थिरन् प्रसृता अभवन् (व्यत्ययेनह्रस्थिरन्नादेशः	फैल गए हैं
१ नवतिम्	नवतिम्	नव्वे को

१ नाव्याः	नावातार्य्याः (नदीः)	बडी (नदियों) को
अनु	अनुसृत्य	साथ साथ
महत्	महत्	बड़ा
ते	तव	तेरा
इन्द्र	हे इन्द्र !	हे इन्द्र
वीर्य्यम्	वीर्य्यम्	वीर्य
बाह्वोः	भुजयोः	दोनोंभुजाओं में
ते	तव	तेरी
बलम्	बलम्	बल
हितम्	निहितम्	ठेरा हुआ
अर्चन्	अनु + अर्चन् प्रकाशयन्	प्रकाशित करता हुआ

अनु	+अनु	−
स्वऽराज्यम्	स्वराज्यम्	अपनेराज्य को

संस्कृतार्थः ।

हे इन्द्र ! तव वज्रा नवतिंनाव्याः (नदीः) अनुसृत्य प्रसृता (अभवन्) तव वीर्य्यं महत् (अस्ति) तव भुजयोर्बलं निहितम् (अस्ति त्वम्) स्वराज्यं प्रकाशयन् (वर्त्तसे) ॥ ८ ॥

भाषार्थः ।

हे-इन्द्र ! आपके वज्र नव्वे बड़ी (नदियों) के साथ २ फैल गए हैं आपका वीर्य्य महान (है) आप की दोनोंभुजाओं में बल (है) (आप) अपने राज्य को प्रकाशित करते हुए (विराजमान हैं) ॥ ८ ॥

१.नव्वे बडी नदियों अर्थात अनेक जल जो धूलिकणरूप वृत्र ने आकाश में पकडे हुए थे और जिन को इन्द्र ने विद्युत द्वारा छुडाया था नव्वे एक कल्पित संख्या है ।

इन्द्रोदेवता पङ्क्तिश्छन्दः ।८।८।८।८।८

सहस्रंसाकमर्चतपरिष्टोभत-

विंशतिः।शतैनमन्वनोनवु रिन्द्राय-

ब्रह्मोद्यत मर्चन्ननुस्वराज्यम् । ९ ।

सहस्रम्	सहस्रम्	हजार
साकम्	सह	साथ
अर्चत	स्तुत	स्तुति करो
परि	परि+	–
स्तोभत	परि+स्तोभत, स्तोत्रमुच्चारयत	स्तोत्र उच्चारण करो
विंशतिः	विंशतिः	बीस
शता	शतानि (शेर्लोपः)	सैकड़ों ने
एनम्	एनम्	इस को
अनु	अनु+	–
अनोनवुः	अनु+अनोनवुः पुनःपुनःस्तुतवन्तः	बार २ स्तुति की है

इन्द्राय	इन्द्राय	इन्द्र के लिये
ब्रह्म	मन्त्ररूपास्तुतिः	मंत्र रूप स्तुति
उत्ऽयतम्	उन्नीतम्	ऊपर उठाई गई
अर्चन्	अनु+अर्चन् प्रकाशयन्	प्रकाशित करता हुआ
अनु	+अनु	–
स्वऽराज्यम्	स्वराज्यम्	अपने राज्य को

संस्कृतार्थः ।

हे (मनुष्याः! यूयम्) सहस्रं सह (एवेन्द्रम्) स्तुत, विंशतिः (मिलित्वा) स्तोत्रमुच्चारयत, एनं शतानि पुनः पुनः स्तुतवन्तः अस्मै इन्द्राय मन्त्र रूप स्तुति ध्यानः (ऋषिभिः) उन्नीतः (सः) स्वराज्य-प्रकाशयन् (वर्तते) ॥ ९ ॥

भावार्थः ।

(हे मनुष्यो!) हजार इकट्ठे होकर इन्द्र की स्तुति करो बीस (इकट्ठे होकर) स्तोत्र उच्चारण करो इन

की सैंकड़ों ने बार बार स्तुति की है (इस) इन्द्र के लिये (ऋषियों ने) मंत्र रूप स्तुति की ध्वनि को ऊपर उठाया है (वह) अपने राज्य को प्रकाशित करते हुए (विराजमान हैं) ॥ ८ ॥

इकट्ठे मिल कर स्तुति करने से आत्मा रूपी इन्द्र का बल बहुत अधिक बढ़ता है इस लिये बीसों सैंकड़ों और हज़ारों उपासकों को इकट्ठे होकर इन्द्र की स्तुति करनी चाहिये । जो कहते हैं कि आर्य्यों में सामाजिक प्रार्थना (congregtional prayer) नहीं थी, वे इस मंत्र के अर्थ को विचारें ॥

इन्द्रोदेवता पङ्क्तिश्छन्दः ।८।८।८।८।८।

इन्द्रोवृत्रस्यतविषीं निरहन्त्स-
हसासहः । महत्तदस्यपौंस्यंवृत्रं-
जघन्वाँअसृज दर्वन्ननुस्वराज्यम्
॥१०॥

इन्द्रः	इन्द्रः	इन्द्र ने

वृत्रस्य	वृत्रस्य	वृत्र के
तविषीम्	बलम्	बल को
निः	निः+	—
अहन्	निः+अहन् अपहृतवान्	हरण किया
सहसा	साहसेन	साहस से
सहः	साहसम्	साहस को
महत्	महत्	महान
तत्	तत्	वह
अस्य	अस्य	इस का
पौंस्यम्	बलकर्म	बल का काम
वृत्रम्	वृत्रम्	वृत्र को
जघन्वान्	हतवान्	हनन किया

असृजत्	विसृष्टवान्	छोड़ा
अर्चन्	अनु+अर्चन् प्रकाशयन्	प्रकाशित करता हुआ
अनु	+अनु	—
स्वऽराज्यम्	स्वराज्यम्	अपने राज्य को

संस्कृतार्थः।

इन्द्रो वृत्रस्य बलमपहृतवान् (निज-) साहसेन (तत्कृतम्) साहसम् (च निराकृतवान्) अस्य तद्महद्बलकर्म (यदयम्)वृत्रंहतवान् (अपश्च) विसृष्टवान् (सः) स्वराज्यं प्रकाशयन् (वर्तते) ॥१०॥

भावार्थः।

इन्द्रने वृत्र के बल को हरण किया (और अपने) साहस से (उसके) साहस का (हटा दिया) इस का यह महान बल कर्म है जो इस ने वृत्र को हनन किया (और जलों को) छोड़ा (वह) अपने राज्य को प्रकाशित करते हुए (विराजमान हैं ॥१०॥

इन्द्रोदेवता पङ्क्तिश्छन्दः ।८।८।८।८।८।

इमेचित्तवमन्यवे वेपेतेभियसा-

मही । यदिन्द्रवज्रिन्नोजसा वृत्रं-

मरुत्वाँ अवधो रर्चन्ननुस्वराज्य-

म् । ११ ।

इमे॰	इमे	ये दोनों
चित्	अपि	भी
तव	तव	तेरे
मन्यवे	क्रोधात् (पञ्चम्यर्थेचतुर्थी)	क्रोध से
वेपेते॰	कम्पेते	कांपती हैं
भियसा	भीत्या	भय से
मही॰	द्यावापृथिव्यौ (निघ॰३।३०)	द्यौ (और) पृथिवी
यत्	यत्	जो

इन्द्र	हे इन्द्र !	हे इन्द्र
वज्रिन्	हे वज्रिन् !	हे वज्र धारी
ओजसा	बलेन	बल से
वृत्रम्	वृत्रम्	वृत्र को
मरुत्वान्	मरुद्भिर्युक्तः	मरुतों से युक्त
अवधीः	हतवानसि	तूने हनन किया
अर्चन्	अनु+अर्चन् प्रकाशयन्	प्रकाशित करता हुआ
अनु	+अनु	–
स्वऽराज्यम्	स्वराज्यम्	अपने राज्य को

संस्कृतार्थः।

हे वज्रिन् ! इन्द्र ! तव क्रोधादिमे द्यावापृथिव्या-वपि भीत्या कम्पेते यन्मरुद्भिर्युक्तः (त्वम्) बलेन वृत्रं

हतवानसि, (त्वम्) स्वराज्यंप्रकाशयन् (वर्तसे) ।११।

भाषार्थः ।

हे वज्रधारी इन्द्र ! आपके क्रोध से ये दोनों द्यौ (और) पृथिवी भी डरती हुई कांपती हैं, जो मरुद् गण से युक्त (होकर) बल द्वारा आपने वृत्र का हनन किया, (आप) अपने राज्य को प्रकाशित करते हुए (विराजमान) हैं ॥ ११ ॥

१ जब बादल गरज कर बिजली कड़कती है तब आकाश और पृथिवी कांपते सरीखे दीखते हैं और सब मनुष्य और पशु भय भीत होजाते हैं ॥

इन्द्रोदेवता पङ्क्तिश्छन्दः ।८।८।८।८।८

नवेपसानतन्यते न्द्रंवृत्रोवि-

बीभयत् । अभ्येनंवज्रआयसः सह-

स्रभृष्टिरायता र्चन्ननुस्वराज्य-

म् ॥१२॥

न	न	नहीं
वेपसा	कम्पनेन	कंपाने से
न	न	नहीं
तन्यता	गर्जनेन	गर्जना से
इन्द्रम्	इन्द्रम्	इन्द्र को
वृत्रः	वृत्रः	वृत्र
वि	वि+	—
बीभयत्	वि+बीभयत् भीपितवान् (अडभावः)	डरा सका
अभि	अभि+	—
एनम्	एनम्	इस को
वज्रः	वज्रः	वज्र

आयसः	अयोमयः	लोहे का
१ सहस्रऽ-भृष्टिः	सहस्र धारा युक्त	सहस्रधाराओं से युक्त
आयत	अभि + आयत, पतितवान् (अयगतो)	गिरा
अर्चन्	अनु + अर्चन् प्रकाशयन्	प्रकाशित करता हुआ
अनु	अनु +	–
स्वऽराज्यम्	स्वराज्यम्	अपने राज्य को

संस्कृतार्थ ।

वृत्र इन्द्रं न कम्पनेन न (च) गर्जनेन भीषितवान् अस्य (वृत्रस्य) उपरि सहस्रधारायुक्तोऽयोमयोवज्र पतितवान (इन्द्रः) स्वराज्यं प्रकाशयन् (वर्तते) ।१२।

भाषार्थ ।

वृत्र इन्द्र को न कंपान से (और) न गर्जनासे डरासका इस (वृत्र) के ऊपर सहस्रधारा से युक्त

लोहे का वज्र गिरा (इन्द्र) अपने राज्य को प्रकाशित करते हुए (विराजमान हैं) ॥ १२ ॥

१ सहस्रधारावाला वज्र, जैसे बिजली के रूप से प्रतीत होता है ॥

इन्द्रोदेवता पङ्क्तिश्छन्दः ।८।८।८।८।८

यद्वृत्रंतवचाशनिं वज्रेणसमयोधयः । अहिमिन्द्रजिघांसतो दिविवेशवधेशवो ऽर्चन्ननुस्वराज्यम् ॥ १३ ॥

यत्	यदा	जब
वृत्रम्	वृत्रम्	वृत्र को
तव	तव	तेरे
च	च	और

अश्ननिम्	वज्रम्	वज्र को
वज्रेण	वज्रेण	वज्र से
सम्ऽअ-योधयः	सम्यगयोधयः	खूब लड़ाया
अहिम्	वृत्रम्	वृत्र को
इन्द्र	हे इन्द्र !	हे इन्द्र
जिघांसतः	हन्तुमिच्छतः	हनन करने की इच्छा करतेहुए के
दिवि	दिवि	द्युलोक में
ते	तव	तेरे
बद्बधे	दृढीबभूव	दृढहो गया
शवः	बलम्	बल

अर्चन्	अनु+अर्चन् प्रकाशयन्	प्रकाशित करता हुआ
अनु	+अनु	—
स्वऽराज्यम्	स्वराज्यम्	अपने राज्य को

संस्कृतार्थः ।

हे इन्द्र ! यदा (त्वम्) वृत्रम् (तेन सृष्टम्) वज्रं च निज वज्रेण सम्यगयोधयः (तदा तम्) वृत्रं हन्तुमिच्छतस्तव बलं दिवि दृढी बभूव (त्वम्) स्वराज्यं प्रकाशयन् (वर्त्तसे) ॥ १३॥

भापार्थः ।

हे इन्द्र! जब आपने वृत्रको और (उससे छोड़े हुए) वज्र को अपने वज्र से खूब लड़ाया (तब उस) वृत्र को हनन करने की इच्छा करते हुए आप का 'बल' द्युलोक में स्थिर होगया (आप) अपने राज्य को प्रकाश करते हुए (विराजमान हैं) ॥ १३ ॥

इन्द्रोदेवता पङ्क्तिश्छन्दः ।८।८।८।८।८।

अभिष्टनेतेअद्रिवो यत्स्थाजग-

च्चरेजते । त्वष्टाचित्तवमन्यव

इन्द्रवेविज्यतेभिया ऽर्चन्ननुस्वरा-

ज्यम् ॥ १४ ॥

अभिऽस्तने	गर्जने	गर्जने पर
ते	तव	ते
अद्रिऽवः	हे वज्रिन्! (यास्कः)	हे वज्र धारी
यत्	यत्	जो
स्थाः	स्थावरम् (तिष्ठते.क्विप्)	स्थावर
जगत्	जङ्गमम्	जंगम
च	च	और
रेजते	कम्पते (निघं०३।२८)	कांपता है

त्वष्टा	त्वष्टा	त्वष्टा
चित्	अपि	भी
तव	तव	तेरे
मन्यवे	कोपात् (पञ्चम्यर्थेचतुर्थी)	क्रोध से
इन्द्र	हे इन्द्र !	हे इन्द्र
वेविज्यते	भृशंकम्पते (ओविजीभयचलनयोः)	अत्यन्त कांपता है
भिया	भीत्या	भय से
अर्चन्	अन+अर्चन्, प्रकाशयन्	प्रकाश करता हुआ
अनु	+ अनु	—
स्वऽराज्यम्	स्वराज्यम्	अपने राज्य को

संस्कृतार्थः।

हे ऽज्रिन्निन्द्र! तवगर्जने (सति) यत् स्थावरं जङ्गमंच(अस्ति तदुभयम्)कम्पते, त्वष्ठापि तव कोपा-

दभीत्वा भृशंकम्पते (त्वम्) स्वराज्यं प्रकाशयन् (वर्त्तसे) ॥ १४ ॥

भावार्थ.।

हे वज्रधारी इन्द्र ! आपके गर्जने पर स्थावर और जंगम (दोनों) कांपते हैं त्वष्टा भी आपके क्रोध से डर कर अत्यन्त कांपता है आप अपने राज्य को प्रकाशित करते हुए (विराजमान हैं) ॥ १४ ॥

१ त्वष्टा यद्यपि इन्द्र को भी रूप के देने वाले हैं परन्तु बल की शक्ति से सब शक्तियें कांपती हैं इस लिये त्वष्टा के कांपने में कोई आश्चर्य्य नहीं ॥

इन्द्रोदेवता पङ्क्तिश्छन्दः ।८।८।८।८।८।

नहिनुयादधीमसीन्द्रंकोवीर्यापरः। तस्मिन्नृम्णमुतक्रतुं देवाओजांसिसंदधुरर्चन्ननुस्वराज्यम्।१५।

नहि	नहि	नहीं
नु	खलु	सचमुच

यात्	यावत् (वर्णलोपः)	जहां तक
अधिऽइमसि	अवगच्छामः (मसइकाराऽऽगमः)	हम जानते हैं
इन्द्रम्	इन्द्रात् (पञ्चम्यर्थेद्वितीया)	इन्द्र से
कः	कः (अपि)	कोई
वीर्या	वीर्ये (सुपामिति सप्तम्या डादेशः)	वीर्य में
परः	परः	बढ़ कर
तस्मिन्	तस्मिन्	उस में
नृम्णम्	पुंस्त्वम्	नर पन को
उत	अपिच	और भी
क्रतुम्	ज्ञानम्	ज्ञान को
देवाः	देवाः	देवताओं ने

पुस्तक मिलने का
और मूल्य भेजने का पता:—
मुन्शीजैराम मैनेजर
ऋग्वेदसंहिता
भिवानी जिला हिसार
पंजाब देश।

अक ४५ ४६]   [ज्येष्ठ- आषाढ १९६७

ऋग्वेद संहिता

(वैदिक जीवन व्याख्या युता)

पदपाठ, शब्दार्थ, संस्कृत और भाषा अनुवाद
टिप्पणी और मन्त्रों के आशय पर
व्याख्यान से युक्त

जिसको मुलतान निवासी प० शङ्करदत्तशास्त्री
की सहायता से शिवनाथ आहिताग्नि ने
सम्पादन किया।

लाहौर
पञ्जाब एकानोमीकल यन्त्रालय में प्रिण्टर लाला
सालमन के अधिकार से छपा।

---

१२ अंकों का अग्रिम मूल्य २)
पहले २४ अंकों का मूल्य ५॥)

ऋ०सं०४१,४२ अङ्कयोः शुद्धयशुद्धिपत्रम्

पृ०	पं०	अशुद्धम्	शुद्धम्
१७९८	५	काद्दर	कोद्दर
१७९९	५	देवताभो।	देवताभो
१८०१	४	भुवत्	भुवत्
१८०३	२	अमूराः	अमूराः
१८०६	६	घतेन	घृतेन
,,	७	१ः	१ः
,,	८	सुजाताः	सुजाताः
१८१२	३	सम्रास-	सम्रास-
१८१५	६	विंशनि	विंशति
१८१८	६	हविर्गाट्	हविर्वाट्
१८१९	२	जोदसे	जीवसे
१८२२	१२	द्युलोवश	द्युलोका
,,	,,	धंनस्य	धंनस्य
१८२३	२०	तुष्ठः	तस्युः
१८२५	१५	पक्षिके	पक्षी के
१८२७	२	मुष्टाः	सुष्टाः
,,	१२	चक्षपो	चक्षुपो
१८२८	११	नोचोः	नीचैः
१८३१	५	गोर	घोर
१८३३	५	प्रीतिकर्वाणः	प्रीतिंकुर्वाणः
,,	१८	हुज	हुत
१८३८	१५	धम्नं	धुम्नं-
,,	१६	भुंठ्यं	भूंठ्यं
१८४०	१२	प्रवास	प्रुवास
१८४२	८	अग्न	अग्नि
१८४६	२	स्मत्ऽक-	स्मत्ऽर्क
,,	१५	समया	समया+
१८४७	२०	यश्चि	यश्चि
१८४८	८	मुऽ	मुऽ
१८५०	१५	आग्नदे	अग्निदे
१८५४	१०	पितऽ	पितृऽ
,,	१८	अस्मदायाः	अस्मदीयाः
१८५७	५	यमा्	यमम्
१८५८	१८	मशृहि	मृशहि
१८६१	[illegible]	(स्नेह्यत	(स्नेह्यते
,,	५	स्नद्यति	स्नेह्यति

ओजांसि	बलानि	बलों को
सम्	सम्+	—
दधुः	सम्+दधुः,सम्यक् स्थापितवन्तः	भली प्रकार स्थापन किया है
अर्चन्	अनु+अर्चन् प्रकाशयन्	प्रकाशित करता हुआ
अनु	+अनु	—
स्वराज्यम्	स्वराज्यम्	अपने राज्य को

संस्कृतार्थः।

यावत् खलु (वयम्) अवगच्छामो वीर्य्ये कः (अपि) इन्द्रात् परो न(अस्ति) तस्मिन्देवा पुंस्त्वं ज्ञानं बलानि च सम्यक्स्थापितवन्तः (सः) स्वराज्यं प्रकाशयन् (वर्त्तते) ॥ १५ ॥

भावार्थः।

सचमुच जहां तक हम जानते हैं कोई (भी) वीर्य में इन्द्र से बढ़ कर नहीं (है) देवताओं ने उसमें पुंस्त्व को ज्ञान को और बलोंको भली प्रकार स्थापन किया है (वह) अपने राज्य को प्रकाशित करते हुए (विराजमान हैं) ॥१५॥

इन्द्रोदेवता पङ्क्तिश्छन्दः ।८।८।८।८।८।

यामथर्वामनुष्पिता दध्यङ्धियमत्नत। तस्मिन्ब्रह्माणिपूर्वथे न्द्रउक्थासमग्मता ऽर्चन्ननुस्वराज्यम् ॥ १६ ॥

याम्	याम्	जिस को
अथर्वा	अथर्वा	अथर्वा ने
मनुः	मनुः	मनु ने
पिता	पिता	पिता ने
दध्यङ्	दध्यङ्	दध्यङ् ने
धियम्	कर्म्म	कर्म्म को

अतनत	अतन्वत, चक्रः (तनुविस्तारे, विकरणस्यलुक)	किया
तस्मिन्	तस्मिन्	उस में
ब्रह्माणि	(हवीरूपाणि) अन्नानि (निघं०२।२)	(हवि रूप) अन्न
पूर्वऽथा	यथापूर्वम् (स्वार्थेथाल्प्रत्ययः)	पहिले की न्याईं
इन्द्रे	इन्द्रे	इन्द्र में
उक्था	शस्त्राणि (शेर्लोप)	स्तोत्र
सम्	सम् +	–
अग्मत	सम्+अग्मत, समगच्छन्त	इकट्ठे हुए हैं
अर्चन्	अनु + अर्चन् प्रकाशयन्	प्रकाशित करता हुआ
अनु	+ अनु	–
स्वऽराज्यम्	स्वराज्यम्	अपने राज्य को

संस्कृतार्थः ।

यत्कर्म्माऽथर्वा पितामनुर्दध्यङ् (च) कृतवन्तः (तदनु) तस्मिन्निन्द्रे यथापूर्वम् (अस्मदीयानि हवीरूपाणि) अन्नानि स्तोत्राणि (च) समगच्छन्त [सः] स्वराज्यं प्रकाशयन् (वर्त्तते) ॥ १६ ॥

भावार्थः ।

जो कर्म्म अथर्वा, पिता मनु [और] दध्यङ् ने किया [उस के पीछे] पहले की न्याई (हमारे हवि रूप) अन्न [और] स्तोत्र उस इन्द्र में इकट्ठे हुए हैं [वह] अपने राज्यको प्रकाशित करते हुए (विराजमान हैं) ॥१॥

जिस प्रकार आचार्य जाति के आदि ऋषि अथर्वा और उनके पुत्र दध्यङ् अग्निहोत्रआदि जो कर्म्म करते थे वे सब इन्द्रको प्राप्त होते थे इसी प्रकार हमारी स्तुति और हमारी हवियां यद्यपि अग्नि आदि अनेक देवताओं को दी जाती हैं परन्तु सब मिलकर इन्द्रको ही प्राप्त होती हैं। इसका कारण यह है कि आत्मा ही सब देवता है और सब यज्ञ और स्तुतियां अपनी आत्मा को ही बलवान बनाते हैं।

इत्यशीतितमं सूक्तम् ॥

ऋ० मं०१ सू०८१

इन्द्रोदेवता गोतम ऋषिः

विनियोग-यह सूक्त पृष्ठयपडह के पांचवें दिन निष्केवल्य शास्त्र में पढ़ा जाता है (आ०सू०७।१२।१६)

पहले तीन मंत्र सत्र के २४ वें दिन के माध्यंदिन सवन में ब्राह्मणाच्छंसी के शास्त्र में विकल्प से स्तोत्रिय हैं और "मदेमदे हिनोददिः-" इस सातवें मन्त्र से नवें तक स्तोत्रियानुरूप हैं (आ० ७।४।३)

पहला मंत्र महाव्रत के निष्केवल्य शास्त्र में भी पढ़ा जाता है (ऐ०आ०५)

जिस इन्द्र का हर्ष और बल स्तुतियों द्वारा बढ़ाया गया है वह छोटे और बड़े युद्धों में हमारी रक्षा करें। वह अकेले सेना से युद्ध करने योग्य हैं और छोटे को बड़ा करने वाले हैं, वह उपासक को बहुत देते हैं क्योंकि उन का धन बहुत है। जब युद्ध होते हैं जिन में निडर की विजय होती है तब इन्द्र रथ में घोड़े जोड़ कर आते हैं वह किसी को मारते हैं और किसी को शत्रु का धन दिलाते हैं, हमें वह शत्रु का धन दिलावें। भयंकर इन्द्र युद्धमें जितनी इच्छा होती है उतना बल बढ़ा लेते हैं और यश की कामना से शत्रुओं के नाश के लिये दोनों हाथों में लोहे का वज्र धारण करते हैं। इन्द्र ने अपनी सत्ता से अन्तरिक्ष को भरा हुआ है उस ने द्यौ में तारागण को स्थिर किया है उस जैसा न कोई हुआ है और न होगा वह सब से बढ़ कर महान हैं। वह उपासक को मनुष्यों से मांगने योग्य शत्रु के धन को देते हैं सो हमें देवें, वह बहुत धन वाले हैं हमें भी उस में भागी बनावें। सूधे इन्द्र जब २ मद युक्त होते हैं तब २ गौओं के झुंड के झुंड हमें दे देते हैं, वह दोनों हाथों से सैंकड़ों धनों को भरें

और हमारी बुद्धि को तीक्ष्ण करते हुए हम को धन दें। जब हम इकट्ठे होकर सोम को निचोड़ें तब इन्द्र धन और बल देने के निमित्त मद युक्त हों, हम इन्द्र को बहुत धन वाला जानते हैं इस लिये अपनी कामनाओं को उन के समीप पहुंचाते हैं, अब वह हमारे रक्षक बनें। हम आर्य्यजन इन्द्र के लिये ही धनों को संचय करते हैं, जो केवल अपने स्वार्थ के लिये धन को जोड़ते हैं और किसी दूसरे को नहीं देते इन्द्र उन के धन को हरण करके हम को देवें॥

इन्द्रोदेवता पङ्क्तिश्छन्दः।८।८।८।८।८

इन्द्रोमदायवावृधे शवसेवृत्रहा-
नृभिः। तमिन्महत्स्वाजिषू तमर्भे-
हवामहे सवाजेषुप्रनोविषत्॥ १॥

इन्द्रः	इन्द्रः	इन्द्र
मदाय	हर्षाय	हर्ष के लिये
ववृधे	वर्धितोऽभूत (कर्मणिलिट)	बढ़ाया गया
शवसे	बलाय	बल के लिये

वृ॒त्र॒ऽहा	वृत्रस्यहन्ता	वृत्र के हनन करने वाला
नृऽभिः	मनुष्यैः	मनुष्यों से
तम्	तम्	उस को
इत्	एव	ही
म॒हत्ऽसु	महत्सु	बड़ों में
आ॒जिषु	सङ्ग्रामेषु	युद्धों में
उ॒त	अपिच	और भी
ई॒म्	(पूरणः)	–
अर्भे	अल्पे (युद्धे)	छोटे (युद्ध) में
ह॒वा॒म॒हे॒	आह्वयामः	हम बुलाते हैं
सः	सः	वह
वाजेषु	सङ्ग्रामेषु	युद्धों में

प्र	प्र+ —	—
नः	अस्मान्	हम को
अविषत्	प्र + अविषत्, प्रकर्षेण रक्षेत् (अवरक्षणेलेट्यडागमे सिपि च सतीडागमः)	खूब रक्षा करे

संस्कृतार्थः ।

वृत्रस्यहन्ता(यः)इन्द्रो हर्षाय बलाय (च) मनुष्यैर्वर्धितो बभूव तमेव (वयम्) महत्सु सङ्ग्रामेष्वल्पे (संग्रामे) चाऽऽह्वयामः सोऽस्मान् (तेषु) सङ्ग्रामेषु प्रकर्षेण रक्षेत् । १ ।

भावार्थः ।

वृत्र के हनन करने वाले (जो) इन्द्र हर्ष(और) बलके लिये मनुष्यों से बढाये गए हैं, उन्हींको हम बड़े युद्धों में और छोटे युद्ध में बुलाते हैं वह (उन) युद्धों में हमारी खूब रक्षा करें ।

स्तुति से हर्ष और बल दोनों बढते हैं और दोनों विजय के कारण हैं ॥

इन्द्रोदेवता पङ्क्तिश्छन्दः ।८।८।८।८

असिहिवीरसैन्यो ऽसिभूरिपरा-
ददिः । असिदभ्रस्यचिद्वृधो यज-
मानायशिक्षसि सुन्वतेभूरितेवसु
॥२॥

असि	असि	तू है
हि	खलु	सचमुच
वीर	हे वीर !	हे वीर
१ सैन्यः	सेनार्हः (अर्हार्थेयत्)	सेना के योग्य
असि	असि	तू है
भूरि	प्रभूतस्य	बहुत के

परा॒ऽद॒दिः	आभिमुख्येन-दाता	सामने होकर देने वाला
असि॑	असि	तू है
द॒भ्रस्य॑	अल्पस्य	छोटे के
चि॒त्	अपि	भी
वृ॒धः	वर्धयिता (अन्तर्भावितण्यर्थः)	बढाने वाला
यज॑मानाय	यजमानाय	यजमान के ताईं
शि॒क्ष॒सि॒	ददासि (निघ०३।२०)	तू देता है
सु॒न्व॒ते	सोमाभिषवकुर्वते	सोम निचोड़ने वाले के ताईं
भूरि॑	बहु.	बहुत
ते॒	तव	तेरा
वसु॑	धनम्	धन

संस्कृतार्थः ।

हे वीर! (त्वम्) खलु सेनार्होऽसि (त्वम्) विपुलस्य (धनस्य) आभिमुख्येन दाताऽसि (त्वम्) अल्पस्याऽपि वर्धयिताऽसि (त्वम्) सोमाभिषवं कुर्वते यजमानाय (बहु) ददासि (यतः) तव धनं बहु (अस्ति) ॥ २ ॥

भावार्थः ।

हे वीर! सचमुच आप सेनाके योग्य हो (आप) सामने होकर बहुत (धन) के देने वाले हो आप छोटे के भी बढाने वाले हो आप सोमनिचोडने वाले यजमान के ताईं (बहुत) देने वाले हो क्योंकि आप का धन बहुत (है) । २ ।

१ सेना के योग्य अर्थात अकेला सेना के साथ युद्ध करने योग्य।

इन्द्रो देवता पङ्क्तिश्छन्दः ।८।८।८।८।८।

यदुदीरत आजयो धृष्णवे धीयते धना । युक्ष्वा मदच्युता हरी कं हनः कं वसौ दधो ऽस्माँ इन्द्र वसौ दधः ।३।

यत्	यदा	जब
उत्ऽईरते	उत्पद्यन्ते	उत्पन्न होते हैं
आजयः	सङ्ग्रामाः	युद्ध
धृष्णवे	प्रगल्भाय	निडर के ताईं
धीयते	दीयते	दिया जाता है
धना	धनम् (सुपामिति डादेशः)	धन
युक्ष्व	योजय (अन्तर्भावितण्यर्थः)	जोड़ो
मदऽच्युता	मदस्य च्यावयितारौ (विभक्तेरात्वम्)	मद के टपकाने वालों को
हरी इति	अश्वौ	दोनों घोड़ों को
कम्	कञ्चन	किसी को
हनः	हंसि ([illegible])	हनन करते हो

कम्	कञ्चन	किसी को
वसौ	धने (लिङ्गव्यत्ययः)	धन में
दधः	स्थापयसि (लडर्थे लङडभावः)	स्थापन करते हो
अस्मान्	अस्मान्	हम को
इन्द्र	हे इन्द्र !	हे इन्द्र
वसौ	धने (लिङ्गव्यत्ययः)	धन में
दधः	स्थापय (लोडर्थे लङडभावः)	स्थापन करो

संस्कृतार्थः ।

यदा सङ्ग्रामा उत्पद्यन्ते (तदा) प्रगल्भाय धनं दीयते, हे इन्द्र! (त्वम्) मदस्य च्यावयितावश्वौ (रथे) योजय (त्वम्) कञ्चनहंसि कञ्चन धने स्थापयसि, अस्मान् धने स्थापय । ३ ।

भाषार्थः ।

जब युद्ध होते हैं (तब) निडर के ताईं धन दिया जाता है, हे इन्द्र ! आप मद के टपकाने वाले

दोनों घोड़ों को (रथ में) जोड़ो आप किसी को हनन करते हो किसी को धन में स्थापन करते हो, हम को धन में स्थापन करो ॥ ३ ॥

इन्द्रोदेवता पङ्क्तिश्छन्दः ।ऽ।ऽ।ऽ।ऽ।ऽ।

क्रत्वामहाँ अनुष्वधं भीमआवा-
वृधेशवः । श्रियऋष्वउपाकयो नि-
शिप्रीहरिवान्दधे हस्तयोर्वज्रमाय-
सम् ॥ ४ ॥

क्रत्वा	प्रज्ञया	बुद्धि से
महान्	महान्	महान्
अनुऽस्वधम्	स्वेच्छानुकूलम्	अपनी इच्छा के अनुकूल
भीमः	भयङ्करः	भयंकर ने

आ	आ+	–
ववृधे	आ+ववृधे,प्रवर्धितवान् (अन्तर्भावितण्यर्थः)	खूब बढाया
शवः	बलम्	बल को
श्रिये	यशसे	यश के लिये
ऋष्वः	महान् (निघं०३।३)	महान
उपाकयोः	समीपमानीतयोःसंश्लिष्टयोरित्यर्थः	जुडे हुओं में
नि	नि+	–
शिप्री	(दृढ-)हनुयुक्तः	(दृढ) जबड़े वाला
हरिवान्	अश्वोपेतः	घोड़ों से युक्त ने
दधे	नि+दधे, धारितवान्	पकड़ा
हस्तयोः	हस्तयोः	दोनों हाथों में
वज्रम्	वज्रम्	वज्र को

आयसम्	अयोमयम्	लोहमय को

संस्कृतार्थः ।

प्रज्ञया महान् भीमः (चेन्द्रः) स्वेच्छानुकूलं बलं प्रवर्धितवान् (दृढ) हनुयुक्तोऽश्वोपेतः (च) महान् (सः) यशोऽर्थं संश्लिष्टयोर्हस्तयोरयोमयं वज्रं धारितवान् ॥ ४ ॥

भावार्थः ।

बुद्धि द्वारा महान (और) भयंकर(इन्द्र ने)अपनी इच्छा के अनुकूल बल को बढाया (और) घोडों से युक्त (दृढ) जबडे वाले (उस) महान ने यश के लिये जुडे हुए दोनों हाथों में लोहे के वज्र को पकड़ा ॥४॥

इन्द्रोदेवता पङ्क्तिश्छन्दः ।८।८।८।८।८।

आपप्रौपार्थिवंरजो बद्बधेरोचनादिवि। नत्वावाँइन्द्रकश्चन नजातोनजनिष्यते ऽतिविश्वंववक्षिथ॥५॥

आ	आ+	—
पप्रौ	आ+पप्रौ,आपूरितवान्	चारों ओर से पूर्ण किया
१ पार्थिवम्	पृथिवीसम्बन्धिनम्	पृथिवी संबंधी को
१ रजः	अन्तरिक्षम्	अन्तरिक्ष को
बद्बधे	दृढीकृतवान्	दृढ़ किया
रोचना	रोचमानानि (नक्षत्राणि) (शोलोपः)	तारा गण को
दिवि	द्युलोके	द्युलोक में
न	न	नहीं
त्वाऽवान्	त्वत्सदृशः	तेरे तुल्य
इन्द्र	हे इन्द्र !	हे इन्द्र
कः	कः	कोई

च॒न	अपि	भी
न	न	नहीं
जा॒तः	उत्पन्नः (अभूत्)	उत्पन्न (हुआ है)
न	न	नहीं
ज॒नि॒ष्य॒ते॒	उत्पत्स्यते	उत्पन्न होगा
अति॑	अति+	–
वि॒श्व॑म्	सर्वम्	सब को
व॒व॒क्षि॒थ	अति+ववक्षिथ अतीत्यमहानभवः (ववक्षियेतिमहन्नाम निघं०३।३)	तू बढकर महान हुआ है

संस्कृतार्थः ।

(इन्द्रः) पार्थिवमन्तरिक्षमापूरितवान् द्युलोके नक्षत्राणि (च) दृढीकृतवान् हे इन्द्र ! त्वत्सदृशःकोऽपि न(वर्त्तते)नोत्पन्ना न (च) उत्पत्स्यते (स त्वम्) सर्वम तीत्य महानभवः ॥ ५ ॥

भावार्थः ।

(इन्द्र ने) पृथिवी सम्बन्धी अन्तरिक्ष को चारों ओर से पूर्ण किया है (और) द्युलोक में नक्षत्रों को दृढ किया है, हे इन्द्र ! आप के तुल्य कोई भी नहीं (है) न उत्पन्न हुआ है (और) न होगा आप सब से बढकर महान हुए हैं ॥ ५ ॥

(१) पृथिवी संबंधी अन्तरिक्ष जिस में बादल रहते हैं ।

इन्द्रोदेवता पङ्क्तिश्छन्दः ।८।८।८।८।८।

योअर्योमर्तभोजनंपराददाति-
दाशुषे । इन्द्रोअस्मभ्यंशिक्षतु वि-
भजाभूरितेवसु भक्षीयतवराधसः।६।

यः	यः	जो
अर्यः	स्वामी	स्वामी
मर्तऽभो-जनम्	मनुष्यैर्भोग्यम्	मनुष्यों से भोगने योग्य (पदार्थों) को

परा॑ऽददा॑ति	आभिमुख्येन ददाति	सामने होकर देता है
दा॒शुषे॑	(हविः)दत्तवते	(हवि) देने वाले के ताईं
इन्द्रः॑	इन्द्रः	इन्द्र
अ॒स्मभ्य॑म्	अस्मभ्यम्	हमारे ताईं
शि॒क्ष॒तु	ददातु	देवे
वि	वि+	–
भ॒ज	वि+भज	बांटो
भूरि॑	बहु	बहुत
ते॒	तव	तेरा
वसु॑	धनम्	धन
भ॒क्षी॒य	भागीभवानि भजतेराशीर्लिङि शपमावसलोपाभावौछान्दसौ)	मैं भागी होऊं

तव	तव	तेरे
राधसः	धनस्य	धन का

संस्कृतार्थः ।

यःस्वामीन्द्रः (हविः) दत्तवते मनुष्यैर्भोग्यम् (पदार्थजातम्) आभिमुख्येन ददाति (सः)अस्मभ्यम्(अपि) ददातु (हे इन्द्र !) विभज, तवधनं बहु (अस्ति) तव धनस्य (अहमपि) भागीभवानि ॥ ६ ॥

भावार्थः ।

जो स्वामी इन्द्र (हवि) देने वाले के ताईं मनुष्यों से भोगने योग्य (पदार्थों) को सामने होकर देते हैं वह हमारे ताईं (भी) देवें (हे इन्द्र!) बांटो आप का धन बहुत (है) आप के धन का मैं (भी) भागी बनूं ॥ ६ ॥

इन्द्रोदेवता पङ्क्तिश्छन्दः ।८।८।८।८।८।

मदेमदेहिनोददि यूथागवामृजक्रतुः । संगृभायपुरूशतो भयाहस्त्यावसु शिशीहिरायआभर ।७।

मदेऽमदे	मदे मदे	प्रत्येक मद में
हि	खलु	सचमुच
नः	अस्मभ्यम्	हमारे ताईं
ददिः	दाता	देने वाला
यूथा	यूथानाम् (सुपामितिविभक्तेरात्वम्)	समूहों का
गवाम्	गवाम्	गौओं के
ऋजुऽक्रतुः	सरलबुद्धिः	सरल बुद्धि वाला
सम्	सम्यक्	भली प्रकार
गृभाय	गृहाण (ग्रहउपादानेशायजादेशोकृतेहस्यभत्वम्)	ग्रहण करो
पुरु	पुरूणिबहूनी-स्यर्थः (शेर्लोपः)	बहुत
शता	शतानि (शेर्लोपः)	सैकड़ों

उभया-हस्त्या	उभाभ्यांहस्ताभ्यां (सुपामितिविभक्तेडर्या-देशः,अन्येषामिति पूर्वपदस्यदीर्घत्वम्)	दोनों हाथों से
वसु	धनानि (विभक्तेर्लुक्)	धनों को
शिशीहि	तीक्ष्णीकुरु (शोतनूकरणेश्लुश्छान्दसः)	पैनी करो
रायः	धनानि	धनों को
आ	आ+	–
भर	आ+भर,आहर (ह्रस्वभत्वम्)	लाओ

संस्कृतार्थः ।

सरलबुद्धिः (इन्द्रः) मदेमदे खल्वसमभ्यं गोयूथानांदाता(अस्ति) (हे इन्द्रः ! त्वम्) उभाभ्यांहस्ताभ्यां बहूनि शतानि धनानि गृहाण (अस्मद् बुद्धिम्) तीक्ष्णीकुरु धनानि (च) आहर ॥ ७ ॥

भाषार्थः ।

सचमुच सरलबुद्धि वाले(इन्द्र) प्रत्येक मद में

हमारे ताईं गौओंके यूथों को देते हैं (हे इन्द्र!) आप दोनों हाथों से बहुत सैंकड़ों धनों को ग्रहण करो (हमारीवुद्धि को) पैनाओ(और) धनों को लेआओ ॥७॥

इन्द्रोदेवता पङ्क्तिश्छन्दः ।८।८।८।८।८।

मादयस्वसुतेसचा शवसेशूरराधसे। विद्माहित्वापुरूवसुमुपकामान्त्ससृज्महे ऽथानोऽविताभव।८।

मादयस्व	मदयुक्तोभव (स्वार्थेणिच्)	तू मद से युक्त हो
सुते	निष्पीडिते (सति)	निचोडे जाने पर
सचा	सह (भूत्वा)	साथ (होकर)
शवसे	बलाऽर्थम्	बल के लिये
शूर	हे शूर !	हे शूरवीर
राधसे	धनार्थम्	धन के लिये

विद्म	जनीमः	हम जानते हैं
हि	खलु	सचमुच
त्वा	त्वाम्	तुझ को
पुरूवसुम्	बहुधनम्	बहुत धन वाले को
उप	समीपे	समीप
कामान्	कामान्	कामनाओं को
ससृज्महे	प्रेपयामः (आ०को०) (व्यत्ययेनश्लुःप्रत्ययः, आत्मनेपदञ्च)	हम भेजते हैं
अथ	इदानीम्	अब
नः	अस्माकम्	हमारा
अविता	रक्षिता	रक्षक
भव	भव	तूहो

संस्कृतार्थः।

हे शूर! सह (भूत्वा सोमे) निष्पीडिते (सति त्वम्)

बलार्थं धनार्थम् (च) मदयुक्तोभव (वयम्)त्वां बहु-
धनं खलु जानीमः (अतस्तव) समीपे कामान् प्रेष-
यामः,इदानीमस्माकं रक्षिताभव ॥ ८ ॥

भावार्थः

हे शूरवीर! इकट्ठे (होकर) (सोमके)निचोड़ेजाने पर आप बल (और) धन के लिये मद से युक्त होवें, सचमुच हम आप को बहुत धन वाला जानते हैं (इस लिये आप के) समीप कामनाओं को भेजते हैं अब आप हमारे रक्षक बनें ॥ ८ ॥

इन्द्रोदेवता पङ्क्तिश्छन्दः ।८।८।८।८।८।

एतेतइन्द्रजन्तवो विश्वंपुष्य-
न्तिवार्यम् । अन्तर्हिख्योजनाना
मर्योवेदोअदाशुषां तेषांनोवेदआ-
भर । ९ ।

१ एते	एते	ये
ते	नवार्थम्	तेरे लिये
इन्द्र	हे इन्द्र !	हे इन्द्र
१ जन्तवः	मनुष्याः	मनुष्य
विश्वम्	सर्वम्	सब को
पुष्यन्ति	वर्धयन्ति (अन्तर्भावितण्यर्थः)	बढ़ाते हैं
वार्यम्	वरणीयम् (वस्तुजातम)	वरने योग्य (पदार्थों) को
२ अन्तः	मध्ये (भूत्वा)	बीच में (होकर)
हि	खलु	सचमुच
२ ख्यः	प्रकथय (ख्याप्रकथनेलोडर्थे-लङ्यडभावः)	प्रकट करो
जनानाम्	मनुष्याणाम्	मनुष्यों के
अर्यः	स्वामी	स्वामी

वेदः	धनम्	धन को
अदाशुषाम्	अदातॄणाम्	न देने वालों के
तेषाम्	तेषाम्	उन के
नः	अस्मभ्यम्	हमारे ताईं
वेदः	धनम्	धन को
आ	आ+	—
भर	आ+भर,आहर (हस्यमत्वम्)	लाओ

संस्कृतार्थः ।

हे इन्द्र ! एते (आर्य्य-) मनुष्याः सर्वं वरणीयम् (वस्तुजातम्) तवार्थं वर्धयन्ति, स्वामी (त्वम्) मध्ये खलु(वर्तमानः सन्)अदातॄणां जनानां धनं प्रकाशय, तेषां धनम् (च) अस्मभ्यमाहर ॥ ९ ॥

भाषार्थः ।

हे इन्द्र ! ये (आर्य्य) मनुष्य संपूर्ण वरने योग्य (पदार्थों) को आप के लिये बढ़ाते हैं, सचमुच बीच में (रहते हुए) स्वामी आप न देनेवाले मनुष्यों के

धन को प्रकट करो (और) उनके धनको हमारे लिये लाओ ॥ ९ ॥

(१) आर्य्य जन इन्द्र के लिये धनों को बढाते हैं अर्थात उस के कामों में धन को व्यय करते हैं केवल अपने स्वार्थ के लिये नहीं जोड़ते।

(२) इन्द्र सब के बीच में हैं इसलिये स्वार्थी के धन को भी जानते हैं वह उस छिपाए हुए धन को प्रकट करें और हमें लाकर देवें।

इत्येकाशीतितमं सूक्तम्।

ऋ०मं० १ सू० ८२।

इन्द्रोदेवता गोतमऋषिः

विनियोग—प्रथम, तृतीय और चतुर्थ मंत्र षोडशी यज्ञ के तृतीय सवन में षोडशी शस्त्र में पढे जाते हैं (आ० सू० ६।२।४)

द्वितीय और तृतीय मंत्र महापितृयज्ञ में आहवनीय के उपस्थान में पढे जाते हैं (श० ब्रा० २।६।१।३८)

सूक्त का संक्षिप्त भाव।

हे इन्द्र! आप हमारी विनय को सुनो, पूर्व से विपरीत भाव को न रक्खो, आपने हमें वाणी का दान दिया है और स्तुति की कामना भी करते हो, फिर पूर्व की न्याईं हमारे स्तोत्र सुनने क्यों नहीं आते, अब शीघ्र रथ में घोड़े जोड़ कर आओ।

हमारे ऋत्विज सोम पान करके आनन्द से सिर हिला चुके हैं, और ऋषि लोग अति नवीन स्तोत्रों से आप की स्तुति कर चुके हैं, इसलिये शीघ्र रथ में घोड़े जोड़ कर आओ। हे इन्द्र ! हम आप दयालु को प्रणाम करते हैं, हम आप भक्तों की स्तुति को सुन कर रथ को धन से पूर्ण करके शीघ्र आओ, जो इन्द्र हमारे धाना युक्त सोमसे भरे पात्र को ताक रहे हैं, वह अवश्य कामनाओं के पूर्ण करने वाले रथको हमारी ओर फेरेंगे। हे इन्द्र ! रथ में दाईं और बाईं ओर के घोड़ों को जोड़ कर हमारे सोम जनित मद से युक्त हुए हुए आप अपनी प्यारी पत्नी की ओर पधारें, मैं आप के घोड़ों को स्तोत्र द्वारा रथमें जोड़ता हूं, आप रासों को पकड़ें और पूषा से युक्त हुए २ पत्नी के सहित हर्षित होवें।

इन्द्रोदेवता पङ्क्तिश्छन्दः ।८।८।८।८।८।

उपोषुशृणुहीगिरो मघवन्मात-
थाइव । यदानःसूनृतावतःकरआ-
दर्थयासइद्योजान्विन्द्रतेहरी ।१।

उपो०	समीपे (उप,सामीप्ये,उदात्तिपद पू.ण;)	समीप
सु	सुष्ठु	भलीप्रकार

शृणुहि	शृणु (हेर्लुगभावश्छान्दसः	सुनो
गिरः	स्तुतीः	स्तुतियों को
मघऽवन्	हे धनवन्!	हे धनवाले
मा	मा	मत
अतथाःऽइव	पूर्वतोविपरीतइव (तथेवाऽऽचरतीति तथाति, अस्मात् क्विप्, तथानेरभावश्च।)	पूर्व काल की न्याईं न होने वाला
यदा	यदा	जब
नः	अस्मान्	हम को
सूनृताऽवतः	प्रियसत्यादिमत्- यावाचायुक्तान्	प्यारी (और) सच्ची वाणी वालों को
करः	अकार्षीः (लुङि स्यप्रत्ययेनदापि- सायकभावः)	किया है
आत्	अपि च (भा०भो०)	और भी
अर्थयासे	वाञ्छसि (छेदादागमः)	चाहते हो
इत्	एव	ही

योज	योजय (णेर्लोपः)	जोड़ो
नु	क्षिप्रम्	शीघ्र
इन्द्र	हे इन्द्र !	हे इन्द्र
ते	तव	तेरे
हरी॰	अश्वौ	दोनों घोड़ों को

संस्कृतार्थः ।

हे धनवन् ! (त्वम्) समीपम् (आगत्याऽस्मत्कृताः) स्तुतीः सुष्ठु शृणु पूर्वतः विपरीत इव मा (भव) यदा (त्वम्)अस्मान् प्रियसत्यात्मिकया वाचायुक्तानकार्षीः रपि च(स्तुती) वाञ्छस्येव, हे इन्द्र ! तवाश्वौ (रथे) क्षिप्रं योजय ॥ १ ॥

भाषार्थः ।

हे धनवाले ! आप समीप आकर (हमारी) स्तुतियों को भली प्रकार सुनें जैसे आप पूर्वकाल में थे उससे विपरीत मत (होवें) जब आपने हम को प्यारी (और) सच्ची वाणी से युक्त किया है और (स्तुतियों को) चाहते भी हो, हे इन्द्र! शीघ्र, अपने दोनों घोड़ों को (रथ में) जोड़ो ॥ १ ॥

पूर्वकाल में, अर्थात हमारे प्राचीन पुरुषाओं के समय में जैसे मित्रभाव रखतेथे अब उससे विपरीत भाव को न रक्खो, क्योंकि आपने हम को स्तुति के योग्य वाणी दी है और आप स्तुति को चाहते भी हो फिर मित्रभाव छोड़नेका कोई हेतु नहीं होना चाहिये।

इन्द्रोदेवता पङ्क्तिश्छन्दः ।८।८।८।८।८।

अक्षन्नमीमदन्तह्यवप्रियाअ-
धूषत। अस्तोषतस्वभा नवोविप्रा-
नविष्ठयामती योजान्विन्द्रतेहरी
।२।

अक्षन्	भुक्तवन्तः (अदेर्लुङिघस्लादेशः)	भक्षण किया है
अमीमदन्त	हर्षिता अभूवन्	हर्षित हुए हैं
हि	खलु	सचमुच
अव	अव+	–
प्रियाः	प्रियाः	प्यारे

अधूषत	अव+अधूषत संचालितवन्तः	हिलाया है
अस्तोषत	स्तुतवन्तः	स्तुति की है
१ स्वऽभानवः	स्वतोदीप्तिमन्तः	स्वयंदीप्ति वाले
विप्राः	ऋषयः	ऋषियों ने
नविष्ठया	अतिनवीनया	अत्यन्त नवीन से
मती	मत्या,स्तोत्रेण	स्तोत्र से
योज	योजय (णेर्लोपः)	जोड़ो
नु	क्षिप्रम्	शीघ्र
इन्द्र	हे इन्द्र !	हे इन्द्र
ते	तव	तेरे
हरी०	अश्वौ	दोनों घोड़ों को

संस्कृतार्थः ।

(अस्मत्-) प्रियाः (ऋत्विजः सोमम्) भक्षित-
वन्तः (भुक्त्वा) हर्षिता अभूवन् (हर्षेण च) (शिरांसि)
खलु संचालितवन्तः, स्वतो दीप्तिमन्तऋषयः (च)
प्रति नवीनेन स्तोत्रेण स्तुतिं कृतवन्तः हे इन्द्र !
इदानीं रथे) तवाश्वौ क्षिप्रंयोजय ॥ २ ॥

भावार्थः ।

(हमारे) प्यारे (ऋत्विजोंने सोम को) भक्षण
कर लिया है, (भक्षण करके) हर्षित हुए हैं (और
हर्ष से) सचमुच(सिरों को) हिलाया है, स्वयं दीप्ति
वाले ऋषियों ने अत्यन्त नवीन स्तोत्र से स्तुति की
है, हे इन्द्र ! (अब रथ में) अपने दोनों घोड़ों को
शीघ्र जोड़ो ॥ २ ॥

(१) स्वयं दीप्तिमान ऋषि अर्थात जो परमात्मा की प्रेरणा से स्वयं प्रकाशित होकर नवीन स्तोत्रों के द्रष्टा और वक्ता हुए हैं।

इन्द्रोदेवता पङ्क्तिश्छन्दः।८।८।८।८।८।

सुसन्दृशंत्वावयं मघवन्वन्दिषी-
महि । प्रनूनंपूर्णवन्धुरः स्तुतोया-

ह्विषां॒अनु॑ योजा॒न्विन्द्र॑ते॒हरी॑।२।

सुऽसन्दृशम्	अनुग्रहदृष्टचा द्रष्टारम्	कृपा दृष्टि से देखने वाले को
त्वा	त्वाम्	तुझ को
वयम्	वयम्	हम
मघऽवन्	हे धनवन् !	हे धन वाले
वन्दिषीमहि	प्रणमामः (लडर्थेलुङ्)	प्रणाम करते हैं
प्र	प्र+	—
ननम्	अवश्यम्	अवश्य
पूर्णऽवन्धुरः	पूरितेनरथेनयुक्तः (सा०मा०)	भरे हुए रथसे युक्त
स्तुतः	स्तुतः	स्तुति किया हुआ
याहि	प्र+याहि प्राप्नुहि	प्राप्त हो

वशान	कामयमानान् (वशकान्तौ)	कामना करने वालों को
अनु	प्रति	की ओर
योज	योजय (णेर्लोपः)	जोड़ों
नु	क्षिप्रम्	शीघ्र
इन्द्र	हे इन्द्र !	हे इन्द्र
ते	तव	तेरे
हरी०	अश्वौ	दोनों घोड़ों को

संस्कृतार्थः।

हे मघवन् ! वयमनुग्रह दृष्ट्या द्रष्टारं त्वां प्रणमामः स्तुतः (त्वम्) (धनैः) पूरितेन रथेन युक्तः (सन्) कामयमानान् (अस्मान्) प्रत्यवश्यं प्राप्नुहि हे इन्द्र ! शीघ्रं तवाऽश्वौ (रथे) योजय।३।

भावार्थः।

हे धन वाले ! कृपा दृष्टि से देखने वाले आप

को हम प्रणाम करते हैं, स्तुति किये हुए आप (धनों से) भरे हुए, रथ से युक्त (होकर हम) कामना करने वालों की ओर अवश्य प्राप्त हों, हे इन्द्र! आप शीघ्र अपने दोनों घोड़ों को (रथ में) जोड़ें ॥३॥

इन्द्रो देवता पङ्क्तिश्छन्दः ।८।८।८।८।८।

सघातंवृषणंरथ मधितिष्ठाति-

गोविदम् । यःपात्रंहारियोजनं पू-

र्णमिन्द्रचिकेतति योजान्विन्द्रते-

हरी । ४ ।

सः	सः	वह
घ	खलु	सचमुच
तम्	तम्	उस को
वृषणम्	(कामानाम्) वर्षितारम	(कामनाओं के) बरसाने वाले को

रथम्	रथम्	रथ को
अधि	अधि+	–
तिष्ठाति	अधि+तिष्ठाति, आरोक्ष्यति (लेट्याडागमः)	चढेगा
गोऽविदम्	गवांप्रापयितारम्	गौओं के प्राप्त कराने वाले को
यः	यः	जो
पात्रम्	पात्रम्	पात्र को
हारिऽयोजनम्	धानामिश्रित-सोमयुक्तम् (सा०भा०)	धानियों से मिले हुए सोम से युक्त को
पूर्णम्	पूर्णम्	भरे हुए को
इन्द्र	हे इन्द्र !	हे इन्द्र
चिकेतति	चिन्तयति (लेटघडागमःशपःश्लुश्च)	चिन्तन करता है

योज	योजय (णेर्लोपः)	जोड़ो
नु	क्षिप्रम्	शीघ्र
इन्द्र	हे इन्द्र !	हे इन्द्र
ते	तव	तेरे
हरी०	अश्वौ	दोनों घोड़ों को

संस्कृतार्थः ।

सः (कामानाम्) वर्षितारं गवांप्रापयितारम् (च) तं रथमारोक्ष्यति, खलु, यो धानामिश्रित-सोमेन पूर्णपात्रं चिन्तयति, हे इन्द्र! तवाऽश्वौ क्षिप्रम् (रथे) योजय ।

भावार्थः ।

वह (कामनाओं के) बरसाने वाले (और) गौओं को प्राप्त कराने वाले सचमुच उस रथ पर अवश्य चढ़ेंगे जो धानियों से मिले हुए सोम से भरे पात्र का चिन्तन कर रहे हैं, हे इन्द्र! अपने दोनों घोड़ों को शीघ्र (रथ में) जोड़ो ॥ ४ ॥

इन्द्रो देवता पङ्क्तिश्छन्दः ।ऽऽऽऽऽऽऽ।

युक्तस्ते अस्तु दक्षिण उत सव्यः

शतक्रतो । तेन जायामुप प्रियां मन्दा-

नो याह्यन्धसो योजा न्विन्द्र ते हरी

। ५ ।

युक्तः	युक्तः	जुड़ा हुआ
ते	तव	तेरा
अस्तु	अस्तु	हो
दक्षिणः	दक्षिणः	दहना
उत	अपि च	और भी
सव्यः	वामः	बाँयाँ
शतऽक्रतो०	हे बहुबल!	हे बहुत बल वाले

तेन	तेन	उस से
जायाम्	जायाम्	पत्नी को
उप	प्रति	की ओर
१ प्रियाम्	प्रियाम्	प्यारी को
मन्दानः	मदयुक्तःसन्	मदसे युक्त हुआ१
१ याहि	गच्छ	जाओ
अन्धसः	सोमेन (तृतीयार्थेषष्ठी)	सोम से
योज	योजय (णेलोपः)	जोड़ो
नु	क्षिप्रम्	शीघ्र
इन्द्र	हे इन्द्र !	हे इन्द्र
ते	तव	तेरे
हरी०	अश्वौ	दोनों घोड़ों को

संस्कृतार्थः ।

हे बहुबलेन्द्र ! तव (रथस्य) दक्षिण- (पार्श्वस्थोऽश्वः) युक्तोऽस्तु वाम-(पार्श्वस्थः) अपि (युक्तोऽस्तु) सोमेन मदयुक्तः (त्वम्) तेन (रथेन) प्रियां जायां प्रति गच्छ (इदानीम्) तवाऽश्वौ क्षिप्रम् (रथे) योजय ।५।

भावार्थः ।

हे बहुत बल वाले इन्द्र ! आप के (रथ के) दहिनी (ओर) का (घोडा) जुड़ा हुआ हो और बाईं (ओर) का भी (जुड़ा हुआ हो) सोम से मद युक्त हुए २ आप उस (रथ) से प्यारी पत्नी के प्रति जावें, (अब) अपने दोनों घोड़ों को शीघ्र (रथ) में जोड़ें ॥ ५ ॥

(१) प्यारी पत्नी की ओर जावें अर्थात हमारे सोम से तृप्त होकर अपने घर को पधारें ।

इन्द्रोदेवता जगतीछन्दः ।१२।१२।१२।१२।१२।

युनज्मि॑ते॒ ब्रह्म॑णा के॒शिना॒ हरी॒ उप॒

प्रया॑हि॒ दधि॒षे गभ॑स्त्योः । उत्त्वा॑-

सु॒तासो॑ र॒भसा॑ अमन्दिषुः पूष॒ण्वा॑-

न॒व॒जि॒न्त्स॒म॒ुप॑त्न्या॒ऽमद॑: । ६ ।

युनज्मि	योजयामि	मैं जोडता हूं
ते	तव	तेरे
१ ब्रह्मणा	स्तोत्रेण	स्तोत्र के द्वारा
केशिना	केशिनौ (सुपामितिविभक्ते-रात्वम्)	बालों वालों को
हरी०	अश्वौ	दोनों घोड़ों को
उप	उप+	–
प्र	प्र+	–
याहि	उप+प्र+याहि	जाओ
दधिषे	धारयस्व (लोडर्थेलिट्)	धारण करो
गभस्त्योः	हस्तयोः	दोनों हाथों में

उत्	उत् +	–
त्वा	त्वाम्	तुझ को
सुतासः	निष्पीडिताः (सोमाः) (जसोऽसुगागमः)	निचोड़े हुए (सोमों) ने
रभसाः	तीव्राः	तीखे
अमन्दिषुः	उत्+अमन्दिषुः, अत्यन्तंमदयुक्त-मकार्षुः	अत्यन्त मद से युक्त किया है
पूषण्ऽवान्	पूष्णायुक्तः	पूषा से युक्त हुए २
वज्रिन्	हे वज्रिन्!	हे वज्र धारी
सम्	सम्यक्	भली प्रकार
उम्०	(पूरणः)	–
पत्न्या	पत्न्यासह	पत्नी के साथ
अमदः	हर्षितोभव (मदीहर्षे,लोडर्थेलङ्)	हर्षित हो

संस्कृतार्थः।

हे वज्रिन्! (अहम्) केशिनौ नवाऽश्वौ स्तोत्रेण (रथे) योजयामि (तेन त्वम्) प्रयाहि हस्तयोः (रश्मींश्च) धारयस्व, निष्पीडितास्तीव्राः (सोमाः) त्वामत्यन्तं मदयुक्तं कृतवन्तः पूषणायुक्तः (त्वम्) पत्न्यासह सम्यग् हर्षितोभव॥ ६॥

भावार्थः।

हे वज्रधारी! मैं बालों वाले आपके दोनों घोड़ों को स्तोत्र के द्वारा (रथ में) जोड़ता हूं (उस से) आप जावें, दोनों हाथों में (रासों को) धारण करें, निचोड़े हुए तीखे (सोमों) ने आपको मद से युक्त किया है, पूषा से युक्त हुए २ आप पत्नी के साथ हर्षित होवें॥ ६॥

(१) स्तोत्र से घोड़ों को जोड़ना इस बात को सूचन करता है कि इन्द्र के रथ, घोड़े, पत्नी इत्यादि सब स्तोत्र जनित हैं और इन्द्र की सत्ता और आगमन को मन में स्थिर करने के निमित्त कथन किये गए हैं।

(२) पूषा से युक्त होना पत्नीके सम्बन्ध से कहा गया है, पूषा देव पत्नियोंके लाने वाले हैं॥

इतिद्व्यशीतितमं सूक्तम्।

ऋ० मं०१ सू० ८३

इन्द्रोदेवता गोतमऋषिः

विनियोग—यह सूक्त अतिरात्र यज्ञ के तृतीय पर्याय में ब्राह्मणाच्छंसी के शस्त्र में पढ़ा जाता है .(आ०सू० ६।४।९)

दूसरा मंत्र अपोनप्त्रीय कर्म में होता के चमस में जल भरने पर पढ़ा जाता है (आ० ५।१।१३)

तीसरा मंत्र हविर्धान शकट के चलाते समय पढ़ा जाता-है (आ० ४।९।४) और प्रवर्ग्य इष्टि में ऋगावान के स्तवन में भी पढ़ा जाता है (आ० ४।६।३)

जिस मनुष्य की इन्द्र रक्षा करते हैं वह गौ घोड़े आदि धन में सब से अग्रगण्य होता है और उस के पास सब प्रकार के धन आकर इस तरह प्राप्त होते हैं जैसे जल चारों ओर से बह कर समुद्र को प्राप्त होते हैं। जो देवताओं से प्रेम रखता है और जो स्तुति-प्रिय है उस को देवता सुमार्ग से चलाते हैं और उस से ऐसी प्रीति करते हैं जैसे वर वधू से। जो स्त्री पुरुष स्रुच लेकर इन्द्र की पूजा करते हैं उन का वचन प्रशंसा के योग्य होता है, वह पुरुष बिना यत्न के ही नियम के अनुकूल चलता है और उस का कभी अमंगल नहीं होता। जब अङ्गिराओं, अथर्वा और उशना कवि ने अग्नि को प्रदीप्त करके देवताओं के लिये यज्ञ किया तब लंबी रात्रि के पीछे सूर्य्यका प्रकाश आर्य्य जाति को पहुंचा और उस के द्वारा उन्होंने गौ घोड़े आदि सब धनों को प्राप्त किया। जहां यज्ञादि शुभ कर्म के लिये कुशा काटी जाती है, अथवा उच्च स्वर से वेद के स्तोत्र उच्चारण किये जाते हैं, अथवा सोम कूटने का पत्थर बजता है, इन में से किसी एक स्थान में इन्द्र रमण करते हैं।

इन्द्रोदेवता जगतीछन्दः ।१२।१२।१२।१२।

अश्वावतिप्रथमोगोषुगच्छति

सुप्रावोरिन्द्रमर्त्यस्तवोतिभिः । त-

मित्पृणक्षिवसुनाभवीयसा सिन्धु-

मापोयथाभितोविचेतसः । १ ।

अश्वऽवति	अश्वयुक्ते (धने)	घोड़ों से युक्त-(धन) में
प्रथमः	प्रथमः (सन्)	मुख्य हुआ २
गोषु	गो-(सम्बन्धिषु धनेषु)	गौओं (संबंधी-धनों) में
गच्छति	चरति	विचरता है
सुप्रऽअवीः	सुष्ठुप्ररक्षितः (अवतेरीकारप्रत्ययः)	भली प्रकार रक्षा किया हुआ
इन्द्र	हे इन्द्र !	हे इन्द्र

मर्त्यः	मनुष्यः	मनुष्य
तव	तव	तेरी
ऊतिऽभिः	रक्षाभिः	रक्षाओं से
तम्	तम्	उस को
इत्	एव	ही
पृणक्षि	संयोजयसि (पृचीसम्पर्के)	संयुक्त करते हो
वसुना	धनेन	धन के साथ
भवीयसा	बहुतरेण (बहुशब्दस्यभूभावे-सतीकारलोपाभाव श्छान्दसः)	बहुत अधिक से
सिन्धुम्	समुद्रम्	समुद्र को
आपः	आपः	जल
यथा	यथा	जैसे
अभितः	सर्वतः	सब ओर से

विऽचेतसः	विशिष्ट चेतना युक्ताः	विशेष चेतना से युक्त

संस्कृतार्थः।

हे इन्द्र! (यः) मनुष्यस्तवरक्षाभिः सुष्ठु प्रक्षितः (भवति सः) अश्वयुक्ते (धने) गोसम्बन्धिषु (च धनेषु) प्रथमः (भूत्वा) चरति, तमेव (त्वम्) बहुतरेण धनेन सह संयोजयसि यथा विशिष्ट चेतना युक्ताआपः सर्वतः समुद्रम् (आत्मना संयोजयन्ति)।१।

भावार्थः।

हे इन्द्र! (जो) मनुष्य आप की रक्षाओं से भली प्रकार रक्षित (होता है वह) घोड़े (और) गौओं से युक्त (धनों) में मुखिया (होकर) विचरता है, उसी को आप बहुत अधिक धन से संयुक्त करते हैं जैसे विशेष चेतना से युक्त जल सब ओर से समुद्र (के साथ संयुक्त होते हैं)॥ १ ॥

जैसे जल, अत्यन्त चेतनावान पुरुष की न्याईं रस्ता न भूल कर सब ओर से समुद्र को ही प्राप्त होते हैं वैसे ही और, मनुष्यों को छोड़ कर, इन्द्र से रक्षित मनुष्य को ही सब ओर से धन आकर प्राप्त होते हैं।

इन्द्रोदेवता जगतीछन्दः ।१२।१२।१२।१२।

आपोनदेवीरुपयन्तिहोत्रियं म-
वःपश्यन्तिविततंयथारजः । प्राचै-
र्देवासःप्रणयन्तिदेवयुं ब्रह्मप्रियंजो-
षयन्तेवराइव । २ ।

१ आपः	आपः	जल
न	इव	की न्याईं
देवीः	द्योतमानाः (पूर्वसवर्णदीर्घः)	प्रकाश मान
उप	उप +	–
१ यन्ति	उप+यन्ति, प्राप्नुवन्ति	प्राप्त होते हैं
होत्रियम्	होतृसम्बन्धि (चमसम्)	होता के (चमस पात्र) को

२ अव:	अधस्तात् (अव्ययम्)	नीचे की ओर
पश्यन्ति	पश्यन्ति	देखते हैं
२ विऽततम्	विस्तीर्णम्	फैला हुआ
यथा	यथा	जैसे
२ रज:	अन्तरिक्षम्	अन्तरिक्ष
२ प्राचै:	प्रकृष्टगमनैः (प्रपूर्वाद्ञ्चतेर्भावे कः प्रत्ययो नलोपश्च)	उत्तम मार्गों से
देवास:	देवाः (जसोऽसुगागमः)	देवता
प्र	प्र+	–
२ नयन्ति	प्र+नयन्ति	भली प्रकार ले जाते हैं
२ देवऽयुम्	देवान्कामयमानम्	देवताओंकी कामना करते हुए को
ब्रह्मऽप्रियम्	स्तोत्रप्रियम्	स्तोत्र को प्यार करने वाले को

२ जोषयन्त	प्रीयन्ते (स्वःतमनःप्रयोजकत्वाद् हेतुमतिणिच्)	प्रीति करते हैं
१ वराऽइव	वराइव	वरों की न्याईं

संस्कृतार्थः

देवाः स्तोत्रप्रियं देवान्कामयमानम्(यजमानम्) होतुः (चमसपात्रम्) द्योतमाना आप इव प्राप्नुवन्ति, विस्तीर्णमन्तरिक्षमिव (च) अधस्तात्पश्यन्ति (तमेनम्) उत्तम मार्गैः प्रणयन्ति वराइव (च) प्रीयन्ते ॥२॥

भावार्थः।

देवता स्तोत्र को प्यार करने वाले, देव भक्त (यजमान) को ऐसे प्राप्त होते हैं जैसे होता के (चमसपात्र को) प्रकाशमान जल, (और) विस्तार वाले अन्तरिक्ष की न्याईं नीचे की ओर देखते हैं (वे उसको) उत्तम मार्गों से ले जाते हैं (और) वरों की न्याईं प्रीति करते हैं ॥ २ ॥

(१) जैसे होता के चमस पात्र में रखे हुए जल की सत्ता में किसी को सन्देह नहीं होता, ऐसे ही स्तोत्र प्रिय देवभक्त यजमान को देवता अवश्य प्राप्त होते हैं उन के दृष्टि गोचर न होने से उन की सत्ता में सन्देह नहीं करना चाहिये।

(२) देवता ऊपर से यजमान को वैसे देखते हैं जैसे अन्तरिक्ष, पृथिवी को देखता है,वे उस को सुमार्ग से लेचलते हैं और उस में ऐसी प्रीति करते हैं जैसे स्वयंवर में इकट्ठे हुए २ बहुत से वर एक स्त्री में प्रीति करते हैं ॥

इन्द्रोदेवता जगतीछन्दः ।१२।१२।१२।१२।

अधिद्वयोरदधाउक्थ्यंवचो य-
तस्रुचामिथुनायासपर्यतः । असं-
यत्तोव्रतेतेचेतिपुष्यति भद्राशक्ति-
र्यजमानायसुन्वते ॥ २ ॥

अधि	अधि+	—
द्वयोः	द्वयोः	दोनों में
अदधाः	अधि+अदधाः, निहितवानसि	तूने स्थापन किया है
उक्थ्यम	प्रशस्यम् (निरु०३।८)	प्रशंसनीय को
वचः	वचः	वचन को

यतऽस्रुचा	यते (हस्तेन) धृते स्रुचौयाभ्यांतौ (सुपामितिविभके-रात्वम्)	जिन्होंने (हाथ)में स्रुचों को पकड़ाहै
मिथुना	स्त्रीपुरुषौ	स्त्री (और) पुरुष
या	यौ "	जो दोनों
सपर्यतः	" पूजयतः (सपर पूजायाम्)	पूजन करते हैं
२असमऽयत्तः	अतियत्नरहितः	बहुत यत्न से रहित
२ व्रते	व्रते	नियम में
ते	तव	तेरे
२ क्षेति	निवसति (क्षिनिवासे)	निवास करता है
पुष्यति	पुष्टोभवति	पुष्ट होताहै
१ भद्रा	कल्याणरूपा	कल्याण रूप
१ शक्तिः	शक्तिः	शक्ति

यजमानाय	यजमानाय	यजमानके ताईं
सुन्वते	(सोमस्य)अभिषवं कुर्वते	(सोम) निचोड़ने वाले के ताईं

संस्कृतार्थः ।

(हे इन्द्र ! त्वं तयोः) द्वयोः प्रशस्यंवचो निहितवानसि यो स्त्रीपुरुषो घृतस्रुचौ (सन्तौ) (त्वाम्) पूजयतः (स पुरुषः) अतियत्न रहितः (अपि) त्वदीये व्रते निवसन्नि पुष्टः (च) भवति, (सोमस्य) अभिषवं कुर्वते (तस्मै) यजमानाय कल्याण रूपा शक्तिः (प्राप्नोति) ॥ ३ ॥

भावार्थः ।

(हे इन्द्र !) आपने (उन) दोनों में प्रशंसा योग्य वचन को स्थापन किया है जो स्त्री पुरुष स्रुच ले कर (आप का) पूजन करते हैं वह यजमान) बहुत प्रयत्न के विना (भी) आप के नियम में रहता है (और) पुष्ट होता है, (सोम) निचोड़ने वाले (उस) यजमान के ताईं कल्याण रूप शक्ति (प्राप्त होती हैं ।३।

(१) जो स्त्री और पुरुष स्रुच ले कर आहुति द्वारा इन्द्र का पूजन करते हैं उन में इन्द्र ने प्रशंसा योग्य वचन को स्थापन किया है अर्थात उन की वाणी या देव तथा प्रशंसा के योग्य होता है ॥

(२) उस यजमान के लिये इन्द्र के मत अर्थात् व्रत पर चलना स्वाभाविक जैसा होजाताहै उस को बहुत यत्न नहीं करना पड़ता।

(३) सोम निचोडन वाले को कल्याणरूप शक्ति प्राप्त होती है जिस से वह सदा अमंगल को मारा करके मंगल का सेवन करता है॥

इन्द्रोदेवता जगतीछन्दः ।१२।१२।१२।१२

आदङ्गिराःप्रथमंदधिरेवय इद्धा-

ऽग्नयःशम्यायेसुकृत्यया। सर्वंपणेः

समविन्दन्तभोजन मश्वावन्तंगो-

मन्तमापशुंनरः॥ ४॥

आत्	अनन्तरम्	(इस के)अनन्तर
अङ्गिराः	अङ्गिरसः (सुपामितिजसःसुः)	अंगिराओं ने
प्रथमम्	पूर्वम्	पहिले
दधिरे	सम्पादितवन्तः	संपादन किया

वयः	(हवीरूपम्) अन्नम्	(हविरूप)अन्नको
इद्धऽअग्नयः	प्रदीप्ताऽग्नयः	अग्नि को प्रदीप्त करने वाले
शम्या	कर्म्मणा (शमीतिकर्म्मनाम निघं०२।१)	कर्म्म से
ये	ये	जो
सुऽकृत्यया	सुष्ठुकर्त्तव्यवता	सुन्दर कर्त्तव्य युक्त से
सर्वम्	सर्वम्	सम्पूर्ण को
पणेः	पणेः	पणि के
सम्	सम् +	–
अविन्दन्त	सम् + अविन्दन्त समलभन्त	भली प्रकार प्राप्त किया
भोजनम्	धनम् (निघं०२।१०)	धन को
अश्वऽवन्तम्	अश्वैर्युक्तम्	घोड़ों से युक्त को

गोऽमन्तम्	गोभिरुपेतम्	गौओं से युक्त को
आ	(समुच्चये)	और
पशुम्	पशुम्	पशु को
नरः	नराः	नरों ने

संस्कृतार्थः ।

येऽङ्गिरसः सुकर्तव्यवता कर्मणा प्रदीप्ताग्नयः (सन्तः सर्वेभ्यः) प्रथमम् (हवीरूपम) अन्नंसम्पादितवन्तः (ते) नराअनन्तरम् (एव) पणेरश्वैर्युक्तं गोभिरुपेतं पशुयुक्तम् (च) सर्वधनं समलभन्त ॥ ४ ॥

भावार्थः ।

जिन अंगिराओं ने सुन्दर कर्तव्य युक्त कर्म से अग्नि को प्रदीप्त कर के (सब से) पहिले (हविरूप) अन्न को संपादन किया, (उन) नरों ने तुरन्त (ही) पणि के घोड़ों, गौओं (और) पशुयुक्त संपूर्ण धन को भली प्रकार प्राप्तकिया ॥ ४ ॥

पणि अन्धकार रूपी असुर है जिस का धन सूर्य्य की किरणें हैं जिन को यह कंजूसकी न्याईं छिपा कर रखता है, ये किरणें ही घोड़े गौ और अन्य सब धन का मूल कारण हैं, अङ्गिराओं ने सब

से पहले अग्नि को प्रदीप्त करके उस में देवताओं के लिये हवि दो और इस के फल में उन को पणि का धन अर्थात सूर्य का खुला प्रकाश प्राप्त हुआ जो सब धनों से उत्तम धन और सब धनों का मूल कारण है ॥

इन्द्रोदेवता जगतीछन्दः। १२।१२।१२।१२

यज्ञैरथर्वाप्रथमःपथस्तते ततः
सूर्योव्रतपावेनआजनि । आगाआ-
जदुशनाकाव्यःसचा यमस्यजात-
ममृतंयजामहे ॥५॥

यज्ञैः	यज्ञैः	यज्ञों से
अथर्वा	अथर्वा	अथर्वा ने
प्रथमः	पूर्वम् (जिह्मयत्पवः)	पहिले
पथः	मार्गान्	रस्तों को

तते	तनुते,विस्तारित वानित्यर्थः (लिडर्थेलट्, सा०भा०	विस्तृत किया
ततः	तदनन्तरम्	उस के अनन्तर
सूर्य्यः	सूर्य्यः	सूर्य्य
व्रतऽपाः	व्रतानां पालयिता	नियमों के पालन करने वाला
वेनः	कान्तिमान्	कान्ति वाला
आ	(समुच्चये)	और
आजनि	आ+अजनि, प्रादुरभूत्	प्रकट हुआ
आ	आ+	—
गाः	गाः	गौओं को
आजत्	आ + आजत् सञ्चालितवान (अजगतौ,सम्मर्पित ०र्थः)	हांका
उशना	उशना	उशना ने

काव्यः	कवेःपुत्रः	कवि का पुत्र
सचा	सह (एव)	साथ (ही)
यमस्य	यमस्य	यम के
जातम्	उत्पन्नम् (पुत्रम्)	पुत्र को
अमृतम्	मरण रहितम्	मरण से रहित को
यजामहे	पूजयामः	हम पूजन करते हैं

संस्कृतार्थः।

पूर्वमथर्वा यज्ञैः (स्वर्गस्य) मार्गान् विस्तारितवान् ततो व्रतानां पालयिता कान्तिमान्सूर्य्यः प्रादुरभून् कवेःपुत्रउशना च सह(एव) गाःसञ्चालितवान्(वयम्) यमस्य मरण रहितं पुत्रम् (त सूर्य्यम्) पूजयामः॥५॥

भावार्थः।

पहिले अथर्वा ने यज्ञों से (स्वर्ग के) मार्गों को विस्तृत किया, फिर नियमों के पालन करने वाले कान्तिमान सूर्य्य प्रकट हुए और कवि के पुत्र उशना ने साथ (ही) गौओं को हांका, हम यम के मरण रहित पुत्र (उस सूर्य्य) का पूजन करते हैं ॥५॥

अव मेरु समीपस्थ देशों को लम्बी रात्रि में हमारे प्राचीन पिता अथर्वा ने यज्ञों को संपादन किया तब सूर्य भगवान् प्रकट हुए और उशना कवि ने कंजूस पणि की किरण रूप गौओं को हांका अर्थात जैसे शत्रु की गौअ.को हांक कर अपने घर ले जाते हैं इस प्रकार किरण रूपी धन को आर्य्य जाति के लिये प्राप्त किया, ऐसे यम अर्थात अन्धकार रूप मृत्यु के मरण रहित पुत्र सूर्य भगवान को हम नमस्कार और यज्ञ द्वारा पूजन करते हैं ॥

इन्द्रोदेवता निचृज्जगतीछन्दः।१२।११।१२।१२।

बर्हिर्वायत्स्वपत्यायवृज्यते ऽर्को-वाश्लोकमाघोषतेदिवि। ग्रावायत्र-वदतिकारुरुक्थ्य१ स्तस्येदिन्द्रो-अभिपित्वेषुरण्यति ॥ ६ ॥

बर्हिः	बर्हिः	कुशा
वा	खलु	सचमुच
यत्	यदा	जब

सुऽअपत्याय	शोभनाऽपत्यहेतुः भूताय (कर्मणे, (सा०भा०)	शुभ कर्म केलिये
वृज्यते	छिद्यते	काटी जाती है
अर्कः	स्तोता (आ०भो०)	स्तोता
वा	वा	अथवा
श्लोकम्	श्लोकम्	श्लोक को
आऽघोषते	प्रतिध्वनयति	गुंजाता है
दिवि	दिवि	आकाश में
१ ग्रावा	उपलः	ऊपर का पत्थर
यत्र	यत्र	जहां
वदति	शब्दं करोति	शब्द करता है
१ कारुः	स्तोतेव (कारुरितिस्तोतृ नाम निघं० ३।१६) (लुप्तोपमेयम्)	स्तोता की न्याईं

उक्थ्यः	उक्थस्यशस्त्रस्य-शंसिता	स्तुति के राग बोलने वाला
तस्य	तस्य एतेषामन्य-तमस्येत्यर्थः	इनमें से किसी एक के
इत्	(पूरणः)	— -
इन्द्रः	इन्द्रः	इन्द्र
अभिऽपित्वेषु	अभिप्राप्तिषु	प्राप्त होने पर
रण्यति	रमते	क्रीड़ा करता है

संस्कृतार्थः ।

यदा खलु शुभकर्म्मार्थं बर्हिश्छिद्यते, अथवा स्तोता दिवि श्लोकं प्रतिध्वनयति यत्र (वा) उपलः शस्त्रस्य शंसिता स्तोतेव शब्दं करोति, एतेषामन्यतमस्य प्राप्तिष्विन्द्रोरमते ॥ ६ ॥

भाषार्थः।

जब सचमुच शुभ कर्म्म के लिये कुशा काटी जाती है, अथवा स्तोता श्लोक को आकाश में गुंजाता

है (वा) जहां उपल स्तुति के राग बोलने वाले स्तोता की न्याई शब्द करता है इन में से किसी एक के प्राप्त होने पर इन्द्र रमण करते हैं ॥ ६ ॥

उपल वह पत्थर का वट्टा है जिस से सोम कूटा जाता है, सोम कूटने के लिये प्रथम १० अंगुल व्यास के और एक हाथ गहरे चार कूप खोदे जाते हैं, उनके ऊपर काष्ठ के दो फलक (तखते) रखे जाते हैं उन पर लाल रंगा हुआ चर्म बिछाया जाता है, उस पर सोम डाल कर पत्थरों से कूटा जाता है, इस प्रकार कूटने से बहुत शब्द होता है जिस को ऋषि स्तोता के शस्त्रपाठ से उपमा देते हैं।

इति त्र्यशीतितमं सूक्तम् ।

ऋ० मं०१ सू०८४।

इन्द्रोदेवता गोतमऋषिः।

विनियोगः—

१–६ "असाविसोम–" इत्याद्यात्मकौतृचौ षोडशीशस्त्रे आभिप्लविकेषूक्थ्येषु च स्तोत्रियानुरूपौ (आ० ६।२।२,७।८।३)

७–९ "यएकइद्विदयते–" इत्याद्यात्मकस्तृच आभिप्लविकेषूक्थेषुस्तोत्रियः (आ०७।८।२)

१०–१२ "स्वादोरित्थाविषूवतः" इत्याद्यात्मकस्तृचश्चातुर्विंशिकेऽहनि माध्यन्दिने सवनेऽच्छावाकस्य स्तोत्रियः (आ०७।४।४)

१३–१५ "इन्द्रोदधीचः–"इत्याद्यात्मकस्तृच श्चातुर्विंशिकेऽहनि प्रातः सवनेब्राह्मणाच्छंसिनः शस्त्रे स्तोत्रियः (आ०७।२।३)

१५ "अत्राहगोः" इत्येषा सौर्य्याचन्द्रमसयोरिष्टयोरनुवाक्या (आ०९।८।३)

१६–१७ "कोअद्य"–"कईषते–"इति द्वे ऋचौ सर्वपृष्ठायामिष्टौ कायस्य हविषो याज्यानुवाक्ये (आ०४।१२।३)

शेषाणांलैङ्गिको विनियोगः।

सूक्तस्य भावार्थः।

अस्माभिः सोमोऽभिषुतस्तत्पानार्थमिन्द्रआगच्छेत, तज्जनित बलेनपूरितश्चभवेत् ॥ १ ॥ ऋषीणां स्तुतीःप्रति मनुष्याणां च यज्ञं प्रत्यपराजितबलमिन्द्र तदीयावश्वौ प्रापयत ॥ २ ॥ तावस्मत्स्तुतिभीरथेयुक्तौस्तः, अस्मत् सोमकुट्टनशब्दश्चेन्द्रस्यमनइहप्रेरयेत् ॥ ३ ॥ आगत इन्द्रमस्माभिर्निष्पीडितं सोमं पिबतु तदर्थमेव सोमस्यधाराः क्षरितवत्यः ॥ ४ ॥ इदानीमस्माभिरिन्द्रोऽर्चनीयः स्तोत्राणि वक्त-

द्यानि, मद्युक्तस्य तस्य महद्बलं च नमस्कर्तव्यम् ॥५॥ इन्द्रो यदा निजावश्वौ रथे योजयति तदा तस्मादन्यो रथितरो न दृश्यते न बलेन तत्सदृशोऽन्यः कश्चिद्भवति न च कश्चिदश्वारोहस्तमाप्तुं शक्नोति ॥६॥ एक एव य इन्द्रो भक्ताय धनं ददाति स केनाऽपि वारयितुं न शक्यते ॥ ७ ॥ कदा दानहीनमनार्य्यजनं पादेन मर्दयिष्यति, कदा चाऽस्मत्कृताःस्तुतीः श्रोष्यति॥८॥बहुषु मनुष्येषु यः कश्चित्सोमेनेन्द्रं परिचरति स उग्रस्य बलस्य स्वामी भवति॥९॥ मधुरूपा गौरवर्णा गावो ऽन्तरिक्षे सोमं पिबन्त्य इन्द्रेण सहगच्छन्त्यश्च तदीयराज्ये मोदन्ते१० तापवेन्द्रस्य प्रियाश्चित्रा मेघरूपा गावःसोमंपयसामिश्रयन्त्यस्तस्ये-न्द्रस्यवज्रंप्रेरयन्ति ।११। तस्यबलं नमस्कारेणपूजयन्त्यश्च तास्तस्यैव व्रतान्यनुगच्छन्ति, अतस्तदीये राज्येऽग्रगण्याःसत्यो निवसन्ति ।१२। इन्द्रः सूर्यरूपस्यदधीचो नक्षत्ररूपैरस्थिभिरनेकानि तमोरूपाणि वृत्राणि जघान ॥ १३ ॥ यदादेवा वृत्रैरपह्नुतान्सूर्य्यरश्मीनन्वेषितवन्तस्तदा तांश्चन्द्ररूपे सरोवरे लब्धवन्तः ॥ १४ ॥ चन्द्रज्योतिष्यन्तर्हितौ वृषभरूपः सूर्य्यं एवेतिनिश्चितवन्तश्च ॥ १५ ॥ यःकर्मोद्युक्तान्, सुखसम्पादकान्, शत्रुवक्षसि पादप्रक्षेपकान्,मुखेबाणरूपाणां मंत्राणां धारकानृत्विजो यज्ञे नियोज्य तेषां भरणं निष्पादयति जीवनोत्कृष्टतां प्राप्नोति ॥१६॥ ऋत्विजोऽन्यः कःपुरुषः बहुनाकष्टेन यज्ञं साधयित्वायजमानस्य शरीरधनभृत्य सन्तानार्थं जनरयर्थंदधर्थं चेन्द्रे श्रद्दधानः सन्नाऽऽशास्ते? ॥१७॥ ऋत्विजोऽन्यःकोऽग्निंस्तौति? कश्चमत्यावर्तिभ्यऋतुभ्य घृतेनहविषा च देवान् यजति? देवायजमानं विहाय कस्मैधनमावहन्ति ? कश्चाऽस्मादन्यः सुदेवो भूत्वेन्द्रं ज्ञातुं शक्नोति? ॥१८॥ इन्द्र एव मर्त्यं हीनावस्थायां प्रोत्साहयति,यस्मादन्यः कश्चित् समाश्वासयिता नास्तीतिसत्यमेव ॥ १९ ॥ तस्य दानानि रक्षाश्चास्मान् कदापि नोपेक्षन्ताम्, मनुष्यहितैरतः सोऽनार्यं मनुष्येभ्यः सर्वाणि धनान्याहृत्याऽस्मान् प्रति प्रापयतु ।२०

आ	आ+	—
त्वा	त्वाम्	तुझ को
पृणक्तु	आ+पृणक्तु, पूरयतु	पूर्ण कर
इन्द्रियम्	बलम्	बल
रजः	आकाशम्	आकाश को
सूर्यः	सूर्यः	सूर्य
न	इव	की न्याईं
रश्मिऽभिः	रश्मिभिः	किरणों से

संस्कृतार्थः।

हे बलवत्तमेन्द्र ! तुभ्यं सोमोऽभिषुतः, हे प्रगल्भ ! आगच्छ त्वाम् (सोमपान जनितम्) बलं पूरयतु यथा सूर्योरश्मिभिराकाशम् (पूरयति) ॥१॥

भाषार्थः।

हे सब से अधिक बल वाले इन्द्र ! आप के लिये सोम निचोड़ा गया है, हे बेधड़क ! आओ आप को (सोम पानसे उत्पन्न हुआ) बल पूर्ण करे जैसे सूर्य्य किरणों से आकाश को (पूर्ण करता है) ।१।

इन्द्रोदेवता,अनुष्टुप्छन्दः ।८।८।८।८

इन्द्रमिद्धरीवहतोऽप्रतिधृष्ट-
शवसम्। ऋषीणांचस्तुतीरुप यज्ञ-
ञ्चमानुषाणाम् ॥ २ ॥

इन्द्रम्	इन्द्रम्	इन्द्र को
इत्	(पूरणः)	–
हरी०	अश्वौ	घोड़े
वहतः	नयतः	ले जाते हैं
अप्रतिधृष्ट ऽशवसम्	प्रतिधर्षणरहित बलयुक्तम्	न दबने वाले बल संयुक्त को
ऋषीणाम्	ऋषीणाम्	ऋषियों की
च	च	और

आ	आ+	–
त्वा	त्वाम्	तुझ को
पृणतु	आ+पृणक्तु, पूरयतु	पूर्ण करं
इन्द्रियम्	बलम्	बल
रजः	आकाशम्	आकाश को
सूर्यः	सूर्य्यः	सूर्य्य
न	इव	की न्याईं
रश्मिऽभिः	रश्मिभिः	किरणों से

संस्कृतार्थः।

हे बलवत्तमेन्द्र! तुभ्यं सोमोऽभिषुतः, हे प्रगल्भ! आगच्छ त्वाम् (सोमपान जनितम्) बलं पूरयतु यथा सूर्योरश्मिभिराकाशम् (पूरयति) ॥१॥

भावार्थः।

हे सब से अधिक बल वाले इन्द्र! आप के लिये सोम निचोड़ा गया है, हे वेधड़क! आओ आप को (सोम पानसे उत्पन्न हुआ) बल पूर्ण करे जैसे सूर्य्य किरणों से आकाश को (पूर्ण करताहै)।१।

इन्द्रोदेवता,अनुष्टुप्छन्दः ।८।८।८।८

इन्द्रमिद्धरीवहतोऽप्रतिधृष्ट-
शवसम्। ऋषीणांचस्तुतीरुप यज्ञ-
ञ्चमानुषाणाम् ॥ २ ॥

इन्द्रम्	इन्द्रम्	इन्द्र को
इत्	(पूरणः)	–
हरी०	अश्वौ	घोड़े
वहतः	नयतः	ले जाते हैं
अप्रतिधृष्ट ऽशवसम्	प्रतिधर्षणरहित बलयुक्तम्	न दबने वाले बल से युक्त को
ऋषीणाम्	ऋषीणाम्	ऋषियों की
च	च	और

स्तुतीः	स्तुतीः	स्तुतियों को
उप	प्रति	कीओर
यज्ञम्	यज्ञम्	यज्ञको
च	च	और
मानुषाणाम्	मनुष्याणाम्	मनुष्यों के

संस्कृतार्थः।

प्रतिधर्षणरहितबलयुक्तमिन्द्रम् (तदीयौ) अश्वा वृषीणां स्तुती मनुष्याणां च यज्ञं प्रति नयतः ॥ २ ॥

भावार्थः ।

न दबने वाले बल से युक्त इन्द्र को (उन के) घोड़े ऋषियों की स्तुति और मनुष्यों के यज्ञ के प्रति लेजाते हैं ॥ २ ॥

इन्द्रोदेवता, अनुष्टुप्छन्दः ।८।८।८।८

आतिष्ठवृत्रहन्रथं युक्तातेब्रह्म-

णाहरी। अर्वाचीनंसुतेमनो ग्रावाकृ-

गोतुवग्नुना ॥ ३ ॥

आ	आ+	–
तिष्ठ	आ+तिष्ठ, आरोह	चढ़ो
वृत्रऽहन्	हेवृत्रस्यहन्तः !	हेवृत्रकेमारनेवाले
रथम्	रथम्	रथको
युक्ता	युक्तौ (सुपामितिविभक्ते राकारम्)	जुड़गएहैं
ते	तव	तेरे
ब्रह्मणा	स्तोत्रेण	स्तोत्रकेद्वारा
हरी॰	अश्वौ	घोड़े
अर्वाचीनम्	इतः	इधर
सु	सुष्ठु	भलीप्रकार

ते	तव	तेरे
मनः	मनः	मनको
ग्रावा	ग्रावा	(सोमकूटनेका) पत्थर
कृणोतु	करोतु (कृविकरणे)	करे
वग्नुना	शब्देन (वचेर्नुप्रत्ययः)	शब्द से

संस्कृतार्थः।

हे वृत्रस्यहन्तः ! (त्वम्) रथमारोह स्तोत्रेण तवाऽश्वौ युक्तौ (विद्येते) ग्रावा (सोमकुट्टन·) शब्देन तव मनः सुष्ठिवतः करोतु ॥ ३ ॥

भाषार्थः।

हे वृत्र के मारने वाले ! आप रथपर चढ़ें स्तोत्र के द्वारा आप के दोनों घोड़े जुड़ गए हैं, (सोम कूटने को) पत्थर शब्द से आप के मन को भली प्रकार इधर करे ॥ ३ ॥

इन्द्र के रथ में घोड़े जुड़ने का कारण हमारा स्तोत्र है, और हमारे घर की ओर रथ को प्रेरण करने का कारण हमारे सोम कूटने का शब्द है ॥

इन्द्रोदेवता, अनुष्टुपछन्दः ।८।८।८।८

इमामिन्द्रसतंपिबज्येष्ठमम-
र्त्यंमदम् । शुक्रस्यत्वाऽभ्यक्षरन्
धाराऋतस्यसादने ।४।

इमम्	इमम्	इसको
इन्द्र	हे इन्द्र !	हे इन्द्र
सुतम्	निष्पीडितम्	निचोड़े हुए को
पिब	पिब	पीओ
ज्येष्ठम्	श्रेष्ठम्	उत्तम को
अमर्त्यम्	मरणरहितम्	मरणसेरहितको
मदम्	मदरूपम्	मदरूपको

शुक्रस्य	दीप्तस्य	दीप्ति वाले की
त्वा	त्वाम्	तुझ को
अभि	प्रति	की ओर
अक्षरन्	क्षरितवत्यः	बही हैं
धाराः	धाराः	धाराएं
ऋतस्य	ऋतस्य	ऋतके
सदने	स्थाने	स्थान में

संस्कृतार्थः।

हे इन्द्र ! (त्वम्) श्रेष्ठं मरणरहितं मदरूपमिमं निष्पीडितम् (सोमम्) पिब दीप्तस्य (अस्य) धारा ऋतस्य स्थाने त्वां प्रति क्षरितवत्यः ॥ ४ ॥

भावार्थः।

हे इन्द्र ! आप उत्तम, अमर, मदरूप इस निचोड़े हुए (सोम) को पीओ (इस) दीप्ति वाले की धाराएं ऋत के स्थान में आप की ओर बही हैं।४।

(१) ऋत जो सब देवताओं का स्थान है वही इन्द्र का स्थान है, मनुष्यों का स्थान अनृत है जिस में रह कर वे अनेक दुःखों को उठाते हैं और जिस से बचने का उपाय ऋत की शरण है ॥

इन्द्रोदेवता, अनुष्टुप्छन्दः ।८।८।८।८।

इन्द्रायनूनमर्चतोक्थानिचब्र-
वीतन । सुताअमत्सुरिन्दवो ज्ये-
ष्ठंनमस्यतासहः ॥ ५ ॥

इन्द्राय	इन्द्राय	इन्द्र के लिये
नूनम्	इदानीम् (आ०को०)	अब
अर्चत	पूजनंकुरुत	पूजन करो
उक्थानि	स्तोत्राणि	स्तोत्रों को
च	च	और
ब्रवीतन	ब्रूत (तनबादेशः)	बोलो

सुताः	निष्पीडिताः	निचोड़े हुए
अमत्सुः	मदयुक्तकृतवन्तः (अन्तर्भावितण्यर्थः)	मद से युक्त किया है
इन्दवः	सोमाः	सोमों ने
ज्येष्ठम्	ज्येष्ठम्	सब से बड़े को
नमस्यत	नमस्कुरुत	नमस्कार करो
सहः	बलम्	बल को

संस्कृतार्थः ।

इदानीमिन्द्राय पूजनं कुरुत स्तोत्राणि च ब्रूत (एनम्) निष्पीडिताः सोमा मदयुक्तं कृतवन्तः (तस्य) ज्येष्ठं बलं नमस्कुरुत ॥ ५ ॥

भाषार्थः ।

अब इन्द्र के लिये पूजन करो और स्तोत्रों को उच्चारण करो (इस को) निचोडे हुए सोमों ने मद से युक्त किया है सब से बड़े (इस के) बल को नमस्कार करो ॥ ५ ॥

इन्द्र का बल सब से बड़ा है उस को हमारा नमस्कार हो उस की ओट में होने से ही हम निर्भय रह सकते हैं ॥

इन्द्रोदेवता,अनुष्टुप्छन्दः ।८।८।८।८।

नकिष्ट्वद्रथीतरो हरीयदिन्द्रय-
च्छसे।नकिष्ट्वाऽनुमज्मना नकि:
स्वश्वआनशे। ६ ।

नकि:	नहि	नहीं
त्वत्	त्वत्तः	तुझ से
रथिऽतर:	रथितरः	बढ़कर रथवान
हरी०	अश्वौ	दोनों घोड़ों को
यत्	यदा	जब
इन्द्र	हे इन्द्र !	हे इन्द्र
यच्छसे	योजयसि (सा०मा०)	जोड़ते हो
नकि:	नहि	नहीं

त्वा	त्वाम्	तुझ को
अनु	(साम्ये)	समान
मज्मना	बलेन	बल से
नकिः	नहि	नहीं
सुऽअश्वः	कुशलाऽश्वारोहः	कुशल घोडे का सवार
आनशे	प्राप्तवान्	पहुंचा है

संस्कृतार्थः ।

हे इन्द्र ! यदा (त्वम्) अश्वौ (रथे) योजयसि (तदा) त्वत्तोरथितरो न (कोऽपिदृश्यते), बलेन तव समानः (अन्यः) न-(अस्ति,कोऽपि) कुशलाऽश्वारोहः (च त्वाम्) न प्राप्तवान् ॥ ६ ॥

भावार्थः ।

हे इन्द्र! जब आप घोड़ों को (रथ में)जोड़ते हो (तब) आप से बढ कर रथवान (कोई) नहीं (दीखता) बलमें आपके समान दूसरानहीं (है और कोई)कुशल घोड़े का सवार(आप को) नहीं पहुंचा है ॥ ६ ॥

वास्तव में सब से बड़ा बल आत्म रूपी इन्द्र का बल है ।

इन्द्रोदेवता,उष्णिक्छन्दः ।८।८।१२।

यएकइद्विदयते वसुमर्ताय-दाशुषे । ईशानोअप्रतिष्कुतइन्द्रो-अङ्ग ॥ ७ ॥

यः	यः	जो
एकः	एकः	अकेला
इत्	एव	ही
विऽदयते	विशेषेणददाति (दयदाने)	बहुत देता है
वसु	धनम्	धन को
मर्ताय	मनुष्याय	मनुष्य के ताईं
दाशुषे	(हविः) दत्तवते	(हवि) देने वाले के ताईं
ईशानः	स्वामी	स्वामी

अप्रतिऽस्कुतः	प्रतिकूलशब्दरहितः	किसी के कहनेसे न हटने वाला
इन्द्रः	इन्द्रः	इन्द्र
अङ्ग	खलु (आ०को०)	सचमुच

संस्कृतार्थः ।

य एक एव (हविः) दत्तवतेमनुष्याय धनं प्रयच्छति (सः) स्वामीन्द्रः प्रतिकूलशब्दरहितः खलु(अस्ति) ॥ ७ ॥

भाषार्थः ।

जो अकेला ही (हवि) देने वाले मनुष्य के ताईं धन को देता है (वह) स्वामी इन्द्र सचमुच किसी के कहने से हटने वाला नहीं है ॥ ७ ॥

इन्द्रोदेवता, उष्णिक्छन्दः ।८।८।१२

कदामर्तमराधसं पदाक्षुम्पमिव

स्फुरत्। कदा नः शुश्रवद्गिर इन्द्रो-

अङ्ग ॥ ८ ॥

कदा	कदा	कब
मर्तम्	मनुष्यम्	मनुष्य को
१ अराधसम्	दानेन रहितम्	दान से रहित को
पदा	पादेन	पैर से
क्षुम्पम्ऽइव	अहिच्छत्रकमिव (निघ०४।२)	सांप की छत्री को न्याइ
स्फुरत्	स्फुरिष्यति, मर्दयिष्यति (आ०को०लडर्थेल ड्यडभावः)	कुचलेगा
कदा	कदा	कब
नः	अस्माकम्	हमारी

शुश्रवत्	श्रोष्यति (लेट्यडागमेशप: श्लुश्छान्दसः)	सुनेगा
गिरः	स्तुतीः	स्तुतियों को
इन्द्रः	इन्द्रः	इन्द्र
अङ्ग	खलु	सचमुच

संस्कृतार्थः।

इन्द्रः कदा दानेनरहितं मनुष्यमहिच्छत्रकमिव पादेन मर्दयिष्यति कदा (खलु) अस्माकं स्तुतीः (च) श्रोष्यति ॥ ८ ॥

भाषार्थः।

इन्द्र कब दान से रहित मनुष्य को सांप की छत्री की न्याईं पैर से कुचलेंगे (और) सचमुच कब हमारी स्तुतियों को सुनेंगे ॥ ८ ॥

(१) दान से रहित, अनार्य नास्तिक स्वार्थी आर्यशत्रु से तात्पर्य है ॥

इन्द्रोदेवता, उष्णिकछन्दः ।८।८।१२

यश्चिद्धित्वाबहुभ्यआ सुतावाँ-

आविवासति । उग्रंतत्पत्यतेशव-
इन्द्रोअङ्ग ॥ ९ ॥

यः	यः+चित्	जो कोई
चित्	+चित्	–
हि	खलु	सचमुच
त्वा	त्वाम्	तुझ को
बहुऽभ्यः	बहुभ्यः + आ	बहुतों में से
आ	+ आ	–
सुतऽवान्	निष्पीडितसोमः	सोम निचोड़ने वाला
आऽविवासति	सर्वतःपरिचति	सब प्रकार से सेवा करता है
उग्रम्	भयङ्करम्	भयानक को

तत्	सः (विभक्तेर्लुक्)	वह
पत्यते	ईष्टे (निघं०२।२१)	स्वामी होता है
शवः	बलम्	बल को
इन्द्रः	इन्द्रः	इन्द्र
अङ्ग	खलु	सचमुच

संस्कृतार्थः।

(हे इन्द्र !) बहुभ्यो यश्चित् (मनुष्यः) निष्पीडितसोमः (सन्) त्वां खलु सर्वतः परिचरति स उग्रं बलमीष्टे, इन्द्रः खलु (धन्योऽस्ति) ॥ ९॥

भावार्थः।

(हे इन्द्र !) बहुतों में से जो कोई (मनुष्य) सचमुच सोम निचोडने वाला (होकर) सब प्रकार से आप की सेवा करता है वह भयानक बल का स्वामी होता है, सचमुच इन्द्र (धन्य है) ॥ ९ ॥

इन्द्रोदेवता पङ्क्तिश्छन्दः।८।८।८।८।८

स्वादोरित्थाविषूवतो मध्वः पि-

बन्तिगौर्य्यः । याइन्द्रेणसयावरी
र्वृष्णामदन्तिशोभसे वस्वीरनुस्व-
राज्यम् ॥ १० ॥

स्वादोः	स्वादयुक्तम् (कर्म्मणिषष्ठी)	स्वाद से युक्त को
इत्था	इत्थम्	इस प्रकार
विषुऽवतः	व्यापनशीलम् (विष्लृव्याप्तौकुप्रत्ययेसतिमतुप्, कर्म्मणिषष्ठी)	फैलने वाले को
मध्वः	मधुरम् (कर्म्मणिषष्ठी,गुणाभावेयणादेशः)	मीठे को
पिबन्ति	पिबन्ति	पान करती हैं
१ गौर्य्यः	गोरवर्णाः(गावः)	उज्ज्वल 'ग वाली

याः	याः	जो
इन्द्रेण	इन्द्रेण	इन्द्र के साथ
सऽयावरीः	सहगच्छन्त्यः (वनिपिसतिङीवुरे- फौपूर्वसवर्णदीर्घश्च)	साथ जाती हुई
वृष्णा	वीर्य्यवता	वीर्य्यवान के साथ.
मदन्ति	माद्यन्ति (श्यनिप्राप्तेव्यत्ययेन शप्)	मोद करती हैं
१ शोभसे	शोभाऽर्थम्	शोभा के लिये
वस्वीः	निवसन्त्यः (पूर्वसवर्णदीर्घः)	निवास करतीहुई
२ अनु	अनु	पीछे
२स्वऽराज्यम्	स्वराज्यम्	स्वराज्य को

संस्कृतार्थः

इत्थं स्वादयुक्तम् (शरीरे) व्यापनशीलं मधुरम् (सोमम्) गौरवर्णाः (गावः) पिबन्ति याः शोभार्थं

वीर्यवतेन्द्रेण सह गच्छन्त्यः (तस्य) स्वराज्यमनु· निवसन्त्यः (सत्यः) माद्यन्ति ॥ १० ॥

भावार्थः ।

इस प्रकार स्वाद से युक्त (शरीर में) फैलने वाले मीठे (सोम) को उज्जल रंग वाली (गौएं) पान करती हैं जो शोभा के लिये वीर्य्यवान इन्द्र के साथ जाती हुईं (उस के) स्वराज्य के पीछे निवास करती हुईं मोद करती हैं ॥ १० ॥

(१)उज्वल रंग वाली गौएं अन्तरिक्ष में होने वाले जल हैं, ये आकाश में होने वाले सोम को पान करती हैं और वीर इन्द्र के साथ रमण करती हुई जगत की शोभा को बढाती हैं ।

(२) इन्द्र के स्वराज्य के पीछे अर्थात उस के स्वराज्य के आश्रय में निवास करती हैं ।

इन्द्रोदेवता पङ्क्तिश्छन्दः । ८।८।८।८।८।

ताअस्यपृश्ननायुवः सोमंश्रीणन्ति पृश्नयः । प्रियाइन्द्रस्यधेनवो वज्रं हिन्वन्तिसायकं वस्वीरनुस्वरा- ज्यम् ॥ ११ ॥

ताः	ताः	वे
अस्य	अस्य	इसके
पृश्नऽयुवः	स्पर्शनमिच्छन्त्यः	स्पर्श को चाहती हुईं
सोमम्	सोमम्	सोम को
श्रीणन्ति	मिश्रयन्ति (सा०भा०)	मिलाती हैं
पृश्नयः	चित्राः	नाना रंग वालीं
प्रियाः	प्रियाः	प्यारी
इन्द्रस्य	इन्द्रस्य	इन्द्र की
धेनवः	गावः	गौएं
वज्रम्	वज्रम्	वज्र को
हिन्वन्ति	प्रेरयन्ति	प्रेरण करती हैं

सायकम्	अन्तकारकम् (षोऽन्तकर्मणि एवु-ल्यात्वेयुगागमः)	अन्त करने वाले को
वस्वीः	निवसन्त्यः (पूर्वसवर्णदीर्घः)	निवास करती हुईं
अनु	अनु	पीछे
स्वऽराज्यम्	स्वराज्यम्	स्वराज्यको

संस्कृतार्थः।

इन्द्रस्यप्रियास्ताश्चित्रागावोऽस्य स्पर्शनमिच्छन्त्यः सोमम् (पयसा) मिश्रयन्ति (तस्य) स्वराज्यमनु निवसन्त्यः (सत्यश्च) अन्तकारकम् (तस्य) वज्रं प्रेरयन्ति ॥ ११ ॥

भाषार्थः।

इन्द्र की प्यारी वे नाना रंग वाली गौएं इस के स्पर्श को चाहती हुईं सोम को (दूध से) मिलाती हैं (और उस के) स्वराज्य के पीछे निवास करती हुईं अन्त करने वाले (उस के) वज्र को प्रेरण करती हैं ॥ ११ ॥

इन्द्र की प्यारी नाना रंग वाली गौएं बादल हैं जो अपने जल रूपी दूध को आकाश के सोम से मिलाती हैं यही इन्द्र के विद्युत रूपी वज्र को प्रेरण करती हैं क्योंकि बादल ही विद्युत के प्रकट होने का कारण हैं।

इन्द्रोदेवता पङ्क्तिश्छन्दः। ८।८।८।८।८।

ता अस्य नमसा सहः सपर्यन्ति प्रचेतसः। व्रतान्यस्य सश्चिरे पुरूणि पूर्वचित्तये वस्वीरनु स्वराज्यम् ।१२।

ताः	ताः	वे
अस्य	अस्य	इसके
नमसा	नमस्कारेण	नमस्कार से
सहः	बलम्	बल को
सपर्यन्ति	पूजयन्ति (सपर् पूजायाम्)	पूजन करती हैं
प्रऽचेतसः	प्रकृष्ट ज्ञानाः	उत्तम ज्ञान वालीं
व्रतानि	व्रतानि	नियमों को

अस्य	अस्य	इसके
सश्चिरे	अनुगच्छन्ति (आ०को०सश्चर्यैलिट्, व्यत्ययेन परस्मैपदम्)	पीछे चलती हैं
पुरूणि	बहूनि	बहुतों को
पूर्वऽचित्तये	अग्रगण्यत्वार्थम्	सबसे आगे गिने जाने के लिये
वस्वीः	निवसन्त्यः	निवास करतीहुई
अनु	अनु	पीछे
स्वऽराज्यम्	स्वराज्यम्	स्वराज्य को

संस्कृतार्थः ।

प्रकृष्टज्ञानास्ताः (गावः) अस्य (इन्द्रस्य) बलम् नमस्कारेण पूजयन्ति, (अस्य) स्वराज्यमनुनिवसन्त्यः (सत्यश्च) अग्रगण्यत्वार्थमस्य बहूनि व्रतान्यनुगच्छन्ति ॥ १२ ॥

भाषार्थः ।

उत्तम ज्ञान वाली वे (गौएं) इस (इन्द्र) के बल को नमस्कार द्वारा पूजन करती हैं (और

उस के) स्वराज्य के पीछे निवास करती हुई सब से आगे गिने जाने के लिये इस के अनेक नियमों का पालन करती हैं ॥ १२ ॥

वे गौएं अर्थात जल जीवन के मूल आधार होनेसे इस जगत में अग्रगण्य हैं, और उन्हों ने इस पदवी को इसलिये पाया है कि वे इन्द्र के बल के सामने सिर झुकाती हैं (इसीलिये निचान की ओर बहती हैं) और उस के सब नियमों का पालन करती हैं, किसी व्रत का उल्लंघन नहीं करतीं (किसी से कभी नहीं सुना कि जलों ने अमुक कर्म नियम के विरुद्ध किया है)

मनुष्य भी अग्रगण्य वही हो सकता है जो इन्द्र के बल के सामने सिर झुकाता है और उस के नियमों का उल्लंघन नहीं करता वही इन्द्र के स्वराज्य पर आश्रित हुआ २ आनन्द को भोगता है।

इन्द्रो देवता गायत्रीछन्दः ।८।८।८॥

इन्द्रो॑द॒धीचो॑ अ॒स्थभि॑र्वृ॒त्राण्य॑प्रतिष्कुतः । ज॒घान॑ नव॒तीर्नव॑ ।१३।

इन्द्रः	इन्द्रः	इन्द्र ने
१ द॒धीचः	दधीचः	दधीचो की

अस्थऽभिः	अस्थिभिः (अनङादेशश्छान्दसः)	हड्डियों से
वृत्राणि	वृत्राणि	वृत्रों को
अप्रतिऽस्कुतः	प्रतिकूल शब्द रहितः	किसीके कहने से न हटने वाला
जघान	हतवान्	हनन किया
नवतीः	नवतीः	नव्वों को
नव	नव	नौ को

संस्कृतार्थः।

प्रतिकूलशब्द रहित इन्द्रो दधीचोऽस्थिभिः नव नवतीः (च) वृत्राणि हतवान् ॥ १३ ॥

भाषार्थः।

किसी के कहने से न हटने वाले इन्द्रने दधीची की हड्डियों से नौ (और) नव्वे वृत्रों को हनन किया ।१३।

(१) घोड़े के सिर वाला दध्यङ् प्रातःकाल का सूर्य है जिस ने अश्विदेवों को प्रातःकाल के ज्योतारूप मधु को दिया था (देखो ऋ० १।११६।१२)

पृ०	पं०	अशुद्धम्	शुद्धम्
१८१४	५	युक्त:	युक्त
,,	६	मंच से	(मंचों से
	२१	र्थात	अर्थात्
१८१५	१२	युम्नैः	द्युम्नै·
१८१७	६	हवाम	हवामहे
,,	११	नः	पुनः
,,	१६	स्मत:	स्तुम:
१८१८	८	धूनपि	धूनुपे
१८२२	७	वैयतो	वैयुतो
१८२६	१६	माला	माली
१८६२	८	यज्ञेण	यज्ञेण
१९६९	१३	ध्यानः	ध्यानि
१८७०	१४	दर्शन्न	दर्शन्न
१८७२	१८	भियसा	भियसा
१८७७	१५	वान	वान्
१९७७	८	ग्रग्ने	ग्रग्ने
१८३८	१७	मार्डी	मार्डी
१८४१	८	प्रपता	प्रपुता
१८४७	११	त्तम्	त्तम
१८४८	१७	वज्रि	वज्रि
१८५०	१०	सुतः	सुतः
१८५६	८	सते	यसते
,,	,,	यंसत,	यंसते,
१८५४	४	नाव	ऋषि
१८८१	६	ते	तेरे
१८८२	१६	हे ।	हेव
१८८३	१४	कतु	कतुं
,,	१५	दध	दधु

शुद्ध्यशुद्धि पत्रम् ।

		अशुद्धम्	शुद्धम्
अङ्क ११ १२	पृ० ४८६ पंक्ति ६	हे देवाः	दवाः
,, ,,	,,	हे देवताओ	देवता

अंक ४७-४८] [श्रावण-भाद्रपद १९६७

ऋग्वेद संहिता

(वैदिकजीवन व्याख्या युता)

पदपाठ, शब्दार्थ, संस्कृत और भाषा अनुवाद
टिप्पणी और मन्त्रों के आशय पर
व्याख्यान से युक्त

जिसको मुलतान निवासी पं० शङ्करदत्तशास्त्री
की सहायता से शिवनाथ आहिताग्नि ने
सम्पादन किया।

लाहौर
पञ्जाब एकानोमीकल यन्त्रालय में प्रिंटर लाला
सालमग के अधिकार से छपा।

---

१२ अंकों का अग्रिम मूल्य २)
पहले २४ अंकों का मूल्य ५॥)

तत्	तत्	उसको
विदत्	लब्धवान् (अडभावः)	प्राप्त किया
शर्य्यणाऽवति	शर्य्यणावति (सरसि)	शर्य्यणावान (सरोवर) में

संस्कृतार्थः ॥

यदश्वस्यशिर पर्वतेष्वपगत्यस्थितम् (आसीत्) तदिच्छन् (सन्निंद्रः) शर्य्यणावति (सरसि) लब्धवान् ॥ १४ ॥

भावार्थ ।

जो घोड़े का सिर पर्वतों में दूर जाकर पडा हुआ (था) उस को इच्छा करते हुए (इन्द्र) ने शर्य्यणावान (सरोवर) में प्राप्त किया ॥ १४ ॥

शर्य्यणावान, कुरुक्षेत्र की सीमा पर एक सरोवर है जिस के किनारे बहुत सोम निष्पीडन होता था यहां पर सोम के सबंध मात्र से यह शब्द सोम अर्थात चन्द्रमा का वाची होगया है।

सूर्य्य रूपी अश्व का सिर उस की रश्मियां है, जो अन्धकार रूपी पर्वतों में दूर पड़ी हुई थीं इन को देवताओं ने खोजा तो चन्द्र रूप सरोवर में पाया, जैसे अगले मंत्र में स्पष्ट वर्णन किया है।

इन्द्रो देवता गायत्रीछन्दः ।८।८।८।

अत्राह गोरमन्वत नाम त्वष्टुर-

पीच्यम् । इत्था चन्द्रमसो गृहे ॥ १५॥

अत्र	आस्मन्	इस में
अह	एव	ही
गोः	वृषभम् (कर्मणि षष्ठी)	बैल को
अमन्वत	ज्ञातवन्तः	जाना है
नाम	खलु (षा०को०)	सचमुच
त्वष्टुः	त्वष्टुः	त्वष्टा के
अपीच्यम्	अन्तर्हितम् (निघं०३।२५)	छिपे हुए को
इत्था	इत्थम	इस प्रकार

चन्द्रमसः	चन्द्रमसः	चन्द्रमा के
गृहे	गृहे	घर में

संस्कृतार्थः।

देवा अनेन प्रकारेण खल्वस्मिँश्चन्द्रमसो गृहेऽन्तर्हितं त्वष्टुर्वृषभमेव ज्ञातवन्तः ॥ १५ ॥

भावार्थः।

(देवताओं ने) सचमुच इस प्रकार इस चन्द्रमा के घर में छिपे हुए त्वष्टा के बैल को ही जाना।१५।

पिछले मंत्र का आशय इस में स्पष्ट किया है, त्वष्टा का बैल सूर्य है उसी को देवताओं ने चन्द्रमा के घर में छिपा हुआ पाया अर्थात यह देखा कि सूर्य का प्रकाश ही चन्द्रमा की ज्योति का कारण है।

इन्द्रोदेवता त्रिष्टुप्छन्दः ११।११।११।११।

कोऽअद्ययुङ्क्ते धुरि गाऋतस्य शिमीवतोभामिनोदुर्हृणायून्। आसन्निषून्हृत्स्वसोमयोभून्यएषांभृत्या-

मृणधृत्सजीवात्॥ १६॥

कः	कः	कौन
अद्य	अद्य	आज
युङ्क्ते	योजयति	जोड़ता है
धुरि	धुरि	धुरे में
१ गाः	वलीवर्दान्	वैलों को
१ ऋतस्य	यज्ञस्य	यज्ञ के
शिमीऽवतः	कर्म्मोपेतान् (शिमीतिकर्म्मनाम-निघ०२।१)	कर्म्म करने वालों को
भामिनः	दीप्तियुक्तान्	तेजस्वियों को
दुःऽहृणायून्	दुस्सहक्रोध युक्तान् (हृणीयति:क्रुध्यति-कर्म्मा,निघ०२।१२)	जिनका क्रोधनहीं सहारा जासकता

आसन्ऽइषून्	आसनिमुखे-इषवोबाणायेषांतान्	मुख में बाणों वालों को
हृत्सुऽअसः	हृत्सु(शत्रूणाम्) हृदयेषुअस्यन्ति-(पादम्)क्षिपन्ति तान् (सप्तम्यामलुक्,असु-क्षेपणे क्विप्प्रत्ययः	(शत्रुओं की) छातियों पर पैर रखने वालों को
मयःऽभून्	सुखस्यभावयितन् सुखप्रदानित्यर्थः मयइति सुखनाम,निघं० ३।६ मयतेर्ईप्रत्ययः)	सुख के देने वालों को
यः	यः	जो
एषाम्	एषाम्	इन की
१ भृत्याम्	भरणक्रियाम्	आजीविका को
२ ऋणधत्	समर्धयति (ऋधुवृद्धौ-लेटिरूपरयेमदनम्,मडाग-मश्च)	बढाता है

सः	सः	वह
३ **जीवात्**	जीवति (लेटयाडागमः)	जीता है

संस्कृतार्थः ।

कोऽद्य कर्म्मोपेतान् दीप्तियुक्तान् दुस्सहक्रोधयुक्तान् मुखेबाणधारकान् (शत्रूणाम् -) हृदयेषु (पाद-) क्षेपकान् (यजमानेभ्यः) सुखप्रदान् यज्ञस्य बलीवर्दान् धुरि योजयति, यएषां भरणक्रियां समर्धयति स जीवति ॥ १६ ॥

भाषार्थः ।

कौन आज कर्म्म में तत्पर, तेजस्वी, दुःसह क्रोध से युक्त, मुख में बाणों वाले, (शत्रुओं की) छातियों पर (पैरों को) रखने वाले, (यजमानों के ताइं) सुख के देने वाले यज्ञ के बैलों को धुरे में जोड़ता है, जो इन की आजीवका को बढाता है वह जीवन से युक्त होता है ॥ १६ ॥

(१) यज्ञ के बैल ऋत्विज हैं जो कर्म में तत्पर रहते हैं और तेजस्वी हैं, जिन का क्रोध ब्रह्मतेज के कारण दुःसह है।

(२) ऋत्विज के मुख में यजमान के शत्रुओं को बींधने वाले वेदमंत्र रूपी बाण हैं।

(३) जो ऐसे सुख के देने वाले ऋत्विजों का भरणपोषण करता है वह उच्चजीवन से युक्त होता है ॥

इन्द्रोदेवता त्रिष्टुप्छन्दः ।११।११।११।११॥

कई॑षतेतुज्यते॒कोबि॑भाय॒ कोमं॑सते॒सन्त॒मिन्द्रं॒कोअन्ति॑ । कस्तो॒काय॒कइभा॑यो॒तरा॒ये ऽधि॑ब्रवत्त॒न्वे॒ऽकोजना॑य ॥ १७ ॥

कः	कः	कौन
ई॒षते	(इतस्ततः)गच्छति (ईषगतौ)	चलता फिरता है
तुज्यते॑	पीड्यते (कर्मणियक्)	कष्ट उठाता है
कः	कः	कौन
बि॒भा॒य	बिभेति (लडर्थेलिट्)	डरता है
कः	कः	कौन

मंसते	आद्रियते (मनेर्लेटिसिपटौ)	आदर करता है
सन्तम्	वर्त्तमानम्	वर्तमान को
इन्द्रम्	इन्द्रम्	इन्द्र को
कः	कः	कौन
अन्ति	अन्तिके (कलोपः)	समीप
कः	कः	कौन
तोकाय	अपत्याय	सन्तान के लिये
कः	कः	कौन
इभाय	भृत्याय (भा०को०)	भृत्य के लिये
उत	अपिच	और भी
राये	धनाय	धन के लिये
अधि	अधि +	–

ब्रवत्	अधि + ब्रवत् आशास्ते (लेटधडागमः)	आशीर्वादमांगता है
तन्वे	शरीराय (गुणाभावेयणादेशः)	शरीर के लिये
कः	कः	कौन
जनाय	जनाय	जन समूह के लिये

संस्कृतार्थः।

कः (इतस्ततः) गच्छति ? कः पीडयते ? कोबिभेति? वर्त्तमानमिन्द्रं कआद्रियते ? समीपे (स्थितमिन्द्रम्) कः (जानाति) ? कः (अन्यस्य) अपत्याय को भृत्याय धनाय च को जनाय (परस्य) शरीराय (च) आशास्ते ? ॥ १७॥

भावार्थः।

कौन चलता फिरता है ? कौन कष्ट उठाता है? कौन डरता है ? वर्तमान इन्द्र का कौन आदर करता है ? समीप (ठेरेहुए इन्द्र को) कौन (जानता है ?) कौन (दूसरे की) सन्तान के लिये भृत्य के लिये और धन के लिये कौन जन समूह के लिये (और पराये) शरीर के लिये आशीर्वाद मांगता है ?॥ १७ ॥

इन सब प्रश्नों का उत्तर ऋत्विज है, जो यज्ञ में इधर उधर चलता है कष्ट उठाता है,मूल होने से डरता है,इन्द्र को समीप ठैरा हुआ जानकर उस का आदर करता है, दूसरे की अर्थात् यजमान की सन्तान उस के भृत्य, धन और शरीर के लिये और सारी जाति के लिये देवताओं से आशीर्वाद मांगता है ॥

इन्द्रोदेवता त्रिष्टुप्छन्दः ११।११।११।११।

कोअग्निमीट्टे हविषाघृतेन स्रु-

चायजाताऋतुभिर्ध्रुवेभिः। कस्मैदे-

वाआवहानाशुहोम कोमंसतेवीति-

होत्रःसुदेवः॥१८॥

कः	कः	कौन
अग्निम्	अग्निम्	अग्नि को
ईट्टे	स्तौति (ईडस्तुतौ)	स्तुति करता है
हविषा	हविषा	हवि से

घृतेन	घृतेन	घी से
स्रुचा	जुह्वा	जुहूके द्वारा
यजातै	यजति (यजतेर्लेटयाडागमेसति "वैतोऽन्यत्र"इत्यैकारः)	यजन करता है
ऋतुऽभिः	ऋतुषु (सप्तम्यर्थेतृतीया)	ऋतुओं में
ध्रुवेभिः	नित्येषु (,,)	सदा होने वालि- यों में
कस्मै	कस्मै	किस के लिये
देवाः	देवाः	देवता
आ	आ +	–
वहान्	आ + वहान्, आवहन्ति (लेटयाडागमः)	लाते हैं
आशु	शीघ्रम्	शीघ्र

होमं	ह्वातव्यम्(धनम्) (सा०भा०)	धन को
कः	कः	कौन
मंसते	जानाति	जानता है
वीतिऽहोत्रः	प्राप्तयज्ञः	जिसने यज्ञ किया है
सुऽदेवः	शोभनदेवताकः	सुन्दर देवतावाला

संस्कृतार्थः

कोऽग्निं स्तौति? (कश्च)जुह्वा नित्येष्वृतुषु घृतेन हविषा (च) यजति?कस्मैदेवाः शीघ्रं धनमावहन्ति? कः प्राप्तयज्ञः शोभनदेवताकः (सन्निन्द्रम्) जानाति? ॥ १८ ॥

भाषार्थः।

कौन अग्नि की, स्तुति करता है ? (और कौन) जुहू के द्वारा नित्य आने वाली ऋतुओं में घी (और) हवि से यजन करता है? किस के लिये देवता शीघ्र धन को लाते हैं? कौन यज्ञकर्त्ता सुन्दर देवता वाला (हुआ २ इन्द्र को) जानता है? ॥ १८॥

पहले दो प्रश्नों का उत्तर ऋत्विज है, पिछले दो का यजमान है जिस के घर में ऊपर कहे गुणों वाले ऋत्विज आते हैं।

इन्द्रोदेवता बृहतीछन्दः ।८।८।१२।८।

त्वमङ्गप्रशंसिषो देवःशविष्ठ

मर्त्यम् । नत्वदन्योमघवन्नस्तिम-

र्डिते न्द्रब्रवीमितेवचः ॥ १९ ॥

त्वम्	त्वम्	तू
अङ्ग	खलु	सचमुच
प्र	प्र+	–
शंसिषः	प्रोत्साहयसि (लेटयडागमः)	उत्साह बढ़ाते हैं
देवः	देवः	देवता
शविष्ठ	हे बलवत्तम !	हे सब से अधिक बल वाले
मर्त्यम्	मरण धर्माणम्	मरण धर्मी को
न	न	नहीं

त्वत्	त्वत्तः	तुझ से
अन्यः	अन्यः	दूसरा
मघऽवन्	हे धनवन्!	हे धन वाले
अस्ति	अस्ति	है
मर्डिता	समाश्वासयिता	धीरज देने वाला
इन्द्र	हे इन्द्र!	हे इन्द्र
ब्रवीमि	ब्रवीमि	मैं कहता हूं
ते	तुभ्यम्	तेरे ताईं
वचः	वचः	वचन को

संस्कृतार्थः।

हे बलवत्तम! इन्द्र! देवस्त्वं मरणधर्माणम् (मनुष्यम्) प्रोत्साहयसि हे धनवन्! त्वदन्यः (कश्चित्) समाश्वासयिता नास्ति, अहं तुभ्यम् (सत्यम्) वचो ब्रवीमि॥ १९॥

भावार्थः

हे सब से अधिक बल वाले इन्द्र! देवता आप मरणधर्म्मा (मनुष्य) का उत्साह बढाते हो, हे धन-वाले! आपसे दूसरा (कोई) धीरज देने वाला नहीं है मैं आपके ताईं (सच) वचन को कहता हूं ॥१९॥

इन्द्रोदेवता,सतोबृहतीछन्दः ।१२।८।१२।८

मातेराधांसिमातऊतयोवसो ऽस्मान्कदाचनादभन्। विश्वाचन उपमिमीहिमानुष वसूनिचर्षणि-भ्यआ॥२०॥

मा	मा	मत
ते	तव	तेरे
राधांसि	दानानि	दान
मा	मा	मत

ते	तव	तेरी
ऊतयः	रक्षाः	रक्षाएं
वसो०	हे धनरूप !	हे धन रूप
अस्मान्	अस्मान्	हम को
कदा	कदा	कभी
चन	अपि	भी
दभन्	उपेक्षन्ताम् (लोडर्थेलङ्यडभावः)	चूकें
विश्वा	विश्वानि	सब को
च	(पूरणः)	–
नः	अस्मभ्यम्	हमारे ताईं
उपऽमिमीहि	समीपे कुरु (व्यत्ययेनपरस्मैपदम्)	समीप करो

मानष	हे मनुष्य हित ! (हितार्थेऽण्)	हेमनुष्योंके हित कारी
वसूनि	धनानि	धनों को
चर्षणिऽभ्यः	मनुष्येभ्यः (निघं०२।३)	मनुष्यों से
आ	आ-(हरत्य)	लाकर

संस्कृतार्थः ।

हे धनरूप ! (इन्द्र !) तव दानानि तव रक्षाः (च) कदाऽप्यस्मान् नोपेक्षन्ताम् हे मनुष्य हित ! (त्वम्) सर्वाणि धनानि मनुष्येभ्य आ-(हरत्य) अस्मत्समीपं कुरु ॥ २० ॥

भापार्थः ।

हे धनरूप (इन्द्र !) आप के दान् (और) आप की रक्षाएं कभी हम को न चूकें, हे मनुष्यों के हित-कारी ! आप मनुष्यों से सब प्रकार के धन को ला-कर हमारे समीप करो ॥२०॥

(१) 'चर्षणिभ्यः'से अन्य जातीय अनार्य मनुष्यों का ग्रहण है

इति चतुरशीतितमं सूक्तम् ।

ऋ० मं०१ सू०८५।

मरुतोदेवता गोतमऋषिः।

विनियोगः—

१-१२। एतत्सूक्तमभिप्लवषडहस्य चतुर्थेऽहन्याग्निमारुतेमारुत निविद्धानीयम् (आ०सू०७।७।४)

६। "आवोवहन्तु" इत्येषा तृतीयसवने पोतुःप्रस्थितयाज्या (आ०सू०५।५।१९)

१२। "यावःशर्म-" इत्येषा मारुतेपशो हविषो याज्या (आ०-सू०३।७।१२)

सूक्तस्य भावार्थः।

रुद्रस्यपुत्रा मरुतः प्रयाणावसरे वैद्युतप्रभारूपैराभरणैःशोभन्ते, शत्रूणां धर्षकास्ते द्यावापृथिव्यो वर्धयन्ति,,अस्मदीयेषु यज्ञेषु च मादयन्ति १॥ महत्त्व प्राप्ता मरुतो दिवि स्वकीयं सदनं कृतवन्तः परमात्मनः स्तुतिं कुर्वन्तस्ते बलमुत्पादयन्तःसन्त ऐश्वर्यरूपाणि वस्त्राणि परिहितवन्तः ॥२॥ यदाऽन्तरिक्षस्यपुत्रा मरुतोऽलङ्कारैर्दीप्यन्ते तदा सर्व शत्रुसमूहं नाशयन्ति मार्गेषु च घृतोपलक्षितं माधुर्यं स्रावयन्ति ॥ ३॥ मनोवद्वेगवन्तो मरुतो यदा पांशुलवायुरूपा वृष्टिबिन्दुयुक्ता मृगी रथेषु योजयन्ति॥४॥तदा मेघस्य धारा विमुच्य चर्मभस्त्रा इव पृथिवीं क्लेदयन्ति।५॥ एतादृशान्मरुतः शीघ्रगामिनोऽश्वा अस्मदीये यज्ञ आनयन्तु,त आगत्य बर्हिष्युपविशन्तु मधुरेण सोमेन मदयुक्ताश्च भवन्तु ॥६॥ स्वतोवृद्धा मरुतोऽन्तरिक्षे स्वस्मै विस्तीर्णं स्थानं कृतवन्तः, अस्माभिर्यदायदा यज्ञ आरभ्यते तदातदा ते तत्र आगत्य बर्हिष्युपविशन्ति ॥ ७॥ प्रयाणं कुर्वन्तो योद्धार इव, यशोऽभिलाषिण शूराश्च च मरुतोऽस्मदर्थं संग्रामेषु प्रयतन्ते, राजान इव तेजस्विरूपास्ते चिह्नानि भुवनानि भये धारयन्ति ।८।

यदा त्वष्टा सहस्रधारायुक्तं वज्रं सम्पादितवान् तदेन्द्रः शत्रुनाशाय तं वज्रं गृहीतवान्, तेन वृत्रं हत्वा जलानामाप्लावमधः पातितवान् ॥९॥ मरुतः समुद्रोत्थितं वाष्पं बलेनोर्ध्वं प्रेरयित्वा संघटितं मेघं विदारितवन्तः, ते सोमस्यमद एतादृशानि बहूनि रमणीयानि कर्माणि कृतवन्तः ॥ १० ॥ विचित्रदीप्तयो मरुतो गोतमर्षेर्ग्रामं प्रति मेघं तिर्यञ्चं प्रेरयित्वा तृषिताय तस्मै जलप्रस्रवणं सिक्तवन्तः, तदन्तिके रक्षाभिः सह प्राप्य तं यथाकामं तर्पितवन्तश्च ॥ ११॥ मरुद्भिर्यानि सुखानि निजभक्तेभ्यो दीयन्ते तान्यस्मान्प्रति प्राप्नुवन्तु, सेचन समर्थास्ते मरुतोऽस्मभ्यं श्रेष्ठपुत्रैर्युक्तधनं प्रयच्छन्तु ॥ १२ ॥

मरुतोदेवता जगतीछन्दः ।१२।१२।१२।१२

प्रयेशुम्भन्तेजनयोनसप्तयोया-
मन्रुद्रस्यसूनवःसुदंससः । रोदसी
हिमरुतश्चक्रिरेवृधे मदन्तिवीरा
विदथेषुघृष्वयः । १ ।

प्र	प्र +	–
ये	ये	जो
१ शुम्भन्ते	प्र + शुम्भन्ते, प्रकर्षेण शोभन्ते	खूब सिंगरते हैं

जनयः	जायाः	स्त्रियाँ
न	इव	की न्याईं
सप्तयः	शाघ्रगमनशीलाः	शीघ्रगति वाले
यामन्	यामनि,प्रयाणे (सति) (सप्तम्यालुक्)	यात्रा होने पर
रुद्रस्य	रुद्रस्य	रुद्र के
सूनवः	पुत्राः	पुत्र
सुऽदंससः	सुकर्म्माणः	उत्तम कर्म्मोंवाले
रोदसी०	द्यावापृथिव्यौ	द्यौ (और)पृथिवी को
हि	खलु	सचमुच
मरुतः	मरुतः	मरुतों ने
चक्रिरे	कृतवन्तः	बनाया है

वृधे	वृद्धयै	वृद्धि के लिये
मदन्ति	माद्यन्ति	मोदयुक्त होते हैं
वीराः	वीराः	वीर
विदथेषु	यज्ञेषु	यज्ञों में
घृष्वयः	(शत्रूणाम्)घर्षकाः	(शत्रुओं के)रगड़ने वाले

संस्कृतार्थः ।

शीघ्रगमनशीला रुद्रस्य पुत्राः सुकर्म्माणो ये मरुतः प्रयाणे (सात) स्त्रियइव प्रकर्षेण शोभन्ते(येच) खलु द्यावापृथिव्योर्वर्धनं कृतवन्तः, (ते शत्रूणाम्) घर्षका वीराः (अस्मदीयेषु) यज्ञेषु माद्यन्ति ॥ १ ॥

भावार्थः

शीघ्र चलने वाले जो रुद्र के पुत्र सुकर्मा मरुत यात्रा होने पर स्त्रियों की न्याईं खूब सिंगरते हैं (और जिन्होंने) सचमुच द्यौ(और) पृथिवी को बढ़ायाहै (वे शत्रुओं के) रगड़ने वाले वीर(हमारे) यज्ञों में मोद को प्राप्त होते हैं ॥ १ ॥

(१) मरुतों के आभूषण बिजली की दमक हैं।

मरुतोदेवता जगतीछन्दः।१२।१२।१२।१२

तउक्षितासोमहिमानमाशत दिविरुद्रासोअधिचक्रिरेसदः। अर्चन्तो अर्कंजनयन्तइन्द्रिय मधिश्रियोदधिरेपृश्निमातरः॥ २॥

ते	ते	वे
उक्षितासः	महान्तः (निघ०३।३,असोऽसुगागमः)	महान
महिमानम्	महत्त्वम्	महत्त्व को
आशत	प्राप्तवन्तः (विकरणाद्यलुक्)	प्राप्त हुए हैं
दिवि	दिवि+अधि	आकाश में

रुद्रासः	रुद्रस्य पुत्राः (जसोऽसुगागमः)	रुद्र के पुत्रों ने
अधि	+अधि	—
चक्रिरे	कृतवन्तः	किया है
सदः	सदनम्	स्थान को
१ अर्चन्तः	स्तुवन्तः, उच्चारयन्तः	उच्चारण करते हुए
१ अर्कम्	स्तोत्रम्	स्तोत्र को
१ जनयन्तः	उत्पादयन्तः	उत्पन्न करते हुए
१ इन्द्रियम्	बलम्	बल को
अधि	अधि+	—
श्रियः	ऐश्वर्य्याणि	ऐश्वर्यों को
दधिरे	अधि + दधिरे, परिहितवन्तः	पहना है

पृश्निऽ-मातरः	पृश्निर्माता येषां ते, अन्तरिक्षस्य पुत्राः (पृश्निरित्यन्तरिक्ष-नाम निघं० १।४)	अन्तरिक्ष के पुत्रों ने

संस्कृतार्थः ।

ते महान्तो रुद्रस्य पुत्रा महत्त्वं प्राप्तवन्तो दिवि (स्वकीयम्) सदनम् (च) कृतवन्तः, स्तोत्रमुच्चारयन्तो वीर्य्यम् (च) उत्पादयन्तः (ते) अन्तरिक्षस्य पुत्रा ऐश्वर्याणि परिहितवन्तः ॥ २ ॥

भावार्थः ।

उन महान रुद्रके पुत्रों ने महत्त्वको प्राप्त कियाहै (और) आकाश में (अपने लिये) स्थान बनाया है, स्तोत्र को उच्चारण करते हुए (और) बल को उत्पन्न करते हुए (उन) अन्तरिक्ष के पुत्रों ने ऐश्वर्यों को पहना है ॥ २ ॥

(१) साय साय शब्द से परमात्मा की स्तुति करते हुए मरुत बल को उत्पन्न करते हैं और अपने को अनेक ऐश्वर्यों से आच्छादन कर लेते हैं ॥

मरुतो देवता जगतीछन्दः ।१२।१२।१२।१२।

गोमातरो यच्छुभयन्ते अञ्जिभि

स्तनूषुशुभ्रादधिरेविरुक्मतः। बा-
धन्तेविश्वमभिमातिनमप वर्त्मा-
ऽन्येषामनुरीयतेघृतम् ।३।

गोऽमातरः	अन्तरिक्षस्यपत्राः (गौरित्यन्तरिक्ष नाम निघं० १।४)	अन्तरिक्ष के पुत्र
यत्	यदा	जब
शुभयन्ते	शोभन्ते	सजते हैं
अञ्जिऽभिः	अलङ्कारैः	अलंकारों से
तनूषु	शरीरेषु	शरीरों में
शुभ्राः	शुभ्राः	उज्ज्वल
दधिरे	धारयन्ति (लड्थेलिट)	धारण करते है

विरुक्मतः	विशेषेण रोचमानान् (स्वर्णहारान्)	खूब चमकीले (सोनेके हारों)को
बाधन्ते	अप+बाधन्ते, नाशयन्ति	नाश करते हैं
विश्वम्	सर्वम्	सम्पूर्ण को
अभिऽमातिनम्	शत्रुजातम् (आ०को०)	शत्रुओं को
अप	अप +	–
वर्त्मानि	मार्गान्	रस्तों को
एषाम्	एषाम्	इन के
अनु	अनु	पीछे २
रीयते	स्रवति (रीङ् स्रवणे, श्यन्)	बहता है
घृतम्	घृतम्	घृत

संस्कृतार्थः ।

अन्तरिक्षस्य पुत्राः शुभ्राः (मरुतः) यदाऽलङ्कारैः शोभन्ते शरीरेषु विशेषेण रोचमानान् (स्वर्णहारांश्च) धारयन्ति (तदा) सर्वं शत्रु-(समूहम्) नाशयन्ति, एषां मार्गाननु घृतम् (च) स्रवति ।३।

भाषार्थः ।

अन्तरिक्ष के पुत्र उज्वल (मरुत) जब अलंकारों से सजते हैं (और) अंगों में खूब चमकीले (सोने के हारों) को धारण करते हैं (तब) संपूर्ण शत्रुओं का नाश करते हैं (और) इन के मार्गों के पीछे घृत वहता है ॥ ३ ॥

(१) घृत का वहना बहुतायत का उपलक्षण है आशय यह है कि जहां २ मरुत जाते हैं वहां बहुतायत होजाती है ॥

मरुतोदेवता जगतीछन्दः ।१२।१२।१२।१२

वियेभ्राजन्तेसुमखासऋष्टिभिः

प्रच्यावयन्तोअच्युताचिदोजसा। स

नोजुवोयन्मरुतोरथेष्वा वृषव्राता-

सःपृषतीरयुग्ध्वम् ॥ ४॥

वि	वि+	–
ये	ये	जो
भ्राजन्ते	वि+भ्राजन्ते, विशेषेणदीप्यन्ते	खूब चमकते हैं
सुऽमखासः	शोभनयज्ञाः (जसोऽसुगागमः)	सुन्दर यज्ञोंवाले
ऋष्टिऽभिः	आयुधैः	शस्त्रों से
प्रऽच्यवयन्तः	प्रच्यावयन्तः (ह्रस्वश्छान्दसः)	गिराते हुए
अच्युता	च्युतिरहितानि (शेर्लोपः)	न गिरनेवालों को
चित्	अपि	भी
ओजसा	बलेन	बल से
मनःऽजुवः	मनोवद्वेगवन्तः	मनकीन्याइवेग वाले
यत	ये (सुपामितिविभक्तेर्लुक)	जो

मरुतः	हे मरुतः !	हे मरुतो
रथेषु	रथेषु+आ	रथोंमें
आ	+आ	–
वृषव्रातासः	वृषाःशूरा व्राता गणायेषां ते (जसोऽसुगागमः)	शूरवीर गणों वाले
१ पृषतीः	विन्दुयुक्ताम्टगीः	बूंदोंवाली हिरनियों को
अयुग्ध्वम्	योजयथ (लडर्थेलुङ्)	जोड़ते हो

संस्कृतार्थः।

शोभन यज्ञा ये (मरुतः) आयुधैः प्रदीप्यन्ते (ते) च्युतिरहितान्यपि (वस्तूनि) वलेन प्रच्यावयन्तः (वर्तन्ते) हे मरुतः! मनोवद्वेगवन्तो ये (यूयम्) शूरगण-युक्ताः (सन्तः), रथेषु विन्दुयुक्ता मृगीयों जयथ॥४॥

भावार्थः।

सुन्दर यज्ञों वाले जो (मरुत) शस्त्रों से खूब चमकते हैं (वे) न गिरने वाले (पदार्थों) को भी वल से

गिरा देते हैं हे मरुतो ! मन की न्याईं वेग वाले जो आप शूरवीर गणों से युक्त (होकर) रथों में बूंदों वाली हिरनियों को जोड़ते हो ॥ ४ ॥

(१) विन्दु युक्त मृगो, वृष्टि की बूंदों से युक्त आंधियां हैं।

मरुतोदेवता जगतीछन्दः ।१२।१२।१२।१२

प्रयद्रथेषुपृषतीरयुग्ध्वं वाजेअद्रिंमरुतोरंहयन्तः। उतारुषस्यविष्यन्तिधारा श्चर्मेवोदभिर्व्युन्दन्तिभूम ॥५॥

प्र	प्र +	–
यत्	यदा	जब
रथेषु	रथेषु	रथोंमें
पृषतीः	बिन्दुयुक्तामृगीः	बूंदोंवालीहिरनियोंको

अयुग्ध्वम्	प्र+अयुग्ध्वम्, प्रकर्षेणयोजयथ (लडर्थेलुङ्)	भली प्रकार जोड़ते हो
वाजे	युद्धे	युद्ध में
अद्रिम्	वज्रम् (यास्कः)	वज्र को
मरुतः	हे मरुतः !	हे मरुतो
रंहयन्तः	प्रेरयन्तः (रहिगतो)	प्रेरण करते हुए
उत	अपिच	और
अरुषस्य	अरुणमेघस्य (भा०कौ०)	लाल बादल की
वि	वि+	–
स्यन्ति	वि+स्यन्ति,विमुच्यन्ते	छुटती हैं
धाराः	धाराः	धाराएं;
१ चर्मेऽइव	चर्मेव	चर्म की न्याईं

उदऽभिः	उदकैः (उदकशब्दस्यउदन्नादेशः)	जलोंसे
वि	वि +	—
उन्दन्ति	वि+उन्दन्ति, विशेषेणक्लेदयन्ति (उन्दी क्लेदने)	तर करती हैं
भूम	भूमिम् (द्वितीयायाडादेशे सति ह्रस्वश्छान्दसः)	पृथिवी को

संस्कृतार्थः।

हे मरुतः ! यदा युद्धे वज्रं प्रेरयन्तः (यूयम्) रथेषु बिन्दुयुक्तामृगीर्योजयथ तदाऽरुण मेघस्य धारा विमुच्यन्ते (ताश्च) चर्मेव जलैःपृथिवीं क्लेदयन्ति ॥ ५ ॥

भाषार्थः।

हे मरुतो ! जब युद्ध में वज्र को प्रेरण करते हुए आप रथों में बूंदों वाली हिरनियों को जोड़ते हो तब लाल बादल की धाराएं छुटती हैं (और वे) चर्म की न्याइं पृथिवी को जलों से तर करती हैं ॥ ५ ॥

(१) चर्म की न्याइं अर्थात जैसे चर्म की मसक पृथिवी को तर कर देती है।

(२११३) ऋ० मं०१सू०८५ मं०६

मरुतोदेवता जगतीछन्दः ।१२।१२।१२।१२

आवोवहन्तुसप्तयोरघुष्यदो
रघुपत्वानःप्रजिगातबाहुभिः। सीद-
ताबर्हिरुरुवः सदस्कृतं मादयध्वंम-
रुतोमध्वोअन्धसः॥ ६॥

आ	आ+	-
वः	युष्मान्	आपको
वहन्तु	आ+वहन्तु	लावें
सप्तयः	अश्वाः	घोड़े
रघुऽस्यदः	लघुधावनयुक्ताः	हलकेदौड़नेवाले
रघुऽपत्वानः	लघुस्कन्धाः	हलके कन्धोंवाले

प्र	प्र+	–
जिगात	प्र+जिगात, प्राप्नुत (जिगातिर्गत्यर्थः निघं०२।१४)	आप प्राप्त होवें
बाहुऽभिः	बाहुभिः	भुजाओं से
सीदत	आ+सीदत,उपविशत	आप बैठें
आ	आ+	–
बर्हिः	बर्हिषि (सुपामितिसप्तम्याःसुः)	कुशापर
उरु	विस्तीर्णम्	चौड़ा
वः	युष्मभ्यम्	आपकेलिये
सदः	सदनम्	आसन को
कृतम्	कृतम्	किया है
मादयध्वम्	मदयुक्ता भवत	आप मदयुक्त होवें
मरुतः	हेमरुतः!	हे मरुतो

मध्वः	मधुरेण (तृतीयार्थेषष्ठी)	मीठे से
अन्धसः	सोमेन (,,)	सोम से

संस्कृतार्थः ।

हे मरुतः ! लघुधावनयुक्ता लघुस्कन्धाः (च) अश्वा युष्मान् (अत्र) आवहन्तु (यूयं तेषाम्) बाहुभिरागच्छत, (आगत्य च) बर्हिष्युपविशत युष्मभ्यं सदनं विस्तीर्णं कृतम् (अस्ति तत्रोपविश्य) मधुरेण सोमेन मदयुक्ता भवत ॥ ६ ॥

भाषार्थः ।

हे मरुतो ! हलके दौड़ने वाले (और) हलके कंधों वाले घोड़े आप को (यहां) लावें आप (उन की) भुजाओं से आवें (और आकर) कुशा पर बैठें आप के लिये चौड़ा आसन बनाया है (उस पर बैठ कर) मीठे सोम से मद युक्त होवें ॥ ६ ॥

मरुतोदेवता जगतीछन्दः १२।१२।१२।१२

तेवर्धन्तस्वतवसोमहित्वना

ऽऽनाकंतस्थुरुरुचक्रिरेसदः । विष्णु-

यदावद्वृषणंमदच्युतं वयोनसीद-
न्नधिबर्हिषिप्रिये ॥ ७ ॥

ते	ते	वे सब
अवर्धन्त	अवर्धन्त	बढे हैं
स्वऽतवसः	स्वतोबलवन्तः	स्वयं बल वाले
महिऽत्वना	महिम्ना (व्यत्ययेन नाभावः)	महिमा से
आ	आ +	–
नाकम्	अन्तरिक्षम् (निघं० १।४)	अन्तरिक्ष को
तस्थुः	आ+तस्थुः,आरूढवन्तः	चढे हैं
उरु	विस्तीर्णम्	विस्तार वाला
चक्रिरे	कृतवन्तः	किया है
सदः	सदनम्	स्थान को

१ विष्णुः	विष्णुः	विष्णु
यत्	यदा	जब
ह	खलु	सचमुच
१ आवत्	रक्षति (लङर्थेलङ्)	रक्षा करता है
वृषणम्	(कामानाम्)वर्षितारम्	(कामनाओं के) बरसाने वाले को
मदऽच्युतम्	मदस्य च्यावयितारम्	मदके टपकाने वाले को
वयः	पक्षिणः	पक्षी
न	इव	की न्याईं
सीदन्	उपविशन्ति (लेटयडागमः)	बैठते हैं
अधि	अधि+	–
बर्हिषि	अधि + बर्हिषि	कुशा पर
प्रिये	प्रिये	प्यारी पर

संस्कृतार्थः ।

स्वतोबलवन्तस्ते महिम्नाऽवर्धन्त,अन्तरिक्ष आरूढवन्तः (तत्रस्वस्मै) विस्तीर्णं सदनम्(च)कृतवन्तः, यदा खलु मदस्य च्यावयितारम् (कामानाम्) वर्षितारम् (च यज्ञम्) विष्णू रक्षति (तदा मरुतः) पक्षिण इव प्रिये बर्हिष्युपविशन्ति ॥ ७ ॥

भाषार्थः ।

स्वयं बल वाले वे महिमा द्वारा बढ़े हैं, अन्तरिक्ष पर चढ़े हैं (और वहां पर अपने लिये) विस्तीर्ण स्थान को बनाया है,जब विष्णु सचमुच मदके गिराने वाले (और) कामनाओं की वर्षा करने वाले (यज्ञ) की रक्षा करते हैं (तब मरुत)पक्षियों कीन्याईं प्यारी कुशा पर बैठत हैं ॥ ७ ॥

(१) जब विष्णु यज्ञ की रक्षा करते हैं अर्थात जब हमारे यहां यज्ञ होता है तब मरुत कुशा पर आकर बैठते हैं जैसे पक्षी अपने प्रिय स्थान पर।

मरुतोदेवता जगतीछन्दः ।१२।१२।१२।१२।

शूराइवेद्युयुधयोनजग्मयः श्रव-

स्यवोनपृतनासुयेतिरे। भयन्तेवि-

प्रवाभुवनामरुद्भ्यो राजानइवत्वे-
षसन्दृशोनरः ॥८॥

शूराःऽइव	शूराइव	शूरबीरों की न्याईं
इत्	खलु	सच मुच
युयुधयः	योद्धारः (किन् प्रत्ययः)	योधा
न	इव	की न्याईं
जग्मयः	प्रयाणं कुर्वन्तः	चढाई करते हुए
श्रवस्यवः	यशोऽभिलाषुकाः	यशके अभिलाषी
न	इव	की न्याईं
पृतनासु	संग्रामेषु	युद्धों में
येतिरे	प्रयतवन्तः	परिश्रमकिया है

भयन्ते	भयं प्राप्नुवन्ति (व्यत्ययेनशपःश्लोरभावः)	डरते हैं
विश्वा	विश्वानि (शेर्लोपः)	सम्पूर्ण
भुवना	भुवनानि (,,)	लोक
मरुत्ऽभ्यः	मरुद्भ्यः	मरुतों से
राजानःऽइव	राजानइव	राजाओंकी न्याईं
त्वेषऽसन्दृशः	तेजस्विरूपाः	तेजस्वी रूपवाले
नरः	नराः	नर

संस्कृतार्थ।

शूराइव खलु (मरुतः) योद्धारइव प्रयाणं कुर्वन्तो यशोऽभिलाषुकाइव संग्रामेषु प्रयतवन्तः (एभ्यः) मरुद्भ्यः सर्वाणि भुवनानि भयं प्राप्नुवन्ति (एते) नरा राजान इव तेजस्विरूपाः (सन्ति) ॥ ८ ॥

भावार्थः।

सचमुच शूरवीरों जैसे (मरुतों ने) योधाओं की न्याईं चढाईं करते हुए यश के अभिलाषियों की न्याईं युद्धों में परिश्रम किया है (इन) मरुतों से सम्पूर्ण लोक डरते हैं (ये) नर राजाओं की न्याईं तेजस्वी रूप वाले (हैं) ॥ ८ ॥

मरुतोदेवता जगतीछन्दः ।१२।१२।१२।१२।

त्वष्टायद्वज्रंसुकृतंहिरण्ययं सहस्रभृष्टिंस्वपाअवर्तयत् । धत्त इन्द्रोनर्यपांसिकर्तवे ऽहन्वृत्रंनिरपामौब्जदर्णवम् ॥९॥

त्वष्टा	त्वष्टा	त्वष्टा ने
यत्	यम् (विभक्तेर्लुक्)	जिस को
वज्रम्	वज्रम्	वज्र को

सुऽकृतम्	सुष्ठुनिर्म्मितम्	सुन्दर बने हुए को
हिरण्ययम्	सुवर्णमयम्	स्वर्णमय को
सहस्रऽभृष्टिम्	सहस्रधारायुक्तम्	सहस्र धाराओं वाले को
सुऽअपाः	सुकर्म्मा	सुकर्म्मा ने
अवर्तयत्	सम्पादितवान्	तैय्यार किया
धत्ते	धृतवान् (लिडर्थेलट्)	धारण किया
इन्द्रः	इन्द्रः	इन्द्र ने
नरि	सङ्ग्रामे (सा०भा०)	युद्ध में
अपांसि	कर्म्माणि	कर्म्मों को
कर्तवे	कर्त्तुम्	करने के लिये
अहन्	हतवान्	हनन किया

वृत्रम्	वृत्रम्	वृत्र को
निः	निः+	–
अपाम्	अपाम्	जलों की
औब्जत्	निः+औब्जत्, अधःपातितवान्	नीचे गिराया
अर्णवम्	आप्लावम् (आ०की०)	बाढ को

संस्कृतार्थः ।

सुकर्म्मा त्वष्टा यं सुनिर्मितं सहस्रधारोपेतं सुवर्णमयं वज्रं सम्पादितवान् (तम्) इन्द्रः संग्रामे(शत्रुहनन रूपाणि)कर्म्माणि कर्तुं धृतवान्(तेन) वृत्रं हतवान्, अपामाप्लावम् (च) अधः पातितवान्।९।

भावार्थः ।

सुकर्म्मा त्वष्टाने जिस सुन्दर बने हुए सहस्र धाराओं वाले सोने के वज्र को तैय्यार किया (उस को) इन्द्र ने युद्ध में (शत्रु हनन रूप) कर्म्मों को करने के लिये धारण किया (उस के द्वारा) वृत्र को मारा (और) जलों की बाढ को नीचे गिराया ॥९॥

मरुतोदेवता जगतीछन्दः ।१२।१२।१२।१२।

ऊर्ध्वंनुनुद्रेऽवतंतओजसा दा-
द्दहाणंचिद्बिभिदुर्विपर्वतम्। धम-
न्तोवाणंमरुतःसुदानवो मदेसो-
मस्यरण्यानिचक्रिरे ॥ १० ॥

ऊर्ध्वम्	ऊर्ध्वम्	ऊपर की ओर
नुनुद्रे	प्रेरितवन्तः (णुदप्रेरणे,लिटि'इरयो-रे' इतिरेशादेशः)	प्रेरण किया
१ अवतम्	जलाशयम् (निघं०३।२३)	जलाशय को
ते	ते	उन्होंने
ओजसा	बलेन	बल से
दद्दहाणम्	दृढीभूतम् (लिटःकानच्)	दृढ हुए को

चित्	अपि	भी
बिभिदुः	वि+बिभिदुः विभेदितवन्तः	चीर डाला
वि	वि+	—
पर्वतम्	मेघम् (निघं०१।१०)	बादल को
२ धमन्तः	धमन्तः	धौंकते हुए
२ वाणम्	शब्दम् (निघं०१।११)	शब्द को
मरुतः	मरुतः	मरुतों ने
सुऽदानवः	कल्याणदानाः (यास्कः)	कल्याण के देने वाले
मदे	मदे	मदमें
सोमस्य	सोमस्य	सोमके
रण्यानि	रमणीयानि (कर्माणि)	अति सुन्दर (कर्म्मों को)
चक्रिरे	कृतवन्तः	किया

संस्कृतार्थः।

मरुतो बलेन जलाशयमूर्ध्वं प्रेरितवन्तः, दृढीभूतमपि मेघम् (च) विभेदितवन्तः, कल्याणदानाः (ते) शब्दं धमन्तः (सन्तः) सोमस्य मदे रमणीयानि (कर्माणि) कृतवन्तः॥ १०॥

भाषार्थः।

मरुतों ने बल से जलाशय को ऊपर की ओर प्रेरण किया (और) दृढ़ हुए बादलको भी चीर डाला, शब्द को धौंकते हुए (उन) कल्याण के देने वालों ने सोम के मद में अति सुन्दर (कर्म्मों) को किया॥१०॥

(१) जलाशय समुद्र है जिस के जलों को मरुतदेवता ऊपर के आकाश में प्रेरण करके बादल बनाते हैं और जब वे संघटित हो जाते हैं तब उन को चीर कर मीठा जल बरसाते हैं॥

(२) हम जिह्वा से शब्द को बोलते हैं, मरुत श्वास द्वारा धौंकते हैं॥

मरुतोदेवता जगतीछन्दः।१२।१२।१२।१२।

जिह्मंनुनुद्रेऽवतंतयादिशाऽसि-

ञ्चन्नुत्संगोतमायतृष्णजे। आग-

च्छन्तीमवसाचित्रभानवः कामंवि-

प्रस्यतर्पयन्तधामभिः ॥ ११ ॥

जिह्मम्	तिर्य्यञ्चम्	तिर्छा
नुनुद्रे	प्रेरितवन्तः (रेशादेशः)	प्रेरणा किया
अवतम्	जलाशयम् (निघं०३।२३)	जलाशय को
१ तया	तया	उससे
१ दिशा	दिशा	दिशा से
असिञ्चन्	सिक्तवन्तः	सींचा
उत्सम्	प्रस्रवणम्	झरने को
गोतमाय	गोतमाय	गोतम के लिये
तृष्णाऽजे	तृषिताय (ञितृषापिपासायां नजिङ् प्रत्ययः)	प्यासे के लिये

आ	आ+	—
गच्छन्ति	आ+गच्छन्ति प्राप्तवन्तः (लिडर्थेलट्)	प्राप्त हुए
ईम्	एनम्	इसको
अवसा	रक्षया	रक्षा के साथ
चित्रऽभानवः	विचित्र दीप्तयः	विचित्र दीप्ति वाले
कामम्	यथेच्छम्	इच्छाके अनुसार
विप्रस्य	ऋषिम् (कर्मणि षष्ठी)	ऋषि को
तर्पयन्त	तर्पितवन्तः	तृप्त किया
धामऽभिः	बलैः (चा०को०)	बलों से

भापार्थः।

(मरुतः) जलाशयं तया दिशा तिर्य्यञ्चं प्रेरित·

वन्तः, तृषिताय गोतमाय प्रस्रवणम् (च) सिक्तवन्तः, विचित्रदीप्तयः (ते) एनमृषिं रक्षयासह प्राप्तवन्तः (निज) बलैर्यथाकामं तर्पितवन्तः (च) ॥ ११ ॥

भावार्थः ।

(मरुतों) ने जलाशय को उस दिशा से तिर्छा प्रेरण किया (और) प्यासे गोतम के लिये झरने को सींचा, विचित्र दीप्ति वाले (वे) इस ऋषि को रक्षा के साथ प्राप्त हुए (और) (अपने) बलों द्वारा इच्छा के अनुसार तृप्त किया ॥ ११ ॥

(१) जलाशय को उस दिशा से तिर्छा प्रेरण किया अर्थात बादल को ऊपर प्रेरण करने की जगह गोतम ऋषि के ग्राम की ओर तिर्छा प्रेरण किया और वर्षा के प्यासे गोतम को जल बरसा कर तृप्त किया ॥

मरुतोदेवता त्रिष्टुप्छन्दः ।११।११।११।११

या वः शर्म्म शशमानाय सन्ति त्रिधातूनि दाशुषे यच्छताधि । अस्मभ्यं तानि मरुतो वियन्त रयिं नो धत्त वृषणः सुवीरम् ॥ १२ ॥

...

या	यानि (शेर्लोपः)	जो
वः	युष्माकम्	आपके
शर्म	शर्म्माणि (शेर्लोपः)	सुख
शशमानाय	स्तुतिकुर्वते (निघं०३।१४)	स्तुति करने वाले के लिये
सन्ति	सन्ति	हैं
त्रिऽधातूनि	त्रिगुणानि	तिगुने
दाशुषे	दत्तवते	देने वाले के ताईं
यच्छत	अधि+यच्छत प्रयच्छथ (लडर्थे लड्व्यत्ययः)	देतेहो
अधि	+अधि	—
अस्मभ्यम्	अस्मभ्यम्	हमारे ताईं
तानि	तानि	उनको

भावार्थः।

हे मरुतो ! जो आपके तिगुने सुख स्तुति करने वाले के लिये हैं (और जो सुख हवि) देने वाले के ताईं देते हो वे (सब) हमें दो, हे शूरवीरो ! श्रेष्ठ पुत्रों से युक्त धन को (भी) हमारे ताईं स्थापन करो ॥ १२ ॥

इति पञ्चाशीतितमंसूक्तम् ॥

ऋ० मं० १ सू० ८६

मरुतोदेवता गोतमऋषिः।

विनियोगः—

१-१० । एतत्सूक्तं व्यूळ्हस्य तृतीये छन्दोमआग्निमारुते शस्त्रे विनियुक्तम् (आ०८ । ११।४)

१ । "मरुतः" इत्येषा ऐन्द्रामारुत्यामिष्टावनुवाक्या (आ०२।११।१४)

,, । एषैव वरुणप्रघासेषु मारुत्यामामिक्षायाम् अनुवाक्या(आ०२।१७ १) प्रातःसवने पोतुःप्रस्थितयाज्या च (आ०५।५।१८)

सूक्तस्य भावार्थः ।

यस्य गृहे मरुतः सोमं पिबन्ति सजनोऽतिशयेन सुरक्षकैर्युक्तो भवति १ यज्ञवाहकास्ते मरुतो यज्ञैः स्तुतिभिर्वाऽस्मदाह्वानं शृण्वन्तु २ यस्य यजमानस्यर्त्विज ऋषितुल्याः सन्ति स गोभिः पूर्णस्य गोष्ठस्य स्वामी भवति ३ अस्य वीरस्य यज्ञेषु सोमः सूयते, स्तोत्राणि हर्षगीतानि च गीयन्ते ४ प्रभावशालिनस्ते मरुतः सर्वाभिभाविनो-

ऽस्य यजमानस्याऽभ्यर्थनं शृण्वन्तु स्तोतारमृषिमत्यन्नानि च प्राप-
यन्तु ५ तेषां वेगवतां रक्षाभिर्युक्ता वयं बहुकाला दृहवींपि दत्तवन्तः
६ यस्मै मनुष्याय पूज्यतमामरुतोऽन्नानि प्रयच्छन्ति स सुभगोऽस्तु
७ सत्यबलास्ते मराः स्तुतिं कुर्वतो यत्नेन श्रान्तस्य यजमानस्य
कामयमानस्य भक्तस्य वा कामं पूरयन्तु ८ निजमहत्त्वेन राक्षसाँ इव
ताडयन्तु ९ ते मरुतोऽन्धकारं गूहन्तु रोगाद्युत्पादनैर्मनुष्याणां
भक्षकान् राक्षसान् निर्गमयन्तु, अस्माभिः काम्यंज्योतिरिव प्रकट-
यन्तु ॥ १० ॥

मरुतोदेवता गायत्रीछन्दः ।८।८।८

मरुतोयस्यहिक्षये पाथादिवो
विमहसः। ससुगोपातमोजनः ॥ १ ॥

मरुतः	हे मरुतः !	हे मरुनो
यस्य	यस्य	जिसके
हि	खलु	सचमुच
क्षये	गृहे	घर मे
पाथ	पिबथ (लपोलृक्)	पीते हो

दि॒वः	द्युलोकस्य	आकाश के
वि॒ऽम॒ह॒सः	हे महापुरुषाः	हे महापुरुषो
सः	सः	वह
सु॒ऽगो॒पात॑मः	अतिशयेन सुरक्षकैर्युक्तः	सब से अधिक सुरक्षकों वाला
जनः॑	मनुष्यः	मनुष्य

संस्कृतार्थः।

हे द्युलोकस्य महापुरुषाः! मरुतः! (यूयम्) यस्य गृहे (सोमम्) खलु पिबथ स मनुष्योऽतिशयेन सुरक्षकैर्युक्तः (भवति) ॥ १ ॥

भाषार्थः।

हे आकाश के महापुरुषो! हे मरुतो! आप जिस के घर में सचमुच (सोम को) पीते हो, वह मनुष्य सब से अधिक रक्षकों वाला (होता है) ॥ १ ॥

मरुतोदेवता गायत्रीछन्दः ।८।८।८।

यज्ञैर्वायज्ञवाहसो विप्रस्यवामतीनाम् । मरुतःशृणुताहवम् ।२।

यज्ञैः	यज्ञैः	यज्ञों के द्वारा
वा	वा	वा
यज्ञऽवाहसः	हे यज्ञस्यवोढारः!	हे यज्ञ के प्राप्त कराने वालो
विप्रस्य	ऋषेः	ऋषि की
वा	वा	वा
मतीनाम्	स्तुतिभिः (तृतीयार्थे षष्ठी)	स्तुतियों के द्वारा
मरुतः	हे मरुतः!	हे मरुतो
शृणुत	शृणुत	सुनो
हवम्	आह्वानम्	पुकार को

संस्कृतार्थः ।

हे यज्ञस्यवोढारोमरुतः ! (यूयम्) यज्ञैर्वा, ऋषेः स्तुतिभिर्वा (अस्मद्) आह्वानं शृणुत ॥ २ ॥

भाषार्थः ।

हे यज्ञ के प्राप्त कराने वाले मरुतो ! आप यज्ञों के द्वारा अथवा ऋषि की स्तुतियों के द्वारा (हमारी) पुकार को सुनो ॥ २ ॥

मरुतोदेवता गायत्रीछन्दः ।८।८।८।

उतवायस्यवाजिनोऽनुविप्रम-
तक्षत । सगन्तागोमतिव्रजे ।३।

उत	अपि च	और
वा	वा	अथवा
यस्य	यस्य	जिसके
वाजिनः	वेगवन्तः (ऋत्विजः)	वेग वाले (ऋत्विजों) को

मरुतोदेवता गायत्रीछन्दः ।८।८।८।

अस्यवीरस्यबर्हिषि सुतःसोमोदिविष्टिषु । उक्थंमदश्चशस्यते । ४ ।

अस्य	अस्य	इसके
वीरस्य	वीरस्य	वीर के
बर्हिषि	बर्हिषि	कुशा पर
सुतः	निष्पीडितः	निचोड़ा हुआ
सोमः	सोमः	सोम
दिविष्टिषु	यज्ञेषु	यज्ञों में
उक्थम्	शस्त्रम्	स्तोत्र

मदः	हर्षः	हर्ष
च	च	और
शस्यते	गीयते	गाया जाता है

संस्कृतार्थः ।

यज्ञेष्वस्य वीरस्य बर्हिषि निष्पीडितः सोमः (स्थाप्यते,अस्य गृहे च) स्तोत्रं हर्षश्च गीयेते ॥ ४ ॥

भाषार्थः ।

यज्ञों में इस वीर की कुशा पर निचोड़ा हुआ सोम(रक्खा जाता है और उस के घरमें) स्तोत्र और हर्ष गाया जाता है।४।

"इस वीर की" जिस का पिछले मंत्र में वर्णन है अर्थात जिस के ऋषि तुल्य ऋत्विज हैं ।

मरुतोदेवता गायत्रीछन्दः ।८।८।८।

अस्यश्रोषन्त्वाभुवो विश्वाय-

श्चर्षणीरभि । सूरंचित्सस्रुषीरिषः ।५।

अस्य	अस्य	इसकी
श्रोषन्तु	शृण्वन्तु (बाहुलकाल्लोटिसिप्)	सुनें
आ	आ+	–
भुवः	आ+भुवः सप्रभावाः	प्रभाव वाले
विश्वाः	सर्वान्	सब को
यः	यः	जो
चर्षणीः	मनुष्यान्	मनुष्यों को
अभि	अभि-(भवति)	बढ़ जाता है
सूरम्	स्तोतारम् (षूप्रेरणे क्रन्प्रत्ययः)	स्तोता को
चित्	अपि	भी
सस्रुषीः	गामिनः(भवन्तु) (सृगतौ,अस्माल्लिटः क्वसुस्ततोङीप्,पूर्व सवर्णदीर्घश्च),	पहुंचने वाले (हों)

इषः	अन्नानि	अन्न

संस्कृतार्थः ।

सप्रभावाः (मरुतः) अस्य (यजमानस्याऽभ्यर्थनम्) शृण्वन्तु यः सर्वान् मनुष्यानभिभवति, अन्नानि (च) (माम्) स्तोतारमपि प्राप्नुवन्तु ॥ ५ ॥

भावार्थः ।

प्रभाव वाले (मरुत), इस (यजमान) की जो सब मनुष्यों से बढ जाता है प्रार्थना सुनें, (और) अन्न (मुझ) स्तोता को भी प्राप्त हों ॥५॥

मरुतोदेवता निचृद्गायत्रीछन्दः ।८।८।७।

पूर्वीभिर्हि ददाशिम शरद्भिर्मरुतो वयम् । अवोभिश्चर्षणीनाम् ।६।

पूर्वीभिः	बह्वीभिः	बहुतों से
हि	खलु	सचमुच

दुदाशिम	ददाशिम (दाशृदाने लिटिरूपम्)	हमने दी हैं
१ शरत्ऽभिः	वर्षैः	वर्षों से
मरुतः	हे मरुतः !	हे मरुतो
वयम्	वयम्	हम
अवःऽभिः	रक्षाभिः	रक्षाओं से
चर्षणीनाम्	वेगवताम् (आ०को०)	वेग वालों की

संस्कृतार्थः ।

हेमरुतः ! वेगवताम् (भवताम्) रक्षाभिः(युक्ताः) वयं बहुभिर्वर्षैः खलु (हवींषि) दत्तवन्तः ॥ ६ ॥

भाषार्थः ।

हे मरुतो ! वेगवाले (आप) की रक्षाओं से (युक्त हुए २) हम बहुत वर्षों से (हवियें) देते आए हैं ॥६॥

(१) जिस प्रकार आजकल वर्षा सम्वत्सर का उपलक्षण है, इसी प्रकार पूर्व समय में शरत् थी ।

मरुतोदेवता गायत्रीछन्दः ।८।८।८।

सुभगःसप्रयज्यवो मरुतोअस्तु

मर्त्यः। यस्यप्रयांसिपर्षथ ।७।

सऽभगः	सौभाग्ययुक्तः	भाग्यवान्
सः	सः	वह
प्रऽयुज्यवः	हे प्रकर्षेणयष्टव्याः!	हे भली प्रकार पूजने योग्य
मरुतः	हे मरुतः!	हे मरुतो
अस्तु	अस्तु	हो
मर्त्यः	मनुष्यः	मनुष्य
यस्य	यस्मै (चतुर्थ्य षष्ठी)	जिसके लिये
प्रयांसि	अन्नानि	अन्नों को
पर्षथ	प्रयच्छथ (आ०को०)	देते हो

संस्कृतार्थः।

हे प्रकर्षेण यष्टव्याः! मरुतः! स मनुष्यः सौभाग्य युक्तोऽस्तु यस्मै [यूयम्] अन्नानि प्रयच्छथ ॥७॥

भाषार्थः।

हे भली प्रकार पूजने योग्य मरुतो! वह मनुष्य भाग्यवान हो जिसके लिये आप अन्नों को देते हो॥ ७ ॥

मरुतोदेवता गायत्रीछन्दः ।८।८।८।

शशमानस्यवानरः स्वेदस्य-

सत्यशवसः। विदाकामस्यवेनतः॥८॥

शशमानस्य	स्तुतिं कुर्वतः (निघं०३।१४)	स्तुति करते हुए का
वा	वा	अथवा
नरः	हे नराः!	हे नरो
स्वेदस्य	स्वेदयुक्तस्य, श्रान्तस्येत्यर्थः (अन्तर्भावितण्यर्थात् कर्मणि [illegible])	थके हुए की

सत्यऽश्र-वसः	हे सत्यबलाः !	हे सच्चे बल वालो
विद	लम्भयत ('विद्लृलाभे लोटिमध्य० बहु०रूपम्, अन्तर्भावित ण्यर्थादस्माद् व्यत्ययेन झादेश०)	प्राप्त कराओ
कामस्य	कामम् (कर्मणिषष्ठी)	कामना को
वेनतः	कामयमानस्य (वेनतिःकान्तिकर्मा, निघ०२।६)	कामना करते हुए की

संस्कृतार्थः ।

हे सत्यबलाः ! नराः। [यूयम्] स्तुतिकुर्वतः (यज्ञेन) श्रान्तस्य (यजमानस्य) कामयमानस्य भक्तस्य) वा कामं लम्भयत॥८॥

भावार्थः ।

हे सच्चे बल वाले नरो ! आप स्तुति करने वाले, (यज्ञसे) थकेहुए (यजमान) की अथवा कामना करने वाले [भक्तकी] कामना को प्राप्त कराओ ॥ ८ ॥

मरुतो देवता गायत्रीछन्दः।८।८।८।

ययंतत्सत्यशवस आविष्कर्त-
महित्वना। विध्यताविद्युतारक्षः।९।

यूयम्	यूयम्	आप
तत्	तत्	उसको
सत्यऽश-वसः	हे सत्यबलाः !	हे सच्चे बलवाला
आविः	आविः+	–
कर्त	आविः + कर्त, आविष्कुरुत (करोतेर्लोटि विकरणस्य लुक्, तबादेशश्च)	प्रकट करो
महिऽत्वना	महत्त्वेन	महत्त्व से

विध्यत	ताडयत (व्यधताडने)	मारो
विद्युता	विद्योतमानेन	चमकते हुए से
रक्षः	राक्षसान् (सुपामिति द्वितीयायाः सुः)	राक्षसों को

संस्कृतार्थः ।

हे सत्यबलाः! यूयं महस्त्वेन तत्प्रसिद्धम् (बलम्) आविष्कुरुत विद्योतमानेन [वज्रेण च] राक्षसांस्ताडयत ।९।

भाषार्थः ।

हे सच्चे बलवालो! आप महस्त्वसे उस प्रसिद्ध (बल) को प्रकट करो (और) चमकते हुए (वज्र) से राक्षसों को मारो ॥ ९ ॥

मरुतो देवता गायत्री छन्दः ।८।८।८।

गूहता गुह्यं तमो वि यात विश्वम् अत्रिणम् । ज्योतिष्कर्ता यदुश्मसि ।१०।

गूहत	गूहत (गुहू संवरणे)	छिपाओ

गुह्यम्	गोप्यम्	छिपाने योग्य को
तमः	अन्धकारम्	अन्धकार को
वि	वि+	–
यात	वि + यात, निर्यापयत (अन्तर्भावितण्यर्थः)	निकालो
विश्वम्	सर्वम्	सम्पूर्ण को
अत्रिणम्	अत्तारम् (अदेस्त्रिनिः)	भक्षण करने वाले को
ज्योतिः	ज्योतिः	प्रकाश को
कर्त	कुरुत (विकरणस्य लुकि तवादेशः)	करो
यत्	यत्	जिसको
उश्मसि	कामयामहे (घशपान्तौ-मसइकारागमः)	हम कामना करते हैं

संस्कृतार्थः ।

(हे मरुतः ! यूयम्) गोप्यमन्धकारं गूहत, अत्तारं सर्वम् (राक्षस जातम्) निर्गमयत,ज्योतिः (च) कुरुत यद् (वयम्) कामयामहे ॥ १० ॥

भावार्थः ।

[हेमरुतो !] आप छिपाने योग्य अन्धकार को छिपाओ,भक्षण करने वाले (राक्षसों) को निकालो (और) प्रकाश को करो, जिसकी हम कामना करते हैं ॥ १० ॥

"अत्रि" के लिये देखो पृ० ४१६-४१७ ।

इति षडशीतितमं सूक्तम् ।

ऋ० मं०१ सू०८७

मरुतोदेवता गोतमऋषिः ।

विनियोगः—

१-६। अग्निष्टोमस्याऽऽग्निमारुते शस्त्र इदं सूक्तं विनियुक्तम् (आ०सू० ५।२०।९)

सूक्तस्य भावार्थः ॥

वर्षारम्भकाले मरुतः कतिपयैर्नक्षत्रैरपस्इव विद्युद्रूपैरलङ्कारै रात्मानं विभूषयन्ति १ त आकाशस्य नत स्थानेषु मेघांश्चिन्वन्ति यथा पर्वतस्य प्रवणस्थानेषु पक्षिणस्तृणादीनि चिन्वन्ति, ते मह्याय मधुसदृशं जलं सिञ्चन्तु २ यदा मरुतो युद्धायगन्तुं सज्जीभवन्ति तदा पृथिवी भीतेव भृश कम्पते, क्रीडा शीला दीप्यमानायुधास्ते निजमहत्त्व स्वय स्तुवन्ति ३ इत्थमीशानः पापिनोऽधगन्ता दोष रहितो मरुद्गणोऽस्मद् यज्ञस्य रक्षिता भवतु ४ यदा मरुतो युद्धकर्मणि स्तुतिभिरिन्द्रं प्रोत्साहितवन्तस्तदा ते देवा अभूवन्निति कथाऽस्माभिः पुरातनेभ्यः पितृभ्यः संप्रदायक्रमेण लब्धा, मरुद्वाणी च सूक्तोच्चारणे सोमपानेन प्रेरिता भवति ५ मरुतः सूर्य्यरश्मीनां स्तोतॄणां च साहाय्येन प्राणिनामुपकारार्थं वृष्टिं सम्पादितवन्तः, आत्मनोऽर्थं चाऽऽकाशे स्थान लब्धवन्तः ॥६॥

मरुतोदेवता जगतीछन्दः ।१२।१२।१२।१२

प्रत्वक्षसः प्रतवसो विरप्शिनो

ऽनानता अविथुरा ऋजीषिणः जुष्ट-

तमा॒सो॑नृ॒तमा॑सो॒अ॒ञ्जिभि॒र्व्या॑न॒ज्रे॒

केचि॑दु॒स्रा इ॑व स्तृ॒भिः ।१।

प्र॒त्व॑क्षसः	महान्तः (आ०को०)	महान
प्र॑तवसः	प्रबलाः (तवइतिबलनाम निघं०३।३)	प्रबल
वि॒र॒प्शिनः	बहुभाषिणः (रपलपव्यक्तायांवाचि)	बहुत बोलने वाले
अना॑नताः	नमनरहिताः	न झुकनेवाले
अवि॑थुराः	निर्भयाः (व्यथभये-उरच्प्रत्यय)	निर्भय
ऋ॒जी॒षिणः	शीघ्रगामिनः (आ० को०)	शीघ्रचलनेवाले
जुष्ट॑तमासः	प्रियतमाः (जसोऽसुगागमः)	सबसे अधिकप्यारे

नृऽतमासः	अतिशयेन नराः (जसोऽसुगागमः)	अत्यन्तनरवीर
[१]अञ्जिऽभिः	अलङ्कारैः	अलंकारों से
वि	वि+	–
आनज्रे	वि+आनज्रे, भूपितावभवुः ('इरयोरे'इतिरेभादेशः,	सिंगरे हैं
के	के+चित्,कतिपयैः (तृतीयार्थे प्रथमा)	थोड़ों से
चित्	+चित्	–
उस्राःऽइव	उपसइव	उषाओंकी न्याई
स्तृऽभिः	नक्षत्रैः	तारों से

संस्कृतार्थः ।

महान्तः प्रबला बहुभाषिणो नमनरहिता निर्भयाः शीघ्रगामिनः प्रियतमा अतिशयेन नराः(मरुतः) कतिपयैर्नक्षत्रै रुषसइवाऽलङ्कारैर्भूषिता बभूवुः ॥ १ ॥

भाषार्थः।

महान, प्रबल, बहुत बोलने वाले, न झुकने वाले, निर्भय, शीघ्र चलने वाले, सब से अधिक प्यारे, अत्यन्त नरवीर (मरुत) अलंकारों से ऐसे सजे हैं जैसे थोड़े तारों से उषाएं ॥ १ ॥

(१) वर्षा के आरम्भ काल में बिजली की मन्द मन्द दमक से मरुत ऐसे शोभायमान होते हैं जैसे थोड़े तारों से प्रभातें।

मरुतोदेवता जगतीछन्दः।१२।१२।१२।१२

उपह्वरेषुयदचिध्वंययिं वयइव मरुतःकेनचित्पथा।श्चोतन्तिकोशाउपवोरथेष्वा घृतमुक्षतामधुवर्णमर्चते।२।

उपऽह्वरेषु	नतस्थानेषु (आ०को०)	झुकाओ वाले स्थानों में
यत्	यदा	जब
अचिध्वम्	सञ्चितवन्तः (चिङ् चयने)	चिना है

यियिम्	मेघम् (आ०को०)	मेघको
१वयःऽइव	पक्षिणइव	पक्षियों की न्याईं
मरुतः	हे मरुतः !	हे मरुतो
केन	केन+चित्	किसीसे
चित्	+चित्	–
पथा	मार्गेण	रस्तेसे
श्चोतन्ति	क्षरन्ति	झरते हैं
कोशाः	अभ्राणि	बादल
उप	(सामीप्ये)	समीप
वः	युष्माकम्	आपके
रथेषु	रथेषु	रथों में
आ	समन्तात्	चारों ओर से

घृतम्	उदकम् (निघं०१।१२)	जल को
उक्षत	सिञ्चत (उक्षसेचने)	सींचो
मधुऽवर्णम्	मधुसदृशम्	मधुकेतुल्यको
अर्चते	पूजयते	पूजा करने वाले के ताईं

संस्कृतार्थः।

हे मरुतः! (यूयम्) पक्षिण इव केनचिन्मार्गेण (आकाशस्थ) नतस्थानेषु मेघं सञ्चितवन्तः, युष्माकं रथेष्वभ्राणि क्षरन्ति (यूयम्) पूजयते मधुसदृशमुदकं सिञ्चत ॥ २ ॥

भाषार्थः।

हे मरुतो! आपने पक्षियों की न्याईं किसी रस्ते से (आकाश के) झुकाओ के स्थानों में मेघ को चिना है आपके रथों में बादल झरते हैं आप पूजा करने वाले के ताईं मधु के तुल्य जल को सींचो ॥ २ ॥

(१) जैसे पर्वत के ढलानों पर जहां कोई मार्ग नहीं है पक्षी अपना घोंसला बनाने के लिये तृण आदि इकठ्ठा कर लेते हैं इसी प्रकार मरुत न जाने किस रस्ते से आकाश की गुलाई में बादलों की तह लगा देते हैं।

मरुतोदेवता जगतीछन्दः ।१२।१२।१२।१२

प्रैषामज्मेषुविथुरेवरेजते भूमि

र्यामेषुयद्धयुञ्जतेशुभे । तेक्रीळयो-

धुनयोभ्राजदृष्टयः स्वयंमहित्वं

पनयन्तधूतयः । ३ ।

प्र	प्रकर्षेण	अत्यन्त
एषाम्	एषाम्	इनके
अज्मेषु	युद्धेषु (निघं०२।१७)	युद्धों में
विथुराऽइव	भीतेव (व्यथ भये)	डरीहुईकीन्याईं
रेजते	कम्पते	कांपती है
भूमिः	पृथिवी	पृथिवी

यामेषु	प्रयाणे (याप्रापणे मन्प्रत्ययः)	यात्राओं में
यत्	यदा	जब
ह	खलु	सचमुच
युञ्जते	सज्जीभवन्ति	सज्जितहोते हैं
शुभे	विजयाऽर्थम् (आ०को०)	विजय के लिये
ते	ते	वे
क्रीळयः	क्रीडा शीलाः	क्रीडाकरनेवाले
धुनयः	गर्जन्तः	गर्जने वाले
भ्राजत्ऽऋष्टयः	दीप्यमानायुधाः	चमकतेहुए शस्त्र वाले
स्वयम्	स्वयम्	अपने आप
महिऽत्वम्	महत्त्वम्	महत्त्व को

पनयन्त	स्तुवन्ति (पनस्तुतौ-आय प्रत्यये सति ह्रस्वश्छान्दस,लङ्थेंलङ्यडभावः)	स्तुति करते हैं
धूतयः	कम्पयितारः	कंपाने वाले

संस्कृतार्थः ।

एषाम् (मरुताम्) युद्धेषु पृथिवी भीतेव भृशं कम्पते यदा खलु (ते) विजयार्थं प्रयाणेषु सज्जीभवन्ति, क्रीडाशीला गर्जन्तो दीप्यमानायुधाः कम्पयितारः (च) ते (निज-) महत्त्वं स्वयं स्तुवन्ति ॥३॥

भाषार्थः ।

इन (मरुतों) के युद्धों में पृथिवी डरी हुई की न्याईं अत्यन्त कांपती है जब (ये) सचमुच विजय के लिये सज्जित होते हैं, क्रीडा करने वाले, गर्जने वाले, चमकते हुए शस्त्रों वाले (और) कंपानेवाले वे आप (अपने) महत्त्व की स्तुति करते हैं ॥ ३ ॥

मरुतोदेवता जगती छन्दः ।१२।१२।१२।१२

स ह्हि स्वसृत्पृषदश्वो युवा गणो३

ऽयाईशानस्तविषीभिरावृतः। असि

सत्यऋणयावाऽनेद्यो ऽस्याधियः

प्राविताथावृषागणः। ४।

सः	सः	वह
हि	खलु	सचमुच
स्वऽसृत्	स्वयं सरणशीलः (क्विप्तुक्)	अपनेआपचलने- वाला
पृषत्ऽअश्वः	श्वेतबिन्द्वङ्किता- श्वयुक्तः	चितकबरे घोड़ों- वाला
युवा	युवा	जवान
गणः	(मरुद्-) गणः	(मरुद्-)गण
अया	इत्थम् (आ०को०)	इस प्रकार
ईशानः	ईशानः	ईशन करनेवाला

तविषीभिः	बलैः	बलों से
आऽवृतः	परिवेष्टितः	घिरा हुआ
असि	अस्ति (पुरुष व्यत्ययः)	है
सत्यः	सत्यः	सच्चा
ऋणऽयावा	पापिनोऽवगन्ता (ऋणइति पापिनाम; आ०को०)	पापीकोजानने वाला
अनेद्यः	अनिन्द्यः	दोष रहित
अस्याः	अस्य	इसकी
धियः	कर्म्मणः	कर्म्म की
प्रऽअविता	प्रकर्षेणरक्षिता	भली प्रकार रक्षा करने वाला
अथ	अपिच (आ०को०)	और
वृषा	वीर्य्यवान्	वीर्य्यवान

गण: | गणः | गण

संस्कृतार्थ ।

सः खलु स्वयं सरणशीलः श्वेतविन्द्वङ्किताश्वयुक्त इत्थमीशानो युवा (मरुद्-) गणो बलैरावृतः (अस्ति) अपिच सत्यःपापिनोऽवगन्ताऽनिन्द्यो वीर्य्यवान् (सः) गणोऽस्यकर्म्मणः प्रकर्षेण रक्षिता (भवति) ॥ ४ ॥

भाषार्थ ।

सचमुच अपने आप चलने वाला, चितकबरे घोड़ों वाला इस प्रकार ईशन करने वाला जवान (मरुद)गण बलों से घिरा हुआ (है) और सच्चा, पापिओं के जानने वाला, दोष रहित (और) वीर्यवान (वह) गण इस कर्म की भली प्रकार रक्षा करने वाला (है) ॥ ४ ॥

मरुतोदेवता जगतीछन्दः ।१२।१२।१२।१२

पितुःप्रत्नस्यजन्मनावदामसि

सोमस्यजिह्वाप्रजिगातिचक्षसा ।

यदीमिन्द्रंशम्यृक्वाणआशताऽऽदि

न्नामानियज्ञियानिदधिरे।५।

१ पितुः	पितुः(सकाशात्)	पिता से
१ प्रत्नस्य	पुरातनस्य	प्राचीन के
१ जन्मना	जन्मना	जन्म से
१ वदामसि	वदामः (मसइकारागमः)	हम कहते हैं
२ सोमस्य	सोमस्य	सोम की
२ जिह्वा	जिह्वा	जिह्वा
प्र	प्र +	–
२ जिगाति	प्र + जिगाति, भृशंचलति	खूब चलती है
२ चक्षसा	दर्शनेन	दर्शन से

यत्	यदा	जब
ईम्	(पूरणः)	—
इन्द्रम्	इन्द्रम्	इन्द्र को
शमि	कर्म्मणि (सुपामितिसप्तम्यालु- किङतेङस्वरश्छान्दसः)	काममें
ऋक्वाणः	स्तुवन्तः (ऋचस्तुतौ)	स्तुतिकरतेहुए
आशत	प्राप्तवन्तः	प्राप्त हुए
आत्	अनन्तरम्	पीछे
इत्	एव	ही
नामानि	नामानि	नामों को
यज्ञियानि	यज्ञार्हाणि	यज्ञके योग्यों को
दधिरे	धृतवन्तः	धारण किया

संस्कृतार्थः।

पुरातनस्य पितुः (सकाशात्) जन्मना (लब्ध-संप्रदाया वयम्)वदामः (अस्मद्)जिह्वा (च) सोमस्य दर्शनेन भृशं चलति, यदा (मरुतोयुद्ध-) कर्मणीन्द्रं स्तुवन्तः (सन्तः) प्राप्तवन्तस्तदा यज्ञार्हाणि नामानि धृतवन्तः ॥ ५ ॥

भाषार्थः।

हम प्राचीन पिता से जन्म द्वारा (संप्रदाय को प्राप्त करके) कहते हैं (और हमारी) जिह्वा सोम के दर्शन से खूब चलती है, जब (युद्ध के) काम में स्तुति करते हुए (मरुत) इन्द्र को प्राप्त हुए तब यज्ञ के योग्य नामों को धारण किया ॥ ५ ॥

(१) मरुतों के यज्ञीय नामों को धारण करने की कथा हमने प्राचीन पितरों की परम्परा से सीखी है और—

(२) हमारी वाणी सोम के दर्शन से सूक्त उच्चारण के लिये प्रेरित होती है।

(३) जब मरुत अपने स्वाद २ शब्द से स्तुति करते हुए युद्ध में इन्द्र को प्राप्त हुए तब वे देवता की पदवी को पहुंचे।

मरुतादेवता जगतीछन्दः।१२।१२।१२।१२

श्रियसेकंभानुभिःसंमिमिक्षिरे

तेरश्मिभिस्तऋक्वभिःसुखादयः ।
तेवाशीमन्तइष्मिणोअभीरवो विद्रे-
प्रियस्यमारुतस्यधाम्नः ।६।

श्रियसे	सेवितुम् (श्रिञ् सेवायांतुमर्थेसेन् प्रत्ययः)	सेवन करने के लिये
कम्	उदकम्	जल को
भानुऽभिः	सूर्यसम्बन्धिभिः	सूर्य्य संबंधियों से
सम्	सम्यक्	खूब
मिमिक्षिरे	सेक्तुमिच्छितवन्तः (मिह सेचने, सन्नन्ताल्लिटिप्रत्ययेनाऽऽत्मनेपदम्)	वरसाने की इच्छा की है
ते	ते	उन्हों ने

रश्मिऽभिः	किरणैः	किरणों से
ते	ते	वे
ऋक्वऽभिः	स्तोतृभिः (ऋचस्तुतौ)	स्तोताओंकेद्वारा
सुऽखादयः	शोभनंखादिः कङ्कणंयेषांतथोक्ताः	सुन्दर कंगन पहनने वाले
ते	ते	उन्होंने
वाशीऽमन्तः	आयुधो पेताः	शस्त्रों वाले
इष्मिणः	(शीघ्र)गामिनः (इषगतौ मकिसतौनिः प्रत्ययः)	(शीघ्र)चलने वाले
अभीरवः	निर्भयाः	निडर
विद्रे	लब्धवन्तः (विद्लृलाभे,लिटिद्वियंवनाधनाधश्छान्दसः 'इर योरे' इतिरे आदेशश्च)	प्राप्त किया
प्रियस्य	प्रियम् (कर्मणि षष्ठी)	प्यारे को

२ मारुतस्य	मरुत्सम्बन्धिनम् (,,)	मरुतसंबंधी को
२ धाम्नः	धाम (,,)	स्थान को

संस्कृतार्थः।

शोभनकङ्कणधारिणस्ते सूर्य्य किरणैः स्तोतृभिः (च युक्ताः सन्तः प्राणिभिः) सेवितुमुदकं सम्यक् सेक्तुमिच्छितवन्तः, आयुधोपेताः (शीघ्र-) गामिनो निर्भयाः (च) ते मरुत्सम्बन्धिनं प्रियं स्थानं लब्धवन्तः।६।

भापार्थः।

उन सुन्दर कंगन पहनने वालों ने सूर्य्य की किरणों (और) स्तुति करने वालों से (युक्त होकर प्राणियों से) सेवन करने के लिये खूब जल बरसाने की इच्छा की है, उन शस्त्रों वाले शीघ्र चलने वाले (और) निर्भय मरुतों ने अपने प्यारे स्थान को प्राप्त किया है।

(१) जैसे सूर्य्य की किरणें वर्षा का हेतु हैं वैसे ही मनुष्य की प्रार्थना भी है।

(२) मरुत संबंधी स्थान को अर्थात आकाश के देवताओं में स्थान को प्राप्त किया।

इति सप्ताशीतितम सूक्तम्।

ऋ०स०-४५-४६ अङ्कयोः शुद्ध्यशुद्धि पत्रम् ।

पृ०	पं०	अशुद्धम्	शुद्धम्
१९९४	१४	धनम	धनम्
१९९७	१४	तावश्वौ	तारावश्वौ
१९९८	८	सग्	सम्
१९९८	११	अनऽ	अनुऽ
२००१	२	पूण	पूर्णं
२००५	१४	मृज-	मृजु-
२००७	१६	(इन्दः)	(इन्द्रः)
२००७	१७	(हे इन्द्रः	(हेइन्द्र
२००८	७	सज्महे	सृज्महे
२००९	१	जानीमः	जानीमः
२०११	९	जातम)	जातम्)
२०१४	५	शाघ्र	शीघ्र
२०१६	११	(स्तुती)	(स्तुतीः)
२०१६	१७	युत्त	युक्त
२०१७	७	नवोधिप्रा-	नवो धिप्रा-
२०२०	१०	नूनम्	नूनम्
२०२१	१	यशाम	यशान्
२०२१	४	जोद्दो	जोद्दो
२०२८	१	मृषजि	न् पजि
२०३२	२	सुप्रायो	सुप्रायी
२०३२	४	मयो	मयी
२०३३	९	बहुनरेण	बहुतरेण
२०३६	७	मार्गो रे	मार्गो से
२०३७	७	प्राप्त-	प्राप्त-
२०३७	८	विस्तोण	विस्तीर्ण
२०३८	११	मिहित	मिहित
२०३८	१४	उकथ्यम	उक्थ्यम्
२०४०	७	पूजयतः	पूजयतः
२०४०	१५	प्रयत्न क	प्रयत्न के
२०४२	१८	न्तम	न्तम्
२०४६	४	न्सूदयः	न्सूर्यः
२०४६	१०	लिन	लित
२०४८	१	सऽ	सुऽ
२०४८	१	पत हेतुः	पतनहेतु
२०५१	१६	विनियोगः	विनियोगः
२०५१	१८	आगच्छेत	आगच्छेत्,
२०५२	४	धारयितं	धारयितं
२०५२	१३	हत्राणि	वृत्राणि
२०५२	१७	मंत्राणां	मन्त्राणां
२०५२	१९	वृंदधर्य	वृद्धर्य
२०५२	२१	प्वृतुषु	प्वृतषु
२०५२	२१	देयात्	देयान्
२०५४	३	पूर्ण कर	पूर्ण करे
२०५४	१८	(पू॰	(पूर्ण
२०५८	११	सुप्ठियतः	सुप्ठ्वितः
२०५८	१५	को)	का)
२०५९	२	सतं	सुनं
२०५८	३	शाकस्य	शुक्रस्य
२०६२	११	(ताप)	(मस्य)
२०७१	१५	ंग	रंग
२०८०	१२	पर्यनेष	पर्वतेषु

विज्ञापन।

इस ४७-४८ अंक के साथ चौथा साल पूरा होगया है, जिन स्वाध्यायी ब्राह्मणों की सेवा में यह पुस्तक जाता है, वे कृपापूर्वक पत्र द्वारा सूचित करें जिससे उन के नाम पांचवें साल के रजिष्टर में लिखे जाएं। जिन के पास पिछले सब अंक न हों वे डाकमहसूल भेज कर पिछले अंक मंगवा सकते हैं॥

मुन्शी जयराम
मैनेजर ऋग्वेद संहिता
भिवानी, ज़िला हिसार
पंजाब देश